# प्रकाशकीय

युगद्रष्टा ज्योतिर्धर जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की पीयूषवर्षी वाणी मे समय विशेष की नहीं वरन् मानवीय जीवन की सभी समस्याओ और भावनाओं का समाधानात्मक विवेचन किया गया है। पूज्यश्री ने अपनी वाणी द्वारा जैन धर्म की आचार-विचार-मूलक मर्यादाओं को ध्यान मे रखते हुए विश्व, राष्ट्र और समाज मे नव-जीवन का संचार किया है।

स्वयं के जीवन का विकास करना और दूसरों का जीवन-निर्माण करना—इन दोनों में अन्तर है। जगत् में आत्मसाधना में तल्लीन रहने वाले महापुरुष कम नहीं हैं, लेकिन अपने आचार-विचार के नियमो का यथाविधि पालन करते हुए जन-जीवन का निर्माण करना, धर्मनिष्ठ बनाना आदि सत्प्रवृत्तिया करने वाले महापुरुष विरले ही मिलते हैं। ऐसे महापुरुषो में आचार्य श्री जी का स्थान अपूर्व और अद्वितीय है।

आचार्य श्री जी की वाणी को ध्यानपूर्वक पढने पर प्रत्येक पाठक यह स्वीकार किये बिना नही रह सकता कि मानव के आध्यात्मिक, नैतिक एवं व्यावहारिक धर्म की ऐसी सुन्दर, सिद्धान्त-संगत और उदार व्याख्या करने वाली प्रतिभा क्वचित्, कदाचित् व्यक्ति विशेष मे परिलक्षित होती है।

आचार्य श्री जी अपने प्रतिपाद्य विषय को प्रभावशाली और गूढ विषय को सहज सुगम बनाने के लिए यथायोग्य उदाहरणो, कथानको का आश्रय लेते थे। कथानक के कहने की उनकी शैली निराली थी। साधारण-से साधारण कथानक में वे चेतना डाल देते थे। उसमें जादू-सा असर आ जाता था। वे प्राय: पुराणो व इतिहास में वर्णित कथाओ

का ही प्रवचन करते थे, पर अनेकों बार सुनी हुई कथा भी उनके मुख से एकदम मौलिक एवं अश्रुतपूर्व-सी प्रतीत होने लगती थी।

आचार्य श्री जी के प्रवचनो में यथास्थान उपयुक्त कथानकों की एक बडी संख्या है। वे सभी अपने आपमे परिपूर्ण हैं। उनका आपस में कोई सिलसिला नही है। अतएव उन के वर्गीकरण की विशेष आवश्यकता नही है। फिर भी पाठक की सुविधा के लिये पौराणिक, ऐतिहासिक और लौकिक उदाहरण के रूप मे वर्गीकरण करने का प्रयास किया गया है। उनमे से प्रस्तुत पुस्तक मे पौराणिक उदाहरणो का संकलन प्रकाशित है। उदाहरणो मे विशेप रूप से यह लक्ष्य रखा गया है कि उनसे मिलने वाली शिक्षा का भी उनके साथ समावेश अवश्य हो जाये। यदि संक्षेप में कहे तो इन कथानको के माध्यम से नीति की शिक्षा दी गई है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रथम संस्करण श्री जवाहर साहित्य समिति की ओर से श्रीमान् सेठ इन्द्रचन्द्र जी गेलड़ा द्वारा अपनी पुण्यश्लोका मातेश्वरी श्रीमती गणेशबाई की पुण्य-स्मृति मे साहित्य प्रकाशन हेतु दिये गये ६०१०.०० से प्रकाशित हुआ था तथा द्वितीय संस्करण श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर द्वारा अप्रेल, १९६७ मे प्रकाशित किया गया था। इसके तृतीय सस्करण का प्रकाशन धर्मनिष्ठ सुश्राविका बहिन श्रीमती राजकुंवर बाई मालू, वीकानेर द्वारा श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर को सत्साहित्य प्रकाशन के लिए प्रदत्त धनराशि से हुआ है। सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए बहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

अब यह उदाहरणमाला (पौराणिक खण्ड) कुछ समय से अप्राप्य था इसलिए पाठकों की निरन्तर मांग होने से इसके चतुर्थ संस्करण का प्रकाशन धर्मनिष्ठ श्रावकगण श्रीमान् बालचन्दजी, ज्ञानमलजी, झूमरमलजी, टीकमचन्दजी व गोरधनदासजी सेठिया भीनासर द्वारा अपने पूज्य पिताश्री स्व. श्रीमान् हजारीमलजी सेठिया की पुण्य स्मृति में हजारीमल सेठिया चैरिटेबल ट्रस्ट ( करीमगंज ) भीनासर द्वारा श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर को उदाहरणमाला पौराणिक खण्ड व द्वितीय भाग के प्रकाशन हेतु प्रदत्त की गई २१०००) की धनराशि से इस संस्करण का प्रकाशन किया जा रहा है। सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए आप पांचो भाइयों की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी। श्री जवाहर साहित्य समिति इसके लिए आपका हृदय से आभार प्रकट करती है तथा आशा करती है कि भविष्य में भी आपका सहयोग निरन्तर संस्था को इसी प्रकार मिलता रहेगा।

आजकल कागज एवं मुद्रण आदि का व्यय काफी बढ़ जाने से इस संस्करण की कीमत बढाने के लिये हमें बाध्य होना पड़ा है।

प्रकाशन कार्य में श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ और उसके द्वारा सचालित जैन आर्ट प्रेस का समिति को पूर्ण सहयोग रहा है, एतदर्थ समिति उनके प्रति आभार प्रकट करती है।

सुमतिलाल बांठिया
मन्त्री—(श्री जवाहर विद्यापीठ)
भीनासर (बीकानेर)

# अनुक्रमणिका

# १ : सेवामूर्ति मुनि नंदिषेण

[ शास्त्र मे जब मुनियो के लिये भी सेवा करने का विधान किया गया है, तव तुम्हे कितना अधिक सेवाकार्य करना चाहिए, इस वात का विचार तुम स्वय ही कर सकते हो । कितनेक लोगो को सामायिक-पौषध आदि धार्मिक क्रिया करने का तो खूब चाव होता है, परन्तु सेवाकार्य करने मे अरुचि होती है और अगर किसी रोगी की सेवा करने का अवसर आ जाता है तो उन्हे बडी कठिनाई मालूम होती है । रोगी कपडे मे ही कै-दस्त कर देता है और कभी-कभी रास्ते मे ही चक्कर खाकर गिर पडता है । ऐसे रोगी की सेवा करना कितना कठिन है ! फिर भी जो सेवाभावी लोग रोगी की सेवा को परमात्मा की सेवा मानकर करते है, उनकी भावना कितनी ऊ ची होगी ?

वास्तव में यह अखिल ससार सेवा के कारण ही टिक रहा है । जव संसार मे सेवाभावना की कमी हो जाती है, तभी उत्पात मचने लगता है और जब सेवाभाव की वृद्धि होती है तव यह ससार स्वर्ग के समान वन जाता है । अत-एव सेवाकार्य करने में तनिक भी उपेक्षा नही करनी चाहिए और न छल-कपट ही करना चाहिए । जो मनुष्य माता-पिता अथवा अन्य किसी भी मनुष्य की सेवा करने मे छल-कपट करता हुआ भी अपने को सेवाभावी कहलवाता है, वह वास्तव मे सेवाभावी नही वरन् ढोगी है । सच्चा

सेवक तो वही है जो सेवा करने मे झूठ–कपट का आश्रय नही लेता और सेवाकार्य के प्रति घृणाभाव भी प्रदर्शित नही करता। जहा घृणा है वहा सच्ची सेवा नही हो सकती।

मुनि के लिए किस सीमा तक सेवा करने का विधान किया गया है, यह बताने के लिए एक जैन उदाहरण देकर समझाने का प्रयत्न करता हू–]

नंदिषेण नामक एक मुनि बहुत ही सेवाभावी थे। उनकी सेवा की प्रशसा इन्द्रलोक तक जा पहुची। इन्द्र ने देवसभा मे नदिषेण मुनि की सेवा की प्रशसा करते हुए कहा–

राजकुमार होने पर भी नदिषेण मुनि ऐसी सेवा करते है कि उन जैसी सेवा करना दूसरो के लिए बडा कठिन है।

इन्द्र के ये प्रशसात्मक वचन सुन कर एक देव ने विचार किया–इन्द्र महाराज देवो के सामने एक मनुष्य की इतनी प्रशसा क्यो करते है ? अच्छा, उस सेवाभावी मुनि की परीक्षा क्यो न की जाय ? आखिर नदिषेण मुनि मनुष्य है। मनुष्य की नाक मे दुर्गन्ध जाती है, अतएव दुर्गन्ध द्वारा उन्हे घबरा देना स्वाभाविक और सरल है। इस प्रकार विचार करके उस देव ने नदिषेण मुनि की परीक्षा लेने का दृढ निश्चय कर लिया।

वह देव साधु का स्वाग बना कर जहा नदिषेण मुनि ठहरे थे, वहा पास के एक जगल मे जाकर पडा रहा। उस देव ने अपने शरीर को ऐसा रुग्ण बना लिया कि शरीर के

छिद्र मे से रक्त और मवाद बहने लगा। उस रक्त और पीव मे से असह्य दुर्गन्ध निकल रही थी इस प्रकार रोगी साधु का भेष धारण करके उस देव ने नंदिषेण मुनि के पास समाचार भेजा कि पास के जगल मे एक साधु बहुत बीमार हालत मे पड़े है। उनकी सेवा करने वाला कोई नही है, अत. उन्हे बहुत अधिक कष्ट हो रहा है।

नंदिषेण मुनि को जैसे ही यह समाचार मिले कि वे तुरन्त उन रोगी साधु की सेवा करने के लिए चल पड़े। मुनि मन-ही-मन विचारने लगे—'मेरा सौभाग्य है कि मुझे साधु-सेवा का ऐसा सुअवसर हाथ आया है।'

इस प्रकार विचार कर नंदिषेण मुनि रोगी साधु की सेवा करने के लिये जगल मे पहुचे। मुनि उस कपटी वेष-धारी रोगी साधु की ओर ज्यो-ज्यो आगे जाने लगे, त्यो-त्यो उन्हे अधिकाधिक दुर्गन्ध आने लगी। परन्तु नंदिषेण मुनि उस असह्य दुर्गन्ध से न घबरा कर रोगी साधु के समीप पहुच गये। नंदिषेण मुनि को आते देख कर वह साधुवेष-धारी देव क्रुद्ध होकर कहने लगा—'तुम इतनी देर करके क्यो आये ? मुझे कितना कष्ट हो रहा है, इसका तुम्हे खयाल ही नही है ? सेवाभावी कहलाते हो और सेवा करने के समय इतना विलम्ब करते हो !' साधुरूपधारी देव इस प्रकार कहकर नंदिषेण को उपालभ देने लगा।

यद्यपि देव ने अपना शरीर घृणोत्पादक बनाया था और उसके शरीर से दुस्सह दुर्गन्ध फूट रही थी, फिर भी नंदिषेण-मुनि दुर्गन्ध से न घबरा कर उसकी सेवा करने के

लिये उसके पास गये। मगर पास पहुचते ही वह देव नाराज होकर उपालभ देने लगा। उपालभ सुन कर नदिषेण मुनि तनिक भी नाराज न हुए। उल्टे विलम्ब के लिये क्षमा-याचना करने लगे। उन्होने सेवा करने की आज्ञा देने की भी माग की।

नदिषेण की बात सुन कर देव ने कहा—देखते नही, मेरा शरीर कितना कृश, दुर्बल, अस्वस्थ बन गया है। शरीर की सेवा करने के सिवाय और क्या आज्ञा तुम चाहते हो ?

मुनि ने विचार किया—मगर मैं नगर मे दवा लेने जाऊगा तो बहुत देरी लगेगी। ऐसा विचार कर उन्होने देव से कहा—अगर आप नगर मे चले तो ?

देव—मेरे पैरो मे चलने की शक्ति होती तो तुम्हारी सहायता की आवश्यकता ही क्या थी ?

मुनि—मेरे पैर भी तो आपके ही है। आप मेरे कधे पर बैठ जाइए। मै उठा कर नगर तक ले चलूगा।

देव—मेरे हाथो मे भी तो शक्ति नही है। तुम्हारे कंधे पर चढू तो कैसे चढू ?

मुनि—तो क्या हानि है ? मै खुद ही अपने कधे पर बिठला लूगा।

सच्चा सेवक अपनी शक्ति को दूसरो की ही शक्ति मानता है और अपना तन, मन पर की सेवा के लिए समर्पित कर देता है। सेवा का यह आदर्श अगर जनसमाज के हृदय मे अकित हो जाय तो यह ससार स्वर्ग बन जाय।

नदिषेण मुनि ने उस देव को अपने कधे पर चढा लिया। देव ने नदिषेण मुनि को सेवा की प्रतिज्ञा से विचलित करने के लिये अपने शरीर मे से रक्त और पीव की धारा वहाई, मगर नदिषेण मुनि अपनी सेवा भावना को स्थिर और दृढ करते हुए देव के दुर्गन्धमय शरीर को उठा कर नगर मे ले गये। देव के शरीर से निकलती दुर्गन्ध के कारण तथा देव की प्रेरणा से प्रेरित होकर नगरजन मुनि से कहने लगे—'आप ऐसे रोगी मनुष्य को नगर मे नही ले जा सकते। एक रोगी के पीछे अनेको को रोगी नही वनाना चाहिये।

नागरिक जनो का विरोध देख कर नदिषेण मुनि की स्थिति कितनी वेढगी हो गई होगी? ऐसी विषम स्थिति मे मुनि के मन मे अनेक प्रकार के तर्क-वितर्कों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। परन्तु उन्होने खोटा तर्क–वितर्क नही किया। वे समभावपूर्वक नागरिक लोगो की बात सुनते रहे। मुनि ने मन-ही-मन विचार किया–'मैं नगरजनो को भी दु खी नही कर सकता और इस रोगी साधु की सेवा का भी परित्याग नही कर सकता। हे प्रभो! ऐसी विकट स्थिति मे क्या करूं?'

नदिषेण मुनि इस प्रकार विचार कर रहे थे, इतने मे साधु–वेषधारी देव ने भी विचार किया-'ऐसी विपम परिस्थिति उत्पन्न होने पर भी इन मुनि के हृदय मे सेवा के प्रति उतना ही दृढ विश्वास है। वास्तव मे इन मुनि की सेवाभावना अत्यन्त उच्च कोटि की है। इन्द्र महाराज ने इनकी सेवाभावना की जितनी प्रशसा की थी, वास्तव मे

मुनि का सेवाभाव वैसी ही प्रशसा का पात्र है।' इस प्रकार विचार करके साधुवेपधारी देव साधुवेष का त्याग करके, अपने स्वाभाविक रूप मे नीचे उतरा और मुनि के पैरो पर गिर कर कहने लगा—हे मुनिपु गव! आपकी सेवाभावना की जैसी प्रशसा इन्द्र महाराज ने की थी, आप वैसे ही सेवा-मूर्ति है। आपने सेवा द्वारा देवो को भी जीत लिया है। सेवा करने वाला देवो को भी जीत लेता है। शास्त्र मे भी कहा है —

देवाति त नमसति जस्स धम्मे सया मणो।

अर्थात्—जिनका मन धर्म मे सदा अनुरक्त रहता है, उन्हे देवता भी नमस्कार करते हैं।

वैयावृत्य करने वाले व्यक्ति के आगे देव भी नतमस्तक होते है फिर साधारण लोग अगर सेवाभावी को नमस्कार करे तो इसमे आश्चर्य ही क्या? सेवाभावी व्यक्ति को मन में किसी प्रकार का छल-कपट नही रखना चाहिए। जिनके मन मे विकार भाव नही होता, देव भी उनकी सेवा करते है। अतएव मन को पवित्र रखो।

# २ : क्षमामूर्ति खंधक मुनि

[क्रोध, मान, माया तथा लोभ—ये चार कषाय भवचक्र मे भ्रमण कराते है । अगर हम भवचक्र मे भ्रमण नही करना चाहते और आत्मा को शान्ति देना चाहते है तो क्षमा आदि साधनो द्वारा क्रोध आदि कषायो को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए । क्षमा द्वारा क्रोध किस प्रकार जीता जा सकता है, यह बात युधिष्ठिर के जीवन से समझी जा सकती है । युधिष्ठिर की भाति 'कोप मा कुरु' इस धर्म-शिक्षा को तुम अपने हृदय मे उतार कर सक्रिय रूप दोगे तो तुम भी धर्मात्मा वन कर आत्म-कल्याण साध सकोगे ।

क्रोध आदि को जीतने का मार्ग तो बतलाया परन्तु क्रोध आदि के उत्पन्न होने पर किस प्रकार सहनशीलता और क्षमा धारण करना चाहिए, वह वात खधक मुनि के उदाहरण द्वारा समझाता हू । सहनशीलता सीखने के लिये खधक मुनि की सहनशीलता अपने लिये आदर्श है । इस आदर्श का अनुसरण करने मे ही अपना कल्याण है ।]

खधक मुनि गृहस्थावस्था मे राजकुमार थे । वे राज-काज करने मे निपुण थे । उनके राज्य-सचालन से प्रजा सतुष्ट और सुखी थी । एक बार उन्हे किसी विद्वान् मुनि

का उपदेश सुनने का अवसर मिल गया। मुनिवर के उपदेश का प्रभाव उनके जीवन पर पडा । उन्होने विचार किया—मैं अपनी धीरता और वीरता का उपयोग केवल दूसरों के ही लिये करता हू । यह योग्य नही है । मुझे अपने इन गुणो का उपयोग अपनी आत्मा के लिये भी करना चाहिए। इस प्रकार विचार कर उन्होने माता-पिता से अनुरोध किया—'मै आत्मा का श्रेयस् करना चाहता हू, अतएव ऐसा करने की आज्ञा दीजिए ।' माता-पिता ने कहा—पुत्र ! तू आत्मा का श्रेयस् करना चाहता है, यह अच्छी बात है, प्रसन्नता पूर्वक ऐसा कर ।' खधकजी बोले-'ससार मे रहकर आत्म-श्रेयस् साधना मुझे कठिन प्रतीत होता है, अतएव मैं ससार का त्याग करके आत्मकल्याण करने की इच्छा करता हू ।' पुत्र का यह कथन सुन कर उनके माता-पिता दुखित होकर कहने लगे—'बेटा ! ससार का त्याग थोडे ही हो सकता है ।' खधकजी बोले—ऐसा है तो आप यह कहिये की आत्म-कल्याण न साध अथवा कहिये कि ससार का त्याग करके आत्मकल्याण नही किया जा सकता ।' खधकजी का यह कथन सुनकर माता-पिता उनका निश्चय और सदाशय समझ गए और उन्होने ससार-त्याग करके आत्मकल्याण करने की आज्ञा दे दी। साथ ही यह कहा—'बेटा ! तू क्षत्रियपुत्र है। अतएव सिंह की भांति ही सयम का पालन करना ।' खधकजी ने माता-पिता की शिक्षा शिरोधार्य करते हुए कहा—'आपका कथन समुचित है। मे आपके आदेशा-नुसार सयम-पालन मे सिंहवृत्ति धारण करने का अभ्यास करूंगा ।'

खधकजी ने उत्साह और वैराग्य के साथ सयम

स्वीकार किया। पिता ने विचार किया—'खधक ने आज तक किसी प्रकार का कष्ट सहन नहीं किया है। अतएव मुझे ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिए कि उसे किसी प्रकार का उपद्रव न सतावे।' इस प्रकार विचार करके पिता ने पुत्रमोह मे प्रेरित होकर पाच सौ सैनिको की व्यवस्था कर दी। ऐसा प्रबन्ध किया गया कि खधकजी को इस बात का पता न लगे मगर उनकी बराबर रक्षा होती रहे। सैनिक गुप्त रूप से खधक मुनि के साथ रहने लगे। खधक मुनि को इन रक्षक सैनिको का पता नहीं था। वह तो यही जानते थे कि मेरी रक्षा करने वाला मेरी आत्मा ही है, दूसरा कोई नहीं है। इस प्रकार खधक मुनि तपश्चरण करके आत्मकल्याण करने लगे और आत्मा को भावित करते हुए ग्रामानुग्राम विचरने लगे।

विहार करते-करते वे अपनी सगी बहिन के राज्य मे पधारे। उनके पीछे गुप्त रूप से चले आने वाले सैनिक विचार करने लगे—अब खधकजी अपनी बहिन के राज्य मे आ पहुचे है, अब किसी प्रकार के उपद्रव की सम्भावना नही है। इस प्रकार निश्चिन्त होकर सैनिक अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार दूसरे कार्यों मे लग गए। इधर खधक मुनि आत्मा और शरीर का भेदविज्ञान हो जाने के कारण तपश्चरण द्वारा शरीर को सुखाकर आत्मा को बलवान बनाने मे लगे है।

एक बार खधक मुनि भिक्षाचारी करने के लिये राज-महल के पास से निकले। उस समय राजा और रानी राजमहल की अटारी पर बैठ कर नगर-निरीक्षण करने के साथ ही साथ

मनोविनोद कर रहे थे । रानी की दृष्टि अकस्मात् मुनि के ऊपर पड गई । मुनि को देखते ही रानी विचारने लगी–मेरा भाई भी इन्ही मुनि की तरह भ्रमण करता होगा । इस तरह विचारमग्न होने के कारण रानी क्षण भर के लिये मनोविनोद और वाणीविलास को भूल गई । राजा ने देखा साधु को देख कर यह मुझे भूल गई है और दूसरे ही विचारो मे डूब गई है । यह साधु शरीर से तो कृश है पर ललाट इसका तेजस्वी है । इस मुंडित साधु के प्रति रानी का प्रेम भाव तो नही होगा ? इस विषय मे दूसरो की सलाह लेना भी अनुचित है । अतएव किसी और से पूछने की अपेक्षा इस साधु को समाप्त कर देना ही ठीक है । इस प्रकार विचार कर राजा ने नौकर (चाण्डाल) को बुला कर आज्ञा दी–उस साधु को वधभूमि पर ले जाओ और मार कर उसकी खाल उतार लाओ ।

राजा की यह कठोर आज्ञा सुन कर चाडाल काप उठा । वह मन-ही-मन विचार करने लगा–आज मुझे कितना जघन्य काम सौपा गया है ! मैं चाकर हू, अतएव यह काम किये विना छुटकारा नही । अगर मै राजा की आज्ञा का उल्लघन करता हू तो मैं उनका कोप–भाजन बनूंगा और शायद मुझे प्राणदण्ड दिया जायगा । इस प्रकार विचार कर वह खधक मुनि के पास आया और उन्हे पकडने लगा । मुनि ने पूछा–मुझे किस कारण पकड़ा जा रहा है ? चाडाल ने कहा–राजा ने पकडने की आज्ञा दी है । अतएव चुपचाप मेरे पीछे चले आओ ।

मुनि ने पूछा-चलना कहां है ?

चांडाल—श्मशान भूमि मे

मुनि—किसलिए ?

चांडाल—राजा की आज्ञा के अनुसार वहां तुम्हारा वध किया जायगा और तुम्हारे शरीर की खाल उतारी जायगी ।

यह हृदयविदारक वचन सुन कर मुनि को आघात पहुंचना स्वाभाविक था। परन्तु खधक मुनि को शरीर और आत्मा का भेदविज्ञान था । अतएव वह विचारने लगे—यह शरीर नश्वर है । किसी–न–किसी दिन जीर्ण-शीर्ण हो जायगा । ऐसी स्थिति मे अगर आज ही यह नष्ट होता है तो इसमे मुझे दु.ख मानने की क्या आवश्यकता है ? मेरा आत्मा तो अजर-अमर है। उसे कोई नष्ट नही कर सकता। इस प्रकार विचार करके और धैर्य धारण करके खधक मुनि चुपचाप नौकर के पीछे–पीछे चलने लगे । जब दोनो वध-स्थल पर पहुचे तो मुनि ने चाण्डाल से कहा—भाई ! मेरे शरीर मे रक्त नही है, इस कारण चमडी हाडो के साथ चिपट गई हैं। अत. खाल उधेडने के लिये कोई साधन साथ मे लाये हो या नही ? अगर कोई साधन नही लाये हो तो तुम्हे बहुत कष्ट होगा । मुनि का यह मार्मिक कथन सुन कर वह लज्जित हो गया। वह मन मे विचार करने लगा—कितना पापी हू मैं ! मुझे अपने इन पापी हाथो से एक महात्मा के शरीर की खाल उतारनी पडेगी। वह नम्र भाव से मुनि से कहने लगा—आप महात्मा है । आपके हृदय मे मुझ जैसे पापात्मा के प्रति भी करुणा है परन्तु इस समय मैं निरुपाय हूं । मुझे अनिच्छा से और दुखित मन से

भी आपके वध का पाप करना पडेगा ।

वधस्थल पर ले जाकर चाडाल ने दुखी हृदय से मुनि का वध किया और उनके शरीर की खाल उतार ली। परन्तु वह ज्ञानमूर्ति मुनिराज परमात्मा के ध्यान से तनिक भी विचलित नही हुए । शरीरनाश के समय उन्होंने अपनी आत्मा परमात्मा के साथ ऐसा अनुसन्धान किया कि परमात्मा का ध्यान करते हुए उन्हे मृत्यु का दुख मालूम ही नही हुआ मुनि के मन मे किसी के प्रति न क्रोधभाव उत्पन्न हुआ और न वैरभाव ही उत्पन्न हुआ । उस समय खधक मुनि क्षमा की साक्षात् मूर्ति वन गये । क्षमाशीलता का इससे ऊचा आदर्श और क्या हो सकता है? क्षमाशील रहना तो साधु का धर्म है। समर्थ साधु ही ऐसा वध-परिषह सह सकते है । क्षमाशील साधु कैसे होते है, इस सम्बन्ध मे शास्त्र मे कहा है —

हओ न सजले भिक्खू, मण पि न पओसए ।
तितिक्ख परम नच्चा, भिक्खू धम्म समायरे ।।

अर्थात् – कोई प्राणो का हरण करे तो भी भिक्षु उस पर क्रोध न करे, यहा तक कि मन मे भी द्वेष न लाये । वल्कि तितिक्षा (सहन-शीलता-क्षमा) को उत्तम गुण समझ कर क्षमाशील साधु क्षमाधर्म का ही पालन करे ।

खधक मुनि ने दस प्रकार के साधु धर्मो मे प्रथम और प्रधान क्षमाधर्म को सर्वोत्कृष्ट समझकर प्राण अर्पण कर दिये और जगत् के समक्ष क्षमा का अनूठा आदर्श उपस्थित करने के साथ अपने जीवन को धन्य वना लिया ।

खधक मुनि ने प्राण त्याग करते समय ऐसी उच्च भावना भायी थी कि —

चाहत जीव सवै जग जीवन, देह समान नही कछु प्यारो ।
सयमवत मुनिश्वर को, उपसर्ग हुए तन—नाशन हारो ।।
तो चितवे हम आतमराम, अखड अवाधित ज्ञान भडारो ।
देह विनाशक सो हम तो नही, शुद्ध चिदानन्द रूप हमारो ।।

खधक मुनि ने इस प्रकार की उच्च भावना भाते हुए केवलज्ञान प्राप्त किया । जिस उद्देश्य के लिए उन्होने ससार त्याग किया था, वह आत्म-श्रेय-साधन का उद्देश्य सिद्ध करके मोक्ष प्राप्त किया। इस प्रकार खधक मुनि सिद्ध, वुद्ध और मुक्त हो गए ।

वह नौकर, जिसने मुनि का वध किया था, मुनि की खाल लेकर राजा के सामने उपस्थित हुआ । राजा ने मुनि की खाल उतार लाने की आज्ञा तो अवश्य दी थी, परन्तु जव मुनि के शरीर की खाल उसकी दृष्टि के सामने आई तो उसे देखकर वह एक वार काप उठा । कहने लगा— हाय ! मैने यह कैसा कुकृत्य किया कि एक महात्मा के शरीर की खाल उतार ली ! नौकर ने महात्मा की धीरता वीरता और क्षमा की सब वाते कही । नौकर की वाते सुन कर राजा पश्चात्ताप करने लगा । उसे इतना सताप हुआ कि आखो से आसुओ की धारा वहने लगी । जब रानी को विदित हुआ कि किसी मनुष्य की खाल उतरवाई गई है और रानी ने उसे जाकर प्रत्यक्ष देखा तो वह भी रुदन करने लगी ।

इसी वीच एक चील राजा के महल पर उडती-उड़ती आई । उसने रक्त से रजित मुनि की मुखवस्त्रिका या दूसरा कोई वस्त्र उठा लिया था । मगर उस चीज मे उसे कोई स्वाद नही आया । अतएव उसने वह वस्त्र राजा के महल पर ही छोड दिया और वह उड गई । खून से लथपथ वह वस्त्र मगवाकर देखा तो जान पडा कि यह वस्त्र किसी मुनि का मालूम होता है । रानी राजा के पास गई और कहने लगी—महाराज ! आपके राज्य मे किसी मुनि का घात हुआ है । यह वस्त्र उसी मुनि का मालूम होता है । रानी ने यह भी कहा-उन मुनि ने ऐसा क्या अपराध किया था कि उन्हे प्राणदण्ड दिया ? रानी के प्रश्न के उत्तर मे राजा ने अथ से इति तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया । राजा का कथन सुन कर रानी के दु ख का पार न रहा ।

रानी ने कहा—मुनि को प्राणदण्ड देने मे पहले जाच तो कर लेते कि मैंने मुनि की ओर किसलिए देखा था ? आपने यह कुकृत्य करके घोर अनर्थ किया है । मुनि को देखकर मेरे मन मे विचार आया कि मेरा भाई भी इन मुनि की तरह घर—घर भिक्षा के लिये भटकता होगा ! आपने मेरी दृष्टि मे विकार देखा, मगर वास्तव मे मेरी दृष्टि मे अथवा मुनि की दृष्टि मे किसी प्रकार का विकार नही था ।

राजा ने खोज कराई तो मालूम हुआ कि वह मुनि रानी के ससारावस्था के भाई ही थे । यह जान कर राजा को भी वहुत पश्चात्ताप हुआ ।

रानी ने कहा—अब पश्चात्ताप करने से मुनि फिर जीवित होने के नही । अतएव पश्चात्ताप करना छोड़ो और इन मुनि के मार्ग का अनुकरण करो । इसी मे अपना कल्याण है । आखिर राजा-रानी दोनो ने संयममार्ग ग्रहण करके आत्मकल्याण किया ।

कहने का आशय यह है कि मुनि के मन मे जो क्षमा होती है, उसका प्रभाव दूसरे पर पडता है । राजा कितना कठोरहृदय था कि मुनि का किसी प्रकार का अपराध न होने पर भी उसने मुनि के शरीर की चमडी उधेड लेने की आज्ञा दे दी ! परन्तु मुनि की अनुपम क्षमा का वृत्तान्त सुनकर उस कठोर हृदय राजा का हृदय भी परिवर्तित हो गया । इस प्रकार साधक मुनि ने क्षमा का आदर्श उपस्थित करके स्व-पर-कल्याण साधन किया । इस प्रकार की क्षमा धारण करने वाले ही वास्तव मे महान् है । क्षमा इस लोक का भी बल है और परलोक का भी बल है । ससार मे उन्हो पुरुषो का जीवन धन्य बन जाता है, जो स्वय क्षमा शील बन कर दूसरो को भी क्षमाशील बनाते है ।

तुम क्षमाशील बन कर आत्मा का कल्याण साधो । इसी मे तुम्हारा कल्याण है ।

# ३ : विरल-विभूति

## श्री एवन्ताकुमार

### (१)

गौतम स्वामी नीची नजर किये हुए गज-गति से भिक्षा के लिए पधारे। जिनके सामने सर्वार्थसिद्ध विमान के अहमिन्द्र देव भी तुच्छ है, ऐसे सुन्दर गौतम स्वामी भिक्षा के लिए उसी ओर से निकले, जहा एवन्ताकुमार बालको के साथ खेल रहे थे। वे खेल के स्थल के समीप होकर निकले। गौतम स्वामी पर एवन्ताकुमार की दृष्टि पडी। एवन्ताकुमार उन्हे देखकर सोचने लगा—इनका रूप कितना सुन्दर है! इनमे कैसी ज्योति दैदीप्यमान हो रही है! मुख पर कितनी उज्ज्वलता है! मुख इतना सौम्य है कि मानो अमृत टपकता है। ऐसे तेजस्वी पुरुषो को किस चीज की कमी है?

इस प्रकार सोच-विचार के पश्चात् एवन्ताकुमार ने गौतम स्वामी से ही उनके घर—घर फिरने का कारण पूछना उचित समझा।

खेल छोडना बालको को बडा अप्रिय मालूम होता है,

फिर भी एवन्ताकुमार गौतम स्वामी की ओर इतना अधिक आकृष्ट हुआ कि उसने खेलना छोड दिया । खेल छोडने मे गौतम स्वामी की महिमा कारण है या एवन्ताकुमार की महिमा कारण है, यह कौन जाने ? लेकिन एवन्ताकुमार ने खेलना छोड दिया ।

गौतम स्वामी की अद्‌भुत तेजस्विता देखकर साधारण आदमी को कुछ पूछने मे भी झिझक होती, मगर, एवन्ताकुमार क्षत्रियपुत्र था । वह अपने मन मे उठी हुई जिज्ञासा का निवारण करने के लिये किसी से भयभीत होने वाला नही था और गौतम स्वामी मे कैसा आकर्षण था कि उन्होने एवन्ताकुमार को अपनी ओर उसी तरह खींच लिया, जिस तरह चुम्बक लोहे को खीच लेता है । बच्चे के लिये खेल उतना आकर्षक है जितना कृपण के लिये मूल्यवान खजाना भी शायद न हो । मगर गौतम स्वामी के आकर्षण से एवन्ताकुमार खिच आये । वे अपने साथियो को खेलता छोडकर गौतम स्वामी के पास आये और उनसे कहने लगे— भगवन् ! आप कौन है ? और किस प्रयोजन से इधर-उधर फिर रहे हैं ।

एवन्ताकुमार का यह भावपूर्ण आर्द्र प्रश्न सुन कर गौतम स्वानी ने न मालूम किस दृष्टि से उसे देखा होगा !

एवन्ताकुमार के प्रश्न के उत्तर मे गौतम स्वामी कहने लगे—हम श्रमण निर्ग्रन्थ है । सचित्त, क्रीत, औद्देशिक और सदोप आहार नही लेते और हमे भिक्षा की आवश्यकता है, इसलिए हम भिक्षा की तलाश मे घर-घर जाते है ।

एवन्ताकुमार वोले—जिनका तेज इतना उग्र है, जिनके तेज के आगे देवो का भी तेज फीका पडता है, उन्हे भिक्षा मागनी पडती है और वह भी घर-घर से ! चलो भगवन् ! मेरे घर चलो । मैं तुम्हे भिक्षा दूगा ।

इतना कहकर और उत्तर की प्रतीक्षा न करके एवन्ता कुमार ने गोतम स्वामी की उगली पकड ली ।

गौतम स्वामी को एवन्ताकुमार से अपनी ऊगली छुडा लेनी चाहिए थी या नही ? उगली न छुडाने पर कदाचित् श्रावक निन्दा करने लगते कि यह भी साधु की कोई रीति है ? मगर वहा कौन किसके लिये एतराज करता ? एवन्ता-कुमार ने गौतम स्वामी की उगली क्या पकडी, मानो कल्प-वृक्ष मे फल लग गया था । एवन्ताकुमार की वीरता, धीरता और होनहारता देखकर गौतम स्वामी भी उनसे उंगली न छुडा सके । कहावत है :—

होनहार विरवान के होत चीकने पात ।

उस होनहार वालक से गौतम स्वामी अपना हाथ न छुडा सके । गौतम स्वामी की उगली पकड़े एवन्ताकुमार उन्हे भिक्षा देने के लिए कहकर अपने घर ले गये । गौतम स्वामी वालक की भावुकता पर मुग्ध हो गये और उसकी अवज्ञा न कर सके । वे वालक के साथ-ही-साथ खिचे चले गये ।

उधर श्रीदेवी एवन्ताकुमार की प्रतीक्षा मे थी । सोच रही थी—वह कहा चला गया और अव तक भोजन करने

भी नही आया । इसी समय गौतम स्वामी की उगली पकडे एवन्ताकुमार आता दिखाई दिया । श्रीदेवी को अतिशय प्रसन्नता हुई ।

एवन्ताकुमार की मा कहने लगी - लाल ! मैं तेरी राह देख रही थी कि तू आवे और भोजन करे । लेकिन तू पुण्य की निधि है, जो खेल छोडकर इस जहाज को ले आया । नही तो यह जहाज कहा नसीब होता है ।

गौतम स्वामी को देखकर श्रीदेवी को कितना हर्ष हुआ होगा, यह बताना बृहस्पति के लिये भी शायद सम्भव नही है । जब बृहस्पति की जिह्वा भी यह नही बता सकती, तो मैं क्या कह सकता हू ?

श्रीदेवी ने एवन्ताकुमार से कहा—बेटा ! यह जहाज यहा कब आता ? कौन जानता था कि यह भव-सागर का जहाज आज इधर आ जायगा ? तेरी बदौलत आज इस लोकोत्तर जहाज का आगमन हुआ है ।

माता की यह बातें सुनकर एवन्ताकुमार को इतनी अधिक प्रसन्नता हो रही थी, मानो किसी सेनापति ने किसी दुर्भेद्य दुर्ग को जीत लिया हो । माता की प्रसन्नता देखकर उसे अपने कार्य का गौरव मालूम हुआ । बालक को उस समय अत्यन्त प्रसन्नता होती है, जब मा उसके किसी कार्य से प्रसन्न होती है ।

एवन्ताकुमार ने गौतम स्वामी के तीन बार प्रदक्षिणा देकर उनसे प्रार्थना की—भगवन् ! यह आहार पानी निर्दोष

है इसे ग्रहण कीजिए। वैसे तो वह राजा का घर था, परन्तु गौतम स्वामी को जितने आहार-पानी की आवश्यकता थी, उतना उन्होने ने लिया। आहार-पानी ग्रहण करने के पश्चात् जब गौतम स्वामी लौटने लगे, तो एवन्ताकुमार ने उनसे पूछा—'प्रभो ! आप कहा रहते है ?'

गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—'हे बालक, मैं भगवान् महावीर स्वामी का शिष्य हू और उन्ही के पास रहता हू। भगवान् इस समय नगर के बाहर बगीचे मे ठहरे हैं।'

गौतम स्वामी ने यह नही कहा कि मैं बाग में ठहरा हू। उन्होंने अपने को भगवान् के पास रहने वाला प्रकट किया। इस प्रकार वे प्रत्येक कार्य मे अपने गुरु को ही प्रधानता देते थे। गुरु को कभी भूलते नही थे। वास्तव मे अपने गुरु को भूल जाने वाला शिष्य अभागा है।

गौतम स्वामी का उत्तर सुनकर एवन्ताकुमार उनसे कहने लगे—मैं जिन्हे देखकर आश्चर्य करता हू, वह भी शिष्य है ! उनके भी गुरु है ! शिष्य ऐसे है तो गुरु न जाने कैसे होंगे ? भगवन् ! मैं आपके साथ चल कर भगवान् महावीर के दर्शन करना चाहता हू।'

एवन्ताकुमार की भावना मे और उसके उत्साह मे इतना बल था कि न तो गौतम स्वामी ही उसे मना कर सके, न उसकी माता श्रीदेवी को ही ऐसा करने का साहस हुआ। बल्कि श्रीदेवी को यह विचार कर बडी प्रसन्नता हुई कि बालक को गौतम स्वामी इतने प्रिय लगे।

लारे लारे चाल्यो बालक भेटचो भाग सुभाग ।
भगवता री वाणी सुनने मन आयो वैराग्य ।।रे एवन्ता०।।

एवन्ताकुमार गौतम स्वामी के साथ-साथ भगवान् महावीर के पास आये । भगवान् को देखकर एवन्ताकुमार के हर्ष का पार न रहा । जैसे बहुत दिनो के प्यासे चातक को वर्षा की बूंद मिलने से आनन्द होता है, बहुत दिनो से बिछुडी माता को पाकर बालक के हर्ष की सीमा नही रहती, चिरकाल तक परदेश मे रह कर घर आने वाला घर पर नजर पडते ही प्रसन्न होता है, उसी प्रकार भगवान् को देख एवन्ताकुमार को असीम आनद हुआ ।

भगवान् ने उपदेश की अमृत—धारा बरसाई, जिसे सुनकर एवन्ताकुमार की आत्मज्योति जगी । उसने भगवान् से प्रार्थना की—'प्रभो ! मैं माता—पिता से आज्ञा लेकर आपके निकट दीक्षा लूगा ।' भगवान् ने सक्षिप्त उत्तर दिया- 'तुम्हे जिस तरह सुख हो, वैसा करो ।'

एवन्ताकुमार लौटकर अपनी माता के पास आया । माता को प्रणाम किया । माता ने कहा—'बहुत देर लगाई बेटा ! आज तुम्हे भोजन करने की भी सुध न रही ! कब से मैं तुम्हारी राह देख रही हू ।'

एवन्ताकुमार—माँ ! आज मैंने वह अमृत पिया कि बस, कह नही सकता । उसका वर्णन करना असम्भव है । मैं गौतम स्वामी के साथ भगवान् महावीर के पास गया था । वहा जाकर भगवान् की वाणी सुनी । अत्यन्त आनन्द हुआ ।

अब तुम मुझे आज्ञा दे दो तो मैं भगवान् के निकट दीक्षा ले लूं ।

तू कांई जाणे,साधपण मे वाल अवस्था थारी ।
उत्तर दीधो ऐसो कुंवरजी मात कहे बलिहारी ।रे एवन्ता।

दीक्षा की वात सुनकर औरो की माता तो मोह-ममता के आवेग मे रोई होगी, पर एवन्ता की माता को हसी आ गई । वह कहने लगी—'लाल ! दीक्षा कोई खेल थोडे ही है ! तू क्या जाने सयम क्या है और सयम का मार्ग कितना कठोर है ! अभी तेरा खेल-कूद नही छूटा, दूध के दात भी नही गिरे है । फिर भी तू संयम लेने की बात कहकर मुझे आश्चर्य मे डालता है ।'

माता की इस बात के उत्तर मे एवन्ताकुमार ने कहा-माता ! मैं जिसे जानता हू, उसे नही जानता और जिसे नही जानता, उसे जानता हू ।

यो एवन्ताकुमार का यह उत्तर आश्चर्य मे डालने वाला है, लेकिन यही तो स्याद्वाद है । विसंगत प्रतीत होने वाले कथन को सगत वनाना स्याद्वाद का प्रायोजन है । एवन्ताकुमार के इस उत्तर मे सभी तत्त्व आ गये है ।

एवन्ताकुमार की माता ने यह टेढा-मेढा-सा उत्तर सुनकर पूछा—'ऐसी क्या वात है जिसे जानता हुआ भी नही जानता और नही जानता हुआ भी जानता है ।'

कुमार ने कहा—'माता लोगो की आखो पर पर्दा पडा हुआ है । मेरी आखो पर भी पड़ा हुआ था, मगर

आज भगवान् की कृपा से उठ गया । अब मुझे प्रकाश दिखाई दे रहा है । मा । यह कौन नही जानता कि ससार मे जितने भी जन्मे है, वह सब मरेगे ? यह बात सभी जानते हैं और मैं भी जानता हू कि जो जन्मा है, वह मरेगा । जिसका उदय हुआ है, वह अस्त भी होगा । जो फूला है कुम्हलाएगा ही । मैं यह जानता हू, मगर यह नही जानता कि यह किस घड़ी और किस पल मे होगा ? इसी को कहते है - जानते हुए भी न जानना ।'

इस कथन मे बडा रहस्य भरा हुआ है । उपनिषद मे कहा है—

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्य पिहित मुखम् ।

सोने के ढक्कन से जिस सत्य का मुंह ढका हुआ है, एवन्ताकुमार उस सत्य का मुंह खोल रहा है ! आप यह तो जानते है कि मरना है, मगर यह नही जानते कि कब मरना है । फिर मरण को क्यो भूले हुए है । अगर भूले नही हो तो ढील क्यो कर रहे हो ? याद रखकर आत्मा का कल्याण क्यो नही करते ? ससार के लोग यह झूठ ही कहते है कि हमे मरने का ज्ञान है । जिसे मृत्यु का स्मरण हो, वह बुरे काम क्यों करेगा ? वह अन्याय, अत्याचार और पाप कैसे कर सकता है ? लोग यह सब करते है, इससे जान पडता है कि वे मरना नही जानते । महाराज चतुर्रसिह जी ने एक पद कहा है—

या मनखा मोटी बात मरणो जाणणो ।
मरणो मरणो सारा केवे, मरे सभी नर-नारी रे ।

मरवा पेली जो मर जावे तो बलिहारी रे ।।मरणो०।।
जीवा सू सगलो जग राजी मरणो कोइय न चावे रे ।
राजा रक सभी ने सरखो तो पण आवे रे ।।मरणो०।।
दूजा भूप डरप ने म्लेच्छा कोदी तावेदारी रे ।
वीर प्रताप जाण ने मरणो टेक न हारी रे ।।मरणो०।।
मरवा ने वनवीर विसरियो धाय याद कर लीनो रे ।
चूं खाया रे माटे जायो जातो कीनो रे ।।मरणो०।।
गुरु गोविन्द रो ब्राह्मण भूल्यो बालक दोय चिणाया रे ।
भामासाह धन्या ने धन दे पाछा लाया रे ।।मरणो०।।
मरवा ने जो जाणै वीसू पाप कर्म नही होवे रे ।
सुख दु ख री परवा नही राखे प्रभू ने सेवे रे ।।मरणो०।।
मरने ज्याव राम ने देणा या जीरे मन लागी रे ।
चतुर चरण वणी रा सेवे वो वडभागी रे ।।मरणो०।।

सच है, जो मरना जानते होगे, वह बुरे काम कदापि नही करेंगे । इस जगह बुरे काम का मतलब दारू पीना, मास खाना, पर-स्त्रीगमन करना, जुआ खेलना, चोरी करना और विश्वासघात करना आदि समझना चाहिए । मृत्यु को जानने वाला कम-से-कम इन पापो से अवश्य बचेगा ।

कई लोगो मे कुलपरम्परा से दारू, मास का अटकाव होता है । उनके यहा इन घृणित चीजो का व्यवहार करने वाला जाति से बाहर कर दिया जाता है । अगर जाति के बडे-बडे समझे जाने वाले लोग ही इनका सेवन करने लगे तो बेचारे छोटे क्या कर सकते है ? उन छोटो की जबान

वन्द कर दी जाती है। क्या ऐसे बडे-बडे मरना जानते है ? मरना जानते होते तो यह पाप क्यो करते ? शराब पीना तो मुसलमानो मे भी हराम है। कुरान की आज्ञा का पालन करने वाले मुसलमान उस जमीन को भी खोद फेंकते है, जहां शराव का छींटा गिर पड़ा हो। लेकिन उनमे भी जो लोग मरना भूले है, वे शराव पीते है।

शराव को वहुतेरे लोग 'लाल शर्वत' कहकर पी जाते हैं। मगर नाम वदल देने से वस्तु नही वदल जाती।

आज-कल मासभक्षण का और उसमे भी ग्रडा खाने का प्रचार वढता चला जाता है। यहा तक की हिन्दू समाज के नेता समझे जाने जाले कतिपय लोग हिन्दुओ को मासभक्षण करने का खुला उपदेश देने मे सकोच नही करते। बहुत से लोग ग्रडे को मास के अन्तर्गत ही नही समझते। मैंने कही पढा था कि गाधी जी ने जब विलायत जाने का निश्चय किया, तब उनकी माता ने उन्हे वहुत रोका। गाधीजी की माता के सस्कार उत्तम थे। वह साधुमार्गी जैन मुनियो के सम्पर्क मे थी। उन्होने गाधी से कहा—'विलायत जाने वाले वहां भ्रष्ट हो जाते है, इसलिए मै तुझे नही जाने दूगी।' जब गाधीजी ने वहुत कुछ कहा-सुना तो उनकी माता एक शर्त पर उन्हे जाने देने के लिए सहमत हुई। माता ने कहा—अगर तुम मेरे गुरु के पास चलकर मदिरा, मांस और परस्त्री का त्याग कर दी तो मै जाने दे सकती हू, अन्यथा नही।

विलायत में परस्त्री सेवन ऐसी साधारण बात है कि मानो पाप मे उसकी गिनती ही नही है। सुनते हैं अमेरिका मे ६५ प्रतिशत तलाक होते है और विवाहो की अपेक्षा तलाको

की सख्या वढने की तैयारी है । फ्रास मे इतना व्याभिचार है कि घर वाला पुरुष अपने घर मे किसी दूसरे पुरुष को आया जानता है तो वह वाहर से ही लौट जाता है । वह घर मे प्रवेश नही कर सकता ! मित्रो ! भारतवर्ष इस दिशा मे अव भी अत्यन्त सौभाग्यशाली है । भारतीयों मे इस दृष्टि से काफी मनुष्यता मौजूद है । यहां पशुता का यह नग्न ताण्डव नही है । भारतीय लोग इस प्रकार के दुराचार को घृणा की दृष्टि से देखते है ।

आखिरकार गाधीजी अपनी माता के गुरु के निकट प्रतिज्ञावद्ध होकर विलायत गये । वहा जव वह बीमार हो गये, तो डाक्टरो ने दारू पीने की सलाह दी । गाधीजी ने कहा मैं दारू पीने का त्याग कर चुका हू ।

डाक्टरो ने कहा–अच्छा, अण्डा खाने मे तो कुछ हर्ज नही है ? उन्होने युक्तियो से सावित करने की चेष्टा की कि अडा, मास मे सम्मिलित नही है । मगर गाधीजी कोई सामान्य पुरुष नही थे । उन्होने कहा–अडा, मास मे शामिल हो अथवा न हो, मगर मेरी माता उसे मास मे ही गिनती है और मैंने अपनी माता की समझ के अनुसार ही प्रतिज्ञा ग्रहण की है । ऐसी हालत मे मै आपकी वात न मानकर अपनी माता की वात मानना उचित समझता हू । मैं किसी भी दशा मे अडा नही खा सकता ।

गांधीजी अपनी वात पर डटे रहे । वीमारी की हालत मे, डाक्टरो का आग्रह अस्वीकार करके भी उन्होने अडा नही खाया । गाधीजी ने वीमारी मे कष्ट पाना मंजूर किया, पर धर्म से डिगना स्वीकार नही किया । कष्ट पाये

बिना धर्म का पालन होता भी तो नही है ! गांधीजी ने प्रतिज्ञा न की होती और प्रतिज्ञा पर अटल न रहे होते तो कौन कह सकता है कि आज वह 'महात्मा गाधी' कहलाने के अधिकारी होते या नहीं ? जिस मनुष्य मे उच्च चारित्र का अभाव है, वह भी कोई मनुष्य है ?

अडा और मछली का तेल (कॉड लीवर ऑयल) जैसे घृणित पदार्थो ने धर्म के सस्कार नष्ट कर दिये है ।

इन सब पापमय वस्तुओ का सेवन लोग किसलिए करते हैं ? दीर्घ जीवन के लिए ! बहुत समय तक मृत्यु से बचे रहने के लिए इन वस्तुओ का व्यवहार किया जाता है, मगर दुनिया कितनी अधी है कि आखो को दिखाई देने वाले फल को भी वह नही देखती । ज्यो–ज्यो इनका प्रचार बढता जाता है, त्यो–त्यो रोग बढते जा रहे हैं, नई-नई आश्चर्य–जनक बीमारिया डाकिनो की तरह पैदा हो रही है, उम्र का औसत घटता जा रहा है, शरीर की निर्बलता बढती जाती है इन्द्रियो की शक्ति दिनो–दिन क्षीण से क्षीणतर होती जा रही है, देखते–देखते चटपट मौत आ घेरती है, फिर भी अन्धी दुनिया को होश नही आता ! क्या प्राचीन काल मे ऐसा था ? नही । तो फिर 'पूर्व' की ओर उदय–की दिशा मे—प्रकाश के सम्मुख न जाकर लोग 'पश्चिम' की तरफ—अस्त की ओर, मृत्यु के मुंह की सीध मे—क्यो जा रहे हैं ? जीवन की लालसा से प्रेरित होकर मौत का आलिगन करने को क्यो उद्यत हो रहे हैं ? मित्रो ! आखें खोलो फिर आप ही सब कुछ समझ जाओगे ।

परस्त्री तो सब के लिए माता के समान होनी चाहिए ।

भूधर कवि कहते हैं :—

पर—ती लखि जे धरती निरखें,
धनि हैं, धनि है, धनि नर ते।

जहां पाल बधी नही, होती वहा पानी नही रुकता और जहा पानी नही रुकता, वहा अच्छी खेती नही हो सकती। मैंने ज्ञानियो के वचन आपको सुनाकर उपदेश की वर्षा की है, पर पाल के अभाव मे यह उपदेश भी कल्याण-कारी नहीं हो सकेगा। अतएव पाल वध जानी चाहिए जिससे उपदेश का पानी ठहर सके और आपका कल्याण हो। आजकल जैसी—तैसी कमाने—खाने के योग्य व्यावहारिक शिक्षा तो दी जाती है मगर धर्म की वर्षा तभी ठहर सकती है, जब धार्मिक शिक्षा दी जाय। हमारे उपदेश का पानी रोकने की पाल धर्म की शिक्षा है। अतएव वालको को उस धर्म की शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए, जिसमे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि का समावेश हो। विनीत पुत्र तो सभी मा-वाप चाहते है, परन्तु शिक्षा ऐसी देते—दिलवाते है, जिसमे धर्म को स्थान नही होता। ऐसी अवस्था मे वालक विनीत हो कैसे ? मा-वाप नही समझते कि मा-वाप किस प्रकार वनना चाहिए ? वे अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व से अनभिज्ञ है। इस स्थिति मे सन्तान खराव होती है तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

नागिन और विलाव के विषय मे प्रसिद्ध है कि वह अपने वच्चो को खा जाती है। जिसके मां—वाप नागिन और विलाव के समान है वह वालक सुख कैसे पा सकते

है ? इसी प्रकार जो माता-पिता अपने बालक को धर्म की शिक्षा ही नही देंगे, तो उनका बालक विनीत किस प्रकार बन सकेगा ?

एवन्ताकुमार को अल्प—आयु मे भी धर्म की शिक्षा मिली थी। इसी से वह कह रहा है—'माता ! मैं यह तो जानता हूं कि मरना आएगा, लेकिन यह नही जानता कि कब आएगा। इसी प्रकार मै यह तो जानता हू कि स्वर्ग, नरक आदि कर्म से ही मिलते है, किन्तु यह नही जानता कि किस क्षण के कर्म से स्वर्ग और किस क्षण के कर्म से नरक मिलता है ? हे मा ! तू मुझे छोटा कहती है, लेकिन क्या छोटे नही मरते ? अगर छोटी आयु मे भी मृत्यु आ जाती है, तो ससार मे रहना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ?'

माता ने समझ लिया कि बालक को तत्त्वज्ञान हो गया है, इसलिए अब गृहस्थी मे नही रहेगा। जिसकी आत्मा मे ज्ञान का प्रकाश फैल जाता है, जो जगत् के वास्तविक स्वरूप को समझ लेता है, उसे ससार असार प्रतीत होने लगता हैं। ससार की समस्त सम्पदा और विनोद एव विलास की विविध, सामग्री, उसका चित्त अपनी ओर आकर्षित नही कर सकते। ससारी लोगो द्वारा कल्पित वस्तुओ का मूल्य और महत्त्व उसके लिए उपहास का पात्र है। वह बहुमूल्य हीरे को पाषाण के रूप मे देखता है। भोग को रोग मानता है। उसके लिए पदार्थ अपने असली रूप मे दृष्टिगोचर होने लगते है। ऐसे विरक्त पुरुषो को वासनाओ के बन्धन मे बधे हुए साधारण मनुष्यो की बुद्धि पर तरस

आता है । उनका हृदय बोल उठता है :—

दारा पराभवकारा बन्धुजनो बन्धन विष विषया: ।
कोऽय जनस्य मोहो, ये रिपवस्तेषु सुहृदाशा ।।

अर्थात्—पत्नी पराभव का कारण है, बाधवजन बधन है, विषयभोग विष है । फिर इस ससारी जीव का मोह न जाने कैसा है कि यह शत्रुओ को मित्र समझ रहा है ।

तत्त्वज्ञानी पुरुष विषयभोग से इसी प्रकार दूर भागते है, जैसे साधारण मनुष्य काले नाग को देखकर नाग को अपने निकट आते देखकर कौन स्थिर रह सकता है ? इस प्रकार विवेकपूर्ण वैराग्य की स्थिति मे किसी को समझा-बुझा कर ससार मे नही फसाया जा सकता । एवन्ताकुमार की माता इस तथ्य को समझती थी । उसे विश्वास हो गया कि बालक अब गृह-ससार मे नही रह सकता । एवन्ताकुमार की माता ने कहा—'तुम्हारी यही इच्छा है तो कोई बात नही, मगर एक बात कहती हू । तुम चाहे एक दिन ही राज्य करना, मगर एक बार राज्य ग्रहण कर लो । फिर जैसी इच्छा हो, करना ।'

माता के इस अनुरोध को अस्वीकार करना एवन्ता-कुमार ने उचित नही समझा । वह मौन रहे और 'मौनं स्वीकृतिलक्षणम्' मानकर उनके माता-पिता ने राज्याभिषेक की तैयारी आरम्भ कर दी ।

दूसरे दिन एवन्ताकुमार राजसिंहासन पर विराजमान

हुए और राजा बन गये । राजा बन जाने के बाद उनके माता-पिता ने कहा-'पुत्र, देखो, राजपाट मे यह आनद है । इस आनंद को छोड कर घर-घर भीख मागना क्या अच्छा है ?'

एवन्ताकुमार की आत्मा मे अद्भुत प्रकाश जगमगा उठा था । उसकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल और विचारशक्ति अत्यन्त तीक्ष्ण हो गई थी । उसने माता-पिता से कहा—'आपने मुझे यह पद प्रदान किया है, मगर क्या मुनिपद इससे छोटा है ? नही, तो उसे छुडाने के लिए इस पद का प्रलोभन किस लिए दे रहे है ? हाथ जोड़ेगा तो राजा ही मुनि के समक्ष हाथ जोडेगा । मुनि किसी राजाधिराज को भी हाथ नही जोडता । चक्रवर्ती भी मुनियो के चरणो मे मस्तक रगडता है ।'

एवन्ताकुमार की असाधारण प्रतिभा और अपूर्व भावना देख माता-पिता दग रह गये । उन्होने दीक्षा देने के लिए उसे भगवान् महावीर को सौप दिया ।

इस प्रकार की असाधारण विभूतिया ससार मे कदाचित् ही जन्म लेती है, इन्हे अपवाद-पुरुष कहा जा सकता है । जन्मान्तर के अतिशय उग्र सस्कारो के बिना कोमल वय मे इस प्रकार के व्यक्तित्व का परिपाक नही होता ।

( २ )

## श्री ध्रुवकुमार

राजा उत्तानपाद के दो रानिया थी । बडी रानी

धर्मपरायण और तत्त्व को जानने वाली थी । छोटी रानी संसार के सुखो मे मस्त रहती थी । वडी रानी सरल स्वभाव की भोली स्त्री थी, इसलिए राजा ने उसे अनमानती कर दी । इसका एक पुत्र था, जिसका नाम ध्रुव था । राजा ने वड़ी रानी को एक अलग मकान दे दिया था और नियत परिमाण उसे भोजन आदि आवश्यक वस्तुए देने की आज्ञा दे दी थी । छोटी रानी उसके प्रति द्वेष रखती थी और अपने दास-दासियो द्वारा इस वात की निगरानी रखती कि वडी रानी को कोई चीज नियत मात्रा से अधिक तो नही दे दी जाती ।

वडी रानी इस व्यवहार को वडी ही शाति के साथ सहन करती थी । वह अपनी मौजूदा परिस्थिति मे सन्तुष्ट थी । अगर कोई कभी उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए राजा के अन्याय व्यवहार की चर्चा करता, तो रानी कहती—'मेरे पति का मुझ पर वडा अनुग्रह है, जो उन्होने धर्ममय जीवन विताने और मोह मिटाने के लिए यह समय दिया । वह अपने अपमान का विचार करके दु:ख का अनुभव नही करती थी । वह मस्त रहती थी ।

मनाने वाला हो तो मन क्या नही मान लेता ? वह सभी कुछ समझ लेता है, समझाने वाला चाहिए । विवेक से कार्य करने वालो के लिये मन अवोध शिशु के समान है ।

एक दिन राजा उत्तानपाद छोटी रानी के महल मे वैठा था और उसके लडके को गोद मे लिये था । खेलते-खेलते ध्रुव अचानक वहा जा पहुचा । उसने पिता को एक

तरफ की गोद खाली देखी और वह उसमे बैठ गया। सौत के लडके को अपने लड़के के बरावरी पर बैठा देख रानी की ईर्ष्या की अग्नि भड़क उठी। उसने ध्रुव को राजा की गोद से हटा दिया और कहा—'इस गोद मे बैठना था तो मेरे पेट से जन्म लेना था।'

रानी के इस निर्दय व्यवहार से बालक ध्रुव को बहुत दुःख हुआ। वह रोता-रोता अपनी मा के पास पहुंचा। उसने सब वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—'मां, तुम्हारे पेट से जन्म लेने के कारण क्या मै पिता की गोद मे बैठने योग्य न रहा ?' पुत्र की यह बात सुनकर सहनशीला और धैर्यधारिणी रानी को भी कितना दु ख हुआ होगा ? मगर उसने अपना दु ख प्रकट नही किया। उसने वालक से कहा—'बेटा! मुझसे पूछे बिना तू पिताजी की गोदी मे बैठने गया ही क्यो ? अपन ईश्वर की गोद मे बैठे है, फिर किसी और की गोद मे बैठने की आवश्यकता ही क्या है ? तप करके उसे ईश्वर के प्रति अर्पित कर देने से वह पद मिलता है—वह सर्वश्रेष्ठ गोदी प्राप्त होती है कि उसके आगे राज्य आदि सभी कुछ तुच्छ है।

आज यह उदात्त शिक्षा कहा ? जिस माता की भावना इतनी उन्नत होगी, उसका बालक भी ध्रुव सरीखा हो सकता है। मगर कहा है, ऐसी देविया जो अपने बालक को मनुष्य के रूप मे देव—दिव्य विचार वाला, दिव्य शक्ति-शाली बना सके ? महिलावर्ग की स्थिति अत्यन्त विचार-णीय है। जब तक महिलाओ का सुधार नही होगा तब तक किसी भी प्रकार का सुधार ठीक तरह नही हो सकता।

आखिर तो मनुष्य के जीवन का निर्माण वहुत कुछ माता के हाथ मे ही है । माता ही वालक की आद्य और प्रधान शिक्षिका है । माता वालक के शरीर की ही जननी नही, वरन् वालक के संस्कारो की और व्यक्तित्व की भी जननी है, अतएव वालको के सुधार के लिये पहले माताओं के सुधार की आवश्यकता है ।

आजकल न तो माताए ही वालक को योग्य धार्मिक शिक्षा दे सकती है और न सरकारी स्कूलो मे ही ऐसी शिक्षा मिलती है । सच्ची शिक्षा वह है जिसे प्राप्तकर व्यक्ति धर्मनिष्ठ वने और राजा से लेकर रक तक, मनुष्य से लेकर क्षुद्र कीट-पतग तक—प्राणी मात्र की सेवा करने की लगन उत्पन्न हो जाय ।

राजा उत्तानपाद की रानी धर्म न जानती होती तो पति और सौत के निष्ठुर व्यवहार से दु खित होकर रोने लगती अथवा ईर्ष्या की आग से तप कर उनसे बदला लेने पर उतारू हो जाती । मगर उसने ऐसा नही किया । उसने सोचा—'रोने से क्या लाभ है ? बदला लेने की कोशिश करने से मै भी उन्ही की कोटि मे चली जाऊ गी । मगर मैं अपना तेज क्यो घटाऊ ?'

माता की वात सुनकर ध्रुव ने कहा—'तू मेरी माता क्या है, मुझे शक्ति देने वाली देवी है । अब मै तप करके परमात्मा की गोद मे ही बैठू ंगा । अतएव मुझे आज्ञा दो मै तप करने जाऊ । यह कहकर बालक ध्रुव तप करने चला गया । उसकी माता इससे घबराई नही ।

ध्रुव जा रहा था कि मार्ग में नारद मिले। नारद कहने लगे—'अभी तू छोटा बालक है। तुझे क्या पता—वैराग्य किस चिडिया का नाम है? फिर तप करने के लिये वन मे क्यों जा रहा है? बच्चे! तेरी कोमल उम्र है। तुझसे तप न होगा। घर लौट जा।'

ध्रुव ने उत्तर दिया—आपसे मुझे बडी आशा थी, मगर आप मुझे निराश कर रहे है। आप उल्टी गंगा बहा रहे है। आप आज से पहले मेरे पास नही आये थे। आज क्यो आये है? यह तप की ही शक्ति है कि नारदजी जैसे ऋषि भी आकर्षित हो सके है।

**निंदित कर्म जे आदरै, तब बरजत संसार।**
**तुम बरजत सुकृत करत, यह न नीति व्यवहार॥**

हे ऋषि! कोई अच्छे काम न करता हो तो उसे अच्छे काम की ओर प्रेरित करना आपका काम है। मगर आप तो अच्छे काम से रोक रहे है।

नारदजी बोले—नही, मेरी ऐसी इच्छा नही है। मै किसी को सत्कार्य से रोकना नही चाहता।

ध्रुव—मै तप करने जा रहा हू तब तो आप रोक रहे है, अगर मै राज्य करता होता तो न रोकते। आपके लिये क्या यही उचित है? मै क्षत्रियपुत्र हूं, वीर हू। मेरी माता ने मुझे तप करने की शिक्षा दी है। मै तप करने की प्रतिज्ञा करके घर से निकला हू। आप मुझ सिंह—बालक

को सियार-बालक न बनाइए ।

**जब देख्यौ बालक सुदृढ़, अरु अखंड विश्वास ।**
**नारद परम प्रसन्न ह्वै, साधु-साधु कहि तास ।।**

नारदजी कहने लगे—तेरी परीक्षा हुई और मेरा अभिमान गया । आज मुझे मालूम हुआ कि जितनी सच्ची परमात्म-प्रीति एक बालक मे हो सकती है, मुझ मे उतनी भी नही है ।

भागवत की यह कथा है । एक कथा मदालसा की भी है, जिसने आठ-आठ वर्ष की उम्र मे ही अपने बालको को सन्यास लेने भेज दिया था ।

एवन्ता मुनि ने भी बाल्यकाल मे दीक्षा ले ली । उन्होने पानी मे नाव भी तैराई, जिससे मुनियो के मन मे सन्देह हुआ कि यह क्या साधुपन पाल सकेगा ? ज्यो ही मुनियो ने उनसे कहा कि साधु को पानी में नाव तैराना नही कल्पता, त्यो ही उन्होने धीरे से अपना पात्र पानी से निकाल लिया ।

मुनियो ने भगवान् से पूछा—प्रभो ! एवन्ता मुनि कितने भव और धारण करेगा ?

भगवान् ने मुनियो से कहा—'इनकी निन्दा-अवहेलना मत करो । यह चरमशरीरी जीव है । इसी भव से मुक्ति प्राप्त करेंगे ।'

अन्त में एवन्ता मुनि ने सकल कर्मों का क्षय किया। वह सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये।

मित्रो! तप मे अपूर्व, अद्भुत और आश्चर्यजनक शक्ति है। तपस्या कि अग्नि मे आत्मा के समस्त विकार भस्म हो जाते हैं और आत्मा सुवर्ण की तरह प्रकाशमान हो उठता है। एवन्ताकुमार जैसे महापुरुष भले ही अपवाद रूप ही हो और वर्तमान काल मे उनके अनुकरण की शक्यता न हो, तो भी उनका आदर्श अपने समक्ष रखोगे और तप की महिमा समझोगे तो कल्याण होगा।

# ४ : विषधर-वशीकरण

## चण्डकौशिक सर्प

जिस चण्डकौशिक सांप के कारण जगल में त्राहि-त्राहि की करुण ध्वनि सुन पडती थी, जिसके भय से उसके आस-पास का रास्ता वद था और जिसकी दृष्टि मे ही घोर विष भरा हुआ था, उसके सामने जाकर भगवान महावीर ने कायोत्सर्ग किया था। उन्होने अपने ज्ञान मे देखकर सोचा- 'व्यर्थ ही लोग उस साप से डरते है। वह साप तो व्युत्सर्ग सिखाता है।' ऐसा विचार कर भगवान उसकी ओर चल दिये। कोई अनजान मे उस मार्ग मे न चला जाय, इस प्रयोजन के लिए दयालु लोगों नें कुछ आदमी नियुक्त कर दिये थे। वे उधर जाने वालो को इसलिए रोक देते थे कि उस साप के विष से वचना कठिन था।

जब भगवान उस मार्ग से जाने लगे तो उन्होंने कहा- 'इस मार्ग से न जाइए। इधर ऐसा भयानक सांप रहता है कि उसकी दृष्टि पड़ते ही विष चढ जाता है।'

प्रभु उनकी वात सुनकर मुस्कुरा दिये। उन्होने सोचा- ये लोग जैसा जानते है, कहते है। इन्हे साप का ही विष दिखता है, अपने अन्त.करण का विष दिखाई नही देता।

लोग सांप से भयभीत होकर उसे मारने दौड़ते है, यह नही देखते कि हम में कितना भयंकर विष है। मैं व्युत्सर्ग द्वारा जगत को दिखला दूंगा कि विष साप मे ही नही है, तुम में भी है। इसी कारण साप का विष तुम पर असर करता है।

यह सोचकर भगवान आगे बढे। रखवाले फिर कहने लगे—'आप कहां जा रहे है? इधर का रास्ता सांप के कारण वन्द है। अगर आप नही मानेगे तो जीवित नही बचेगे।'

उनकी वात सुनकर भगवान के सौम्य मुख पर फिर सहज स्मित की रेखाएं खिच गई। तब रखवालो ने कहा—'हंसते क्यो है? अभी आपको हमारी वात पर विश्वास नही होता। साप सामने आएगा तव पता चलेगा। किसी मूर्ख ने भरमाकर आपको यहां भेजा होगा, लेकिन हम कहते हैं—लौट जाइए। आगे मत जाइए।'

भगवान विचारने लगे—'यह लोग भी भ्रम को बुरा समझते है, लेकिन यह नहो जानते कि भ्रम क्या है?' यह सोचते हुए और मुस्कुराते हुए भगवान और आगे बढे।

यह देखकर रास्ते के रखवालो को गुस्सा आ गया। एक ने कहा—क्या सुनते नही हो? क्या हमे बदनाम करना चाहते हो? लोग कहेगे—हमने रोका नही, इसलिये गये और मारे गये।

दूसरे ने कहा—नही मानता तो जाने दो, मरने दो। जिसकी मौत आ गई हो, उसे कौन रोक सकता है?

तीसरे ने कहा—यह न जाने कौन है? इनकी आखे तो देखो, कैसी है ! हम लोग इतना कह रहे है, फिर भी मुस्कुरा रहे हैं। इनकी आखो मे क्रोध तो है ही नही। इन्हे नमस्कार कर ले और जाते ही हैं तो जाने दे।

क्रोध और प्रेम आंखो से स्पष्ट मालूम हो जाता है। आंखे तो क्रोध के समय भी वही और प्रेम से समय भी वही रहती है, मगर दोनो मे कितना अन्तर हो जाता है ! आंखे तेज से वनी है। आंखों का पूरा वर्णन सुनकर विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि आखे क्या है।

तीसरा आदमी कहता है—इनकी आखो से प्रकट है कि यह कोई शक्तिसम्पन्न महात्मा हैं। यह कोई महान् विभूति है। हम लोग सारा वृत्तान्त इन्हे वता दे और फिर वह जाना चाहे तो भले ही जाएं। इन्हे किसी तरह का अपशब्द मत कहना।

चौथे ने भडककर कहा—वाह ! खूब कही ! जाने दिया और सांप के काटने से मर गया तो वदनामी किसकी होगी ?

तीसरे ने शान्त भाव से कहा—इनसे हठ करना ठीक नही है। हमने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है। अव हठ करना हानिकर होगा।

यह लोग आपस मे वात कह रहे थे कि भगवान कुछ और आगे वढे। रखवाले भी कुतूहलवश भगवान के पीछे

हो लिये । उन्होने सोचा—देखे यह क्या करते है ? भगवान स्थिर गति से चलते-चलते सांप की बावी पर आये । रखवाले सोचने लगे—हम लोग समझते थे, यह भूल से इधर आ गये हैं, मगर जान पडता है, यह तो यहा के लिये ही आये है ।

तीसरा आदमी कहने लगा—मैं तो इनकी प्रेमपूर्ण परन्तु तेजस्वी आखे देखकर ही समझ गया था । आंखे बिना वताये ही वता देती है कि यह किस श्रेणी का पुरुष है ! हृदय का भाव आखो मे प्रतिबिम्बित हो जाता है । इनकी आखे देखकर ही मैं समझ गया था कि यह कोई महान् पुरुप है ।

भगवान वावी के मुह पर ध्यान करके खडे हो गये । साप को जैसे ही किसी का आना मालूम हुआ कि वह क्रोध से उन्मत्त होकर बाहर निकला । वह भगवान की ओर वार-बार देखकर दृष्टि से विष छोडने लगा । मगर भगवान का कुछ भी न बिगडा । वह ज्यो-के-त्यो अचल खड़े रहे । ध्यान पूरा होने पर भगवान की और उसकी आखे मिली । भगवान की अमृत दृष्टि और चडकौशिक की विष दृष्टि आपस मे टकराई । वह सम्पूर्ण क्रोध के साथ अपनी आखो से विष फैंकने लगा, मगर भगवान पर जरा भी असर न हुआ ।

भगवान की दृष्टि मे विष का लेशमात्र भी होता तो चण्डकौशिक का विष भगवान पर असर कर जाता । मगर भगवान विप से सर्वथा विनिर्मुक्त थे । अतएव सर्प का विष

प्रभावहीन हो गया। वास्तव मे हमारी दृष्टि मे भी विप है और हमारी दृष्टि के विष से ही दूसरो का विप हम पर असर करता है।

चण्डकौशिक सोचने लगा—आज तक कही मेरी दृष्टि नही रुकी। कभी मेरी शक्ति निष्फल नही हुई। मगर यह कौन जबर्दस्त आदमी है कि इस पर मेरी शक्ति व्यर्थ हो रही है। आज तक तो कोई मेरे सामने नही ठहर सका। जो आया, वह यमपुर पहुंचा। लेकिन यह आदमी वड़ा ही विलक्षण है। न वोलता है, न टलता है। ऐसा सोचकर उसने भगवान के उस अगूठे पर डक मारा, जिस अंगूठे से वचपन मे—जन्म के कुछ ही समय वाद सुमेरु काप उठा था। आज उसमे कितनी शक्ति होगी, यह अनुमान करना ही कठिन है। लेकिन आज तो भगवान मे और ही प्रकार का बल है।

चण्डकौशिक ने भगवान को काटा, तव भगवान सोचने लगे—व्युत्सर्ग का फल तो चण्डकौशिक ही वतलाता है। व्युत्सर्ग का मतलब शरीर का दान करना है। शरीर का इस प्रकार उत्सर्ग कर देना कि चाहे कोई उसे ले जाय, कोई उसे खा जाय या कोई भी उसे नष्ट कर दे, ऐसा विचार करके शरीर का उत्सर्ग कर देना, यही व्युत्सर्ग है। जिसमे पूर्ण व्युत्सर्ग होगा, वही इतनी ऊ ची भावना रखेगा।

चण्डकौशिक ने जब भगवान को काट लिया तो भगवान के अंगूठे से खून निकला परन्तु वह दूध सरीखा था। चण्डकौशिक को वह अमृत की तरह मीठा लगा। वह सोचने

लगा—मैंने बहुत बार खून का आस्वादन किया है, मगर यह खून तो कुछ और ही है।

भगवान ने उसके सामने शरीर रखकर कहा—ले, मेरा शरीर ले। अब तू वैर मत रख और किसी को दुःख देकर स्वय दु खी मत हो। अगर तुझे अपनी शक्ति आजमानी है और दु.ख ही देना है तो ले, यह शरीर तेरे सामने है। शक्ति आजमाले, दु ख दे ले। इस प्रकार भगवान ने जैसे जगत् का दु.ख मिटाने के लिए ही अपना उत्सर्ग किया था। सिद्धान्त मे कहा है—

**खेयन्नए से कुसले महेसी।**

भगवान पराये दु ख को जानने वाले और उस दु.ख की जड मिटाने वाले थे।

शुक्ल लेश्या के पुद्गल कैसे मीठे होते हैं, यह बात पन्नवणा सूत्र मे बतलाई है। भगवान महावीर की शुक्ल लेश्या उत्कृष्ट थी। वैसे तीर्थङ्कर होने के कारण उनके शरीर के पुद्गुल विशिष्ट थे ही, मगर शुक्ल लेश्या के कारण और भी विशिष्ट थे। अतएव भगवान के रक्त का स्वाद चण्डकौशिक को विलक्षण ही लगा। उसने सोचा—यह मूर्ति तो परिचित जान पडती है। यह ध्यान भी परिचित जान पडता है। इस प्रकार ध्यान लगाते-लगाते उसे जातिस्मरण होते ही ज्ञात हुआ कि मै मुनि था और क्रोध करने के कारण सांप हुआ हू।

इतने मे भगवान का व्युत्सर्ग पूरा हुआ। उन्होने

चण्डकौशिक से कहा—समझ, चण्डकौशिक ! समझ ! तेरा और मेरा आत्मा समान है । अब तो बोध प्राप्त कर ।'

चण्डकौशिक भगवान की यह वाणी सुनकर सोचने लगा—'यह तो भगवान है । मैने यह शरीर क्या खाया, नरक खाया है, नरक खाया है । इस शरीर से मैने बहुत पाप किया है । औरो की तो बात ही क्या, त्रिलोकीनाथ भगवान को भी मैने नही छोडा ।' ऐसा विचार कर चण्डकौशिक ने अठारह पापो का त्याग कर दिया । उसने सोचा—'मैने पापो का त्याग कर दिया, मगर मेरी दृष्टि मे विष है । जिस पर मेरी दृष्टि पडेगी, वह मारा जायगा ।'

चण्डकौशिक ने किसी को पीडा न पहुचे, इस अभिप्राय मे बाबी मे अपना सिर घुसेड लिया । सोचा भगवान ने यहा आकर व्युत्सर्ग किया, उसी तरह मै भी व्युत्सर्ग करता हू । मै भी अपना शरीर त्यागता हू । अब इस शरीर को कोई भी खा जावे, कोई भी ले जावे । मुझे इससे कोई सरोकार नही ।

भगवान के पीछे जो रखवाले आये थे, वे आपस मे कहने लगे—साप आया तो था, मगर इस महात्मा का तो कुछ भी नही बिगडा ! वे लोग पत्थर फेंककर देखने लगे—सांप जीवित है या मर गया है । लेकिन साप हिलता-डुलता नही था । उन लोगो ने मशहूर कर दिया—साप शान्त हो गया है ।

लोगो मे यह बात प्रसिद्ध हो गई कि साप शान्त हो गया । दु खदायी शक्ति जब शान्त हो जाती है तो लोग

उसकी पूजा करते हैं। इस परम्परागत प्रथा के अनुसार जनता दूध, दही से साप की पूजा करने लगी। मगर अब पूजना और मारना उसके लिए समान था। दूध, दही आदि लगने के कारण उसके शरीर को चीटिया लग गईं। साप को वेदना हो रही थी। तब उसने सोचा—मैंने अनेको को और त्रिलोकीनाथ भगवान को भी कष्ट पहुचाया है। चीटियां मेरे पाप को हल्का कर रही हैं।

इस प्रकार शान्ति रखने से भगवान मे जो लेश्या थी, वही लेश्या उसकी भी हो गई। जीव जिस गति मे जाने को होता है, उसी के अनुकूल लेश्या उसकी हो जाती है। चण्ड-कौशिक को शुक्ल लेश्या प्राप्त हो गई। ज्यो-ज्यो वेदना बढती जाती थी, उसका ध्यान भी बढता जाता था। उसने क्रोध नही किया। उसका पाप धुलने लगा। वह धैर्य के साथ कष्ट सहता रहा। उसे चीटियो ने काट-काटकर खोखला बना दिया। अन्त मे शरीर त्याग कर वह स्वर्ग पहुंचा।

हम लोग न भगवान के समान हैं, न चण्डकौशिक के ही समान हैं—बीच के है। फिर भी साप से ऊची श्रेणी के हैं। मगर यह ध्यान रखना चाहिए कि हम अपने कर्त्तव्य से कही साप न बन जाए। साप ने कीडियो का काटना सहन किया था। क्या हम किसी का एक बोल भी सहन नही कर सकते?

# ५ : कर्मदाह

## राजा प्रदेशी

प्रदेशी राजा ने ऐसे घोर कर्म वान्धे थे कि एक-एक नरक मे अनेक-अनेक वार जाने पर भी सव कर्म पूरे न भोगे जावें। उसने निर्दयता से प्राणियो की हिंसा की थी। वह अपने मत की परीक्षा के लिये चोरो को कोठी मे वन्द कर देता था और कोठी को चारो ओर से ऐसी मूंद देता कि कही हवा का प्रवेश न हो सके। वह मानता था कि जीव और काय एक हैं, अलग नही। इसी वात को देखने के लिए वह ऐसा करता था। अगर जीव और शरीर अलग-अलग होगे तो चोर के मरने पर भी जीव दिखाई देगा। कोठी एकदम वन्द है तो जीव निकलकर जायगा कहां ? कई दिनो वाद वह चोर को कोठी से वाहर निकालता। चोर मरा हुआ मिलता। राजा प्रदेशी कहता—देखो, काय के अतिरिक्त आत्मा अलग नही है। यहा अकेला शरीर ही दिखाई दे रहा है।

कभी-कभी प्रदेशी राजा किसी चोर को चीर डालता और उसके टुकड़े-टुकड़े करके आत्मा को देखता था। जब आत्मा दिखाई न देता तो अपने मत का समर्थन हुआ

समझता और कहता कि शरीर से अलग आत्मा नही । तात्पर्य यह कि प्रदेशी राजा घोर हिंसक था और महान पाप करता था ।

जो आत्मा अज्ञान अवस्था मे घोर पाप करता है, ज्ञान होने पर वही किस प्रकार ऊंचा उठ जाता है, इसके लियें प्रदेशी का उदाहरण मौजूद है ।

**घन धन केशी सामजो, सारया प्रदेशी ना काम जी ।**

केशी श्रमण ने प्रदेशी राजा को समझाया, तब वह जीव और शरीर को अलग-अलग मानने लगा । पहले वही प्रदेशी लोगो की आजीविका छीन लेता था और साधु-संतो के प्राण लेने मे सकोच नही करता था । चित्त नामक प्रधान ने केशी स्वामी से प्रार्थना की कि – महात्मन् ! आप सिताम्बिका नगरी मे पदार्पण कीजिये । वहां अतीव उपकार होने की संभावना है । वहा के लोग बड़े धर्मात्मा है । वे वहुत प्रेम से आपका उपदेश सुनेगे । तव केशी श्रमण ने उत्तर दिया—हे चित्त ! एक सुन्दर बगीचा है । उसमें तरह-तरह के फल लगे है । अत्यन्त आनन्ददायक वह बगीचा है । बताओ, ऐसे उद्यान मे पक्षी आना चाहेगा कि नहीं ?

चित्त—क्यो नही महाराज ! अवश्य आना चाहेगा ।

केशी श्र०—लेकिन उस उद्यान मे एक पारधी घनुष चढ़ा कर पक्षियो को मार डालने के लिये उद्यत खडा है । ऐसी दशा मे वहां कोई पक्षी जायगा ?

चित्त—अपने प्राण गवाने कौन जायगा ?

केशी श्र०—इसी प्रकार सिताम्विका नगरी उद्यान की भांति सुन्दर है, किन्तु वहां का राजा प्रदेशी हम साधुओं के लिये पारधी के समान है वह साधुओ के प्राण लिए विना नही मानता। वह अपने अज्ञान से साधुओ को अनर्थ की जड़ समझता है। ऐसी दशा मे, तुम्ही वताओ, हमारा वहां जाना उचित होगा ?

चित्त—भगवन्, आपको राजा से क्या प्रयोजन ? उपदेश तो वहां की जनता सुनेगी।

चित्त की वात सुनकर केशी श्रमण ने सोचा—आखिर चित्त वहा का प्रधान है। इसका आग्रह है तो जाने मे क्या हानि है ? सम्भव है राजा भी सुधर जाय। परिषह और उपसर्ग आयेंगे तो हमारा लाभ ही होगा—कर्मो की विशेष निर्जरा होगी।

इस प्रकार विचार कर केशी श्रमण ने सिताम्विका जाने की स्वीकृति दे दी और वहा पधार गये। चित्त प्रधान घोड़े फिराने के वहाने प्रदेशी राजा को उनके पास ले आया। केशी श्रमण ने राजा को उपदेश दिया। उपदेश से प्रभावित हो राजा ने श्रावक के वारह व्रत धारण किये।

जव राजा जाने लगा तो केशी स्वामी ने उससे कहा-राजन् अव तुम रमणीक हुए हो, मगर हमारे चले जाने पर फिर अरमणीक न वन जाना।

राजा ने उत्तर दिया—नही महाराज ! मेरे नेत्र आपने खोल दिये हैं। अव देखते हुए गड्ढे मे नही गिरूंगा। वल्कि अपने राज्य के सात हजार ग्रामो के चार भाग आपके

सामने ही किये देता हू । एक हिस्सा राज्य-भण्डार के लिये, दूसरा अन्त पुर के लिये, तीसरा राज्य की रक्षा के लिये और चौथे हिस्से से श्रमणो-माहणो के लिये एव भिखारियो के लिये दान देता हुआ तथा अपने व्रतो का पालन करता हुआ विचरूगा ।

मित्रो ! राजा प्रदेशी एक दिन दूसरो के हाथ का ग्रास छीन लेता था, अब छीनता नही, वरन् देता है । क्या उसके यह दोनो कार्य बराबर है ? अगर कोई जैनदर्शन के नाम पर इन दोनो कार्यो को समान बतलाकर एकान्त पाप कहता है तो उसे क्या कहना चाहिये ?

तात्पर्य यह है कि राजा प्रदेशी ने घोर पाप करके कर्मो का वन्ध किया था । कथा मे उल्लेख है कि उसने वेले-वेले पारणा किया और शास्त्र मे कहा है कि उसने सम-भाव धारण किया इस प्रकार प्रदेशी ने अपने इन कर्मों का नाश कर दिया ।

**राजा प्रदेशी नै सूरिकान्ता नार ।**
**इष्टकान्त वल्लभ धणी स रे, शास्त्र में अधिकार ।**
**निज स्वारथ वश पापिणी स रे, मार्यो निज भर्तार ।**

राजा प्रदेशी की सूरिकान्ता नाम की रानी थी । राजा को वह बहुत प्यारी थी । राजा ने जब केशी श्रमण से वारह व्रत धारण कर लिये और वह धर्मात्मा बन गया, तब सूरिकान्ता ने सोचा—राजा, धर्म के ढोग मे पडा रहता

है । विपय-भोग का आनन्द बिगड गया है। इसे मरवाकर और कुवर को राजसिंहासन पर विठलाकर राजमाता होने का नवीन सुख क्यो न भोगा जाय ?

इस प्रकार दुष्ट सकल्प करके रानी ने अपने पुत्र को पास बुलवाया । रानी ने उससे कहा—वेटा, तुम्हारा पिता ढोगियो के चक्कर मे पडकर राज्य को मटियामेट किये देता है । थोड़े दिनो मे ही सफाया हो जायगा, तब तुम क्या करोगे ? अतएव अपने भविष्य को देखो और अपना भला चाहते हो तो राजा को इस ससार से उठा दो । मैं तुम्हे राजा वनाऊगी ।

राजकुमार को अपनी माता के वचन जहर-से लगे । उसने पिता को मारने से इन्कार कर दिया । मन-ही-मन सोचा—तुम मेरे देव-गुरु के समान पिता को मार डालने को कहती हो । तुम माता हो, तुमसे क्या कहू ? कोई दूसरा होता तो इस वात का ऐसा मजा चखाता कि वह भी याद रखता ।

राजकुमार के चले जाने पर रानी ने सोचा—यह वहुत बुरा हुआ । मुंह से बात भी निकल गई और काम भी सिद्ध न हुआ । कही राजकुमार ने यह बात प्रकट कर दी तो घोर अनर्थ होगा । मैं कही की नही रहूगी । अतएव वात फूटने से पहले ही राजा को मार डालना श्रेयस्कर है ।

ऐसा भीषण सकल्प करके रानी पौषधशाला मे जहां राजा मौजूद था, आई । उसने राजा के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हुए कहा—आप तो वस यही के हो गये हैं ? किस अपराध के कारण मुझे भुला दिया है ? आपके लिये तो

और रानियां भी हो सकती है, मगर मेरे लिये आपके सिवाय कौन है ? अतएव आज कृपा करके मेरे ही महल मे पधारिये और वही भोजन कीजिये ।

राजा ने सोचा कि स्त्री-सुलभ पति भक्ति से प्रेरित होकर रानी उलाहना और निमन्त्रण दे रही है । उसने रानी के महल मे भोजन करना स्वीकार किया । रानी अपने महल मे लौट आई । उसने राजा के लिए विषमिश्रित भोजन बनाया । जल मे भी विष मिलाया और आसन आदि पर भी विष का छिडकाव किया । इस प्रकार विप-ही-विप फैला कर रानी ने राजा को भोजन करने के लिये बैठाया और राजा के सन्मुख विषमिश्रित भोजन-पानी रख दिया । रानी पतिभक्ति का दिखावा करने के लिये खडी होकर पखा झलने लगी । ज्यो ही राजा ने भोजन आरम्भ किया, उसे मालूम हो गया कि भोजन मे विष का मिश्रण किया गया है । वह चुपचाप उठकर पौषधशाला मे आ गया ।

राजा किस प्रकार अपने कर्मो की उदीरणा करता है, यह ध्यान देने की बात है । इसे ध्यान से सुनिए और विचार कीजिये ।

पौषधशाला मे आकर राजा विचारने लगा—रानी ने मुझे जहर नही दिया है । मैंने रानी के साथ जो विषय—भोग किया है, यह जहर उसी के प्रताप से आया है ।

यद्यपि प्रदेशी राजा चढे हुए जहर को उतार सकता था और रानी को दण्ड भी दे सकता था । लेकिन जिन्हे कर्म की उदीरणा करनी होती है, वे दूसरे की बुराइयों का

रानी ने जब अपने पति का—राजा का गला दबाया तो वह सोचने लगा—रानी मेरा गला नही दबा रही है, शेष कर्मों का नाश कर रही है ।

राजा प्रदेशी ने इस प्रकार कर्मों की उदीरणा की । इस उदीरणा के प्रताप से वह सूर्याभ विमान मे देव हुआ । उदीरणा ने उसे नरक का अतिथि होने से बचा लिया और स्वर्ग-सुख का अधिकारी बनाया । राजा प्रदेशी ने अल्प-कालीन समाधिभाव से ही अपना बेडा पार कर लिया । अगर वह दूसरे का हिसाब करने बैठता तो ऐसा न होता ।

तात्पर्य यह है कि राजा प्रदेशी ने उदीरणा के प्रताप से न जाने कितने भवो का पाप क्षय करके आत्मा को हलका बना लिया । इस प्रकार उदीरणा के द्वारा करोडो भवों में भोगने योग्य कर्म क्षण भर मे ही नष्ट किये जा सकते हैं ।

# ६ : अर्थ और अनर्थ

एक समय की बात है। रामचन्द्रजी सीता के साथ राजसभा मे विराजमान थे। हनुमान उनका बहुत बड़ा भक्त था। उसने रामचन्द्रजी की सेवा निष्काम भाव से अर्थात् स्वार्थबुद्धि से रहित होकर की थी। लोगो ने उसकी उत्कृष्ट सेवा की प्रशसा की। सीता देवी ने प्रसन्न होकर अपने गले का हार हनुमान को इनाम मे दे दिया। आप जानते है—हार कीमती होता है और फिर सीता जैसी महारानी के पहनने का हार! उसकी कीमत का तो क्या पूछना? वह अमूल्य हार था।

हनुमान उस हार को ले एक तरफ चले गये और हार मे से एक-एक हीरा निकाल-निकालकर, उसे पत्थर से फोड़ कर टुकड़ो को हाथ मे ले आकाश की तरफ मुह कर आख से देखने लगे। लोग यह दृश्य देखकर खिल-खिला कर हसने लगे। आखिर हनुमान से पूछा गया—भाई, हार की यह दुर्दशा क्यो कर रहे हो?

हनुमान ने उत्तर दिया—'मैं हीरे फोड-फोड कर देख रहा हू कि इनमे कही राम है या नही? अगर है तो ठीक अन्यथा मेरे लिये ये निकम्मे है, निस्सार है।' लोग यह

हिसाव नही लगाते ।

राजा प्रदेशी सोचने लगा—हे आत्मन् ! यह विप तुझे नही मिला है, किन्तु तेरे कर्म को मिला है । तूने जो प्रगाढ कर्म वाधे है, उन्हे नष्ट करने के लिये इस जहर की जरूरत थी । मैंने जीव और शरीर को अलग-अलग समझ लिया है । यह स्पष्ट हो रहा है कि यह जहर आत्मा पर नही, शरीर पर अपना असर कर रहा है । आत्मा तो वह है कि—

**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।**
**नैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ।।**
**अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।**
**नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।**

अर्थात्—आत्मा को शस्त्र काट नही सकते, अग्नि जला नही सकती । आत्मा छिदने योग्य नही है, सडने-गलने योग्य नही है, सूखने योग्य नही है । वह नित्य है, प्रत्येक शरीर मे रहता है, स्थायी है, अचल है और सनातन है ।

राजा प्रदेशी सोचता है—हे आत्मा ! यह विप मुझे मार नही सकता, यह तेरे कर्मो को ही काट रहा है ! इसलिए चिन्ता न कर । तू वैठा-वैठा तमाशा देख ।

मित्रो ! इसका नाम प्रशस्त परिणाम है । इसी से

कर्मों की उदीरणा होती है । ऐसा परिणाम उदित होने पर कर्मों की ऐसी दशा होती है, जैसे उन्हे जहर ही दे दिया गया हो ।

राजा ने फिर सोचा—प्रिये ! तूने खूब किया । मेरे कर्मो को अच्छा जहर दिया । तूने मेरी बडी सहायता की । ऐसा न करती तो मुझ मे उत्तम भावना न आती । पति-व्रता के नियमो का पालन तूने ही किया है ।

राजा ने प्रमार्जन, प्रतिलेखन तथा आलोचना—आदि करके अरिहृत-सिद्ध भगवान की साक्षी से सथारा धारण कर लिया ।

उधर रानी के हृदय मे अनेक सकल्प-विकल्प उठने लगे । उसने सोचा—ऐसा न हो कि राजा जीवित रह जाए, अगर ऐसा हुआ तो भारी विपदा मे पडना पडेगा । अतएव इस नाटक की पूर्णाहुति करना ही उचित है । इस प्रकार सोचकर वह राजा के पास दौडी आई और प्रेम दिखलाती हुई कहने लगी—मैंने सुना, आपको कुछ तकलीफ हो गई है ?

राजा ने रानी से कुछ भी नही कहा । वह चुपचाप अपने आत्म-चिन्तन मे निमग्न रहा । ससार का असली स्वरूप उसके सामने नाचने लगा । तब रानी ने राजा का सिर अपनी गोद मे लिया और अपने सिर के लम्बे-लम्बे बालो से उसका सिर ढक लिया । इस प्रकार तसल्ली करके और चारो ओर निगाह फेरकर उसने राजा का गला दबोच दिया ।

रानी ने जब अपने पति का—राजा का गला दबाया तो वह सोचने लगा—रानी मेरा गला नही दबा रही है, शेष कर्मों का नाश कर रही है ।

राजा प्रदेशी ने इस प्रकार कर्मो की उदीरणा की । इस उदीरणा के प्रताप से वह सूर्याभ विमान मे देव हुआ । उदीरणा ने उसे नरक का अतिथि होने से बचा लिया और स्वर्ग-सुख का अधिकारी बनाया । राजा प्रदेशी ने अल्प-कालीन समाधिभाव से ही अपना बेडा पार कर लिया । अगर वह दूसरे का हिसाब करने बैठता तो ऐसा न होता ।

तात्पर्य यह है कि राजा प्रदेशी ने उदीरणा के प्रताप से न जाने कितने भवो का पाप क्षय करके आत्मा को हलका बना लिया । इस प्रकार उदीरणा के द्वारा करोडो भवो में भोगने योग्य कर्म क्षण भर मे ही नष्ट किये जा सकते हैं ।

# ६ : अर्थ और अनर्थ

एक समय की बात है। रामचन्द्रजी सीता के साथ राजसभा मे विराजमान थे। हनुमान उनका बहुत बडा भक्त था। उसने रामचन्द्रजी की सेवा निष्काम भाव से अर्थात् स्वार्थबुद्धि से रहित होकर की थी। लोगो ने उसकी उत्कृष्ट सेवा की प्रशसा की। सीता देवी ने प्रसन्न होकर अपने गले का हार हनुमान को इनाम मे दे दिया। आप जानते है—हार कीमती होता है और फिर सीता जैसी महारानी के पहनने का हार ! उसकी कीमत का तो क्या पूछना ? वह अमूल्य हार था।

हनुमान उस हार को ले एक तरफ चले गये और हार मे से एक-एक हीरा निकाल-निकालकर, उसे पत्थर से फोड कर टुकडो को हाथ मे ले आकाश की तरफ मु ह कर आख से देखने लगे। लोग यह दृश्य देखकर खिल-खिला कर हसने लगे। आखिर हनुमान से पूछा गया—भाई, हार की यह दुर्दशा क्यो कर रहे हो ?

हनुमान ने उत्तर दिया—'मैं हीरे फोड-फोड़ कर देख रहा हू कि इनमे कही राम है या नही ? अगर है तो ठीक अन्यथा मेरे लिये ये निकम्मे है, निस्सार है।' लोग यह

उत्तर सुनकर चकित रह गये । सभी उनकी वाह-वाह करने लगे ।

यह एक आलकारिक वर्णन है । इसके गूढ रहस्य को समझने का प्रयत्न कीजिये । हनुमान ने यहा आत्मिक विचार किया था । उन्होने देखना चाहा—इन हीरो मे धर्मरूपी राम हैं या नही ? जिस वस्तु मे धर्म नही हो, वह रद्दी है । अगर हीरो मे राम न हो—धर्म न हो तो वह चाहे जितने कीमती समझे जाते हो, काच के टुकडे के बराबर है । यह बात जैन शास्त्र मे 'सेसे अणट्ठे' शब्दो द्वारा व्यक्त की गई है अर्थात् जिस वस्तु मे धर्म न हो, वह थोथी है—अनर्थ रूप है । जिस वस्तु मे धर्म है, वह पाप से बचाती है ।

# ७ : सम्राट् अनाथ

[जो तुम्हारा है, वह तुमसे कभी विलग नही हो सकता । जो वस्तु तुमसे विलग हो जाती या हो सकती है, वह तुम्हारी नही है पर-पदार्थों के साथ आत्मीयता का भाव स्थापित करना महान् भ्रम है । इसी भ्रमपूर्ण आत्मीयता के कारण जगत् अनेक कष्टो से पीडित है । अगर 'मैं और 'मेरी' की मिथ्या धारणा मिट जाय तो जीवन मे एक प्रकार को अलौकिक लघुता, निरुपम निस्पृहता और दिव्य शान्ति का उदय होगा ।

हाथी, घोडे, महल, मकान आदि आपके नही है, यह बात अनाथी मुनि और महाराजा श्रेणिक के सवाद से भली-भाति समझी जा सकती है ।]

एक बार मगध का अधिपति श्रेणिक मडिकुक्ष नामक उद्यान मे विहार करने के लिये आया । सयोगवश अनाथी मुनि भी उसी उद्यान मे विराजमान थे । श्रेणिक की मुनि पर दृष्टि पडते ही वह उनकी ओर इस प्रकार आकर्षित हो गया जैसे चुम्बक से लोहा आकर्षित होता है । मुनि का दिव्य रूप और उनके मुख पर विराजमान तेज देखकर वह चकित रह गया । रूप बनावटी है या वास्तविक है, यह तो मुखाकृति देखने ही पता चल जाता है । बनावटी रूप छिपा

नही रहता । मुनि के मुख पर जो तेज और रूप था, वह आन्तरिक तेज का प्रतिविम्ब था । उसे देखकर राजा को आश्चर्य हुआ। वह मन-ही-मन सोचने लगा—यह मुनि कैसे रूपवान् है ! रूप का इतना धनी तो मैंने आज तक किसी को नही देखा । यहा यह स्मरण रखना चाहिये कि श्रेणिक स्वयं अत्यन्त सुन्दर था । उसकी सुन्दरता के विषय मे प्रसिद्ध है कि एक वार वह वस्त्राभूषणो से सुसज्जित होकर जव भगवान् महावीर के समवशरण मे गया था, तव उसका रूप–लावण्य देख कर कई साध्विया भी मुग्ध हो गई थी और उन्होंने ऐसे सुन्दर पुरुष की प्राप्ति का निदान किया था । इतने अधिक सौन्दर्य से सम्पन्न श्रेणिक भी मुनिराज का रूप देखकर चकित रह गया, इससे मुनिराज की रूप–सम्पत्ति का अनुमान किया जा सकता है ।

अन्तत राजा श्रेणिक मुनिराज के समीप गया । वह उनके वाह्य एवं आन्तरिक गुणो का आकलन कर चुका था, अतएव उसने मुनिराज के चरणो मे प्रणाम किया । उनकी प्रदक्षिणा की और न मुनिराज से अधिक दूर, न अधिक पास, यथोचित स्थान पर वैठ गया । तत्पश्चात् अत्यन्त नम्रतापूर्वक राजा ने कहा—'प्रभो, आज्ञा हो तो मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूं । मुनिराज की स्वीकृति प्राप्त करके उसने कहा—'महाराज' ! मैं यह जानना चाहता हू कि आपने भर जवानी मे दीक्षा क्यो धारण की है ? इस उम्र मे तो भोगोपभोग भोगने मे रुचि होती है, फिर आप विरक्त होकर चारित्र का पालन करने के लिये क्यो निकल पड़े है ? ससार के भोग भोगने योग्य इस अवस्था मे आप योग की आराधना करे, यह ठीक नही जान पड़ता । अगर

आप वृद्ध होते तो मुझे इतना कुतूहल न होता और आपकी योग-साधना भी समझ मे आ सकती थी परन्तु युवावस्था मे आपने संयम धारण किया है, इसलिये मैं यह प्रश्न पूछने के लिये उद्यत हुआ हू । यदि आपकी भाति सभी लोग इस तरुण अवस्था मे संयम धारण करने लगेगे तो गजब हो जायगा । मैं यह प्रश्न प्रत्येक संयमी से नहीं पूछता । परन्तु मेरे सामने जिसने युवावस्था मे सयम धारण किया हो, उससे यह पूछना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हू । अगर मै अपने कर्त्तव्य का पालन न करू, तो राजा कैसे कहला सकता हूं ? अनुचित और अस्थानीय कार्य को रोक देना राजा का कर्त्तव्य है । अत कृपा कर यह समझाइए कि आप बुद्धिमान होते हुए भी इस उम्र मे सयम की साधना के लिये क्यो प्रस्तुत हुए हैं ? अगर आपने किसी कष्ट के कारण या किसी के बहकाने से सयम ग्रहण किया हो तो भी नि सकोच होकर कह दीजिये, जिससे मै आपका कष्ट निवारण करने मे सहायक वनू ।

राजा श्रेणिक का प्रश्न सुन कर मुनिराज ने उत्तर दिया—'महाराज, मैं अनाथ था । मेरी रक्षा करने वाला कोई नही था । मेरा पालन कोई कर नही सकता था । इसलिए मैने सयम धारण किया है ।'

मुनि के इस संक्षिप्त उत्तर से यह समझा जा सकता है कि वह कोई भटकने वाला व्यक्ति होगा । उसे खाने-पीने और रहन-सहन की सुविधा न होगी । उसकी रक्षा करने वाला कोई न होगा, इसलिये उसने दीक्षा ले ली होगी । अथवा—

ठिकाना न रहा । मगध के विशाल साम्राज्य का अधिपति श्रेणिक अनाथ है ! यह कल्पना ही उसे आश्चर्यजनक प्रतीत हुई । उसने सोचा—मुनि मुझे अनाथ कहते हैं, यह मेरे लिये अश्रुतपूर्व है । आज तक मुझे किसी ने अनाथ नही कहा । मुझे घर-बार छोडकर बाहर भटकना पड़ा था—मुसीबतो मे मारा-मारा फिरता था, उस समय भी किसी ने मुझे अनाथ नही कहा था । मैंने उस गाढे अवसर पर भी अनाथता अनुभव नही की थी वरन् अपने पुरुषार्थ पर अवलम्बित रहकर अपना काम निकाला । सभव है, मुनि को मेरे वैभव का पता न हो । इनकी आकृति से जान पडता है कि यह मुनिराज महान् ऋद्धि के धनी है, तो सभव है इनकी दृष्टि मे मैं अनाथ जचता होऊ ।

राजा ने कहा—महाराज ! मैं मगध का अधीश्वर हू । मै सम्पूर्ण मगध का पालन-रक्षण करता हू । मेरे राज्य मे अनेक हाथी, घोडे आदि विद्यमान है । बडे-बडे भाग्यशाली राजा मेरी आज्ञा शिरोधार्य करते है और अपनी कन्याए मुझे देकर अनुगृहित होते है । मेरी आज्ञा का अनादर करने का किसी मे साहस नही है । ऐसी स्थिति मे आप मुझे अनाथ क्यो कहते हैं ? मुनि होकर, मुझ सरीखे महान् ऐश्वर्यसम्पन्न सम्राट् को आप अनाथ कहते है, वह मिथ्याभाषण आश्चर्य उत्पन्न करता है । सूर्य प्रकाश न दे, यह आश्चर्यजनक है । इसी प्रकार मुनि मिथ्याभाषण करे, यह भी आश्चर्यजनक है । मुनि कभी असत्य का प्रयोग नहीं करते । मुनिवर ! आपको असत्य न कहना चाहिए । आपके कथन का मर्म क्या है, कृपया स्पष्ट समझाइए ।

**नारी मुई घर सम्पत नासी ।**
**मूंड मुंडाय भये संन्यासी ।।**

इस कथन के अनुसार या तो स्त्री का देहान्त हो गया होगा अथवा सम्पति नष्ट हो गई होगी । ऐसे ही किसी कारण से मूंड मुंडाकर दीक्षा ले ली होगी ।

राजा को भी मुनि का उत्तर सुनकर आश्चर्य हुआ । उसने सोचा होगा—अभी तो ऐसा कलियुग नही आया कि कोई दयालु अनाथ की न रक्षा करे। फिर यह मुनि तो इस प्रकार की ऋद्धि से सम्पन्न है, यह अनाथ कैसे हो सकते है ? इनका कथन तो ऐसा मालूम होता है, जैसे कल्पवृक्ष कहे कि मेरा कोई आदर नही करता, चिन्तामणि कहे—कोई मुझे रखता नही है या कामधेनु कहे,—मुझे कोई खड़े होने को भी जगह नही देता । जैसे कल्पवृक्ष, चिन्तामणि और कामधेनु का यह कथन असभव प्रतीत होता है, इसी प्रकार इन मुनि की बात भी कुछ समझ मे नही आती है । जिनके शरीर मे शख, चक्र पद्म आदि शुभ लक्षण विद्यमान हैं, उनका कोई नाथ न हो, उनकी रक्षा करने वाला कोई न हो, उनका कोई सहायक मित्र भी न हो, यह कैसे माना जा सकता है ?

कवि कहते है- हस से कदाचित् विधाता रुष्ट हो जाय तो उसके रहने का कमल-वन नष्ट कर सकता है, उसे मानसरोवर मे रहने मे बाधा पहुचा सकता है, पर उसकी चोंच मे दूध और पानी को अलग-अलग करने का जो गुण

विद्यमान है, वह तो नही छीन सकता ।

इस प्रकार मन-ही-मन सोचकर राजा ने कहा—'मुनिराज ! आप ऐसी असाधारण ऋद्धि से सम्पन्न होने पर भी अपने को अनाथ कहते है । यह बात मानने को जी नही चाहता । आप मेरे साथ चलिये, मैं आपका नाथ बनता हू । मेरे राज्य मे कोई कमी नही है ।'

आपको भी राजा के समान विवेकशील बनना चाहिए । अगर कोई बात आपकी समझ मे न आएं तो दूसरे पर झटपट आक्षेप कर डालना उचित नही है । पहले वास्तविकता को समझने का नम्रतापूर्वक प्रयास करो, फिर यथोचित कर्तव्य का निर्णय करो ।

श्रेणिक मुस्कुरा कर फिर बोला—'हे भदन्त ! मैं आपसे कुछ अधिक न कहते हुए बस यही कहना चाहता हू कि आप सकोच न करें । आपने अनाथता के दु ख से प्रेरित होकर सयम धारण किया है । मैं उस अनाथता का दु ख दूर करने के लिये आपका नाथ बनता हू । जब मैं स्वय नाथ बन जाऊगा, तो आपको किस चीज की कमी रहेगी ? अतएव मुनिराज, चलिए सयम त्यागकर भोगोपभोग का सेवन कीजिए । आपको सब प्रकार की सुख-सुविधा प्राप्त होगी ।

राजा का यह कथन सुनकर मुनि को आश्चर्य हुआ । इधर मुनि सोच रहे थे—'बेचारा राजा स्वयमेव अनाथ है, तो फिर मेरा नाथ कैसे बनेगा ?' उधर राजा सोचता था—'ऐसे प्रशस्त लक्षणो से सम्पन्न ऋद्धिशाली पुरुष का नाथ

वनने मे कौन अपना सौभाग्य न समझेगा ?'

अन्त मे मुनिराज ने गम्भीर होकर कहा—'राजन् ! तुम स्वय अनाथ हो तो दूसरे के नाथ कैसे वनोगे ? जो स्वयं दिगम्बर है—वस्त्ररहित है, वह अपने दान से दूसरों का तन कैसे ढंकेगा ?

'शरीर भोगोपभोग के लिये है, यह विचार आते ही आत्मा गुलाम एव अनाथ वन जाती है । आप समझते है—अमुक वस्तु हमारे पास है, अतएव हम उसके स्वामी है । पर ज्ञानी-जन कहते हैं—अमुक वस्तु तुम्हारे पास है, तुम उसके गुलाम हो - अतएव अनाथ हो । एक अज्ञानी पुरुष सोने की कठी पहन कर घमण्ड से चूर हो जाता है । वह दिखाना चाहता है कि मैं सोने का स्वामी हू पर विवेकी पुरुष कहते हैं—'वह सोने का गुलाम है ।' अगर वह सोने का गुलाम न होता तो सोना चले जाने पर उसे रोना क्यों पडता है ? वह सोने का आश्रय क्यो लेता है ? जहा परा-श्रय है वही गुलामी है । जहा गुलामी है, वही अनाथता है ।'

मुनि ने राजा को अनाथ कहा । उसका भावार्थ यही है कि तुम जिन वस्तुओ के कारण अपने को नाथ समझते हो, उन्ही वस्तुओ के कारण वास्तव मे तुम अनाथ हो । जव तुम स्वय अनाथ हो तो दूसरे के नाथ कैसे वन सकते हो ? इस प्रकार जिन वस्तुओ पर तुम्हारा स्वामित्व नही है, वह वस्तु अगर दूसरो को प्रदान करोगे तो वह चोरी कहलायगी, उसके लिये दण्ड का पात्र वनना पडेगा ।

मुनिराज के इस कथन से राजा के विस्मय का

ठिकाना न रहा । मगध के विशाल साम्राज्य का अधिपति श्रेणिक अनाथ है ! यह कल्पना ही उसे आश्चर्यजनक प्रतीत हुई । उसने सोचा—मुनि मुझे अनाथ कहते है, यह मेरे लिये अश्रुतपूर्व है । आज तक मुझे किसी ने अनाथ नही कहा । मुझे घर-बार छोडकर बाहर भटकना पड़ा था—मुसीबतो मे मारा-मारा फिरता था, उस समय भी किसी ने मुझे अनाथ नही कहा था । मैंने उस गाढे अवसर पर भी अनाथता अनुभव नही की थी वरन् अपने पुरुषार्थ पर अवलम्बित रहकर अपना काम निकाला । सभव है, मुनि को मेरे वैभव का पता न हो। इनकी आकृति से जान पडता है कि यह मुनिराज महान् ऋद्धि के धनी है, तो सभव है इनकी दृष्टि मे मैं अनाथ जंचता होऊ ।

राजा ने कहा—महाराज ! मैं मगध का अधीश्वर हू । मै सम्पूर्ण मगध का पालन-रक्षण करता हू । मेरे राज्य मे अनेक हाथी, घोडे आदि विद्यमान है । बडे-बड़े भाग्य-शाली राजा मेरी आज्ञा शिरोधार्य करते है और अपनी कन्याए मुझे देकर अनुगृहित होते हैं । मेरी आज्ञा का अना-दर करने का किसी मे साहस नही है । ऐसी स्थिति मे आप मुझे अनाथ क्यो कहते हैं ? मुनि होकर, मुझ सरीखे महान् ऐश्वर्यसम्पन्न सम्राट् को आप अनाथ कहते है, वह मिथ्या-भाषण आश्चर्य उत्पन्न करता है । सूर्य प्रकाश न दे, यह आश्चर्यजनक है । इसी प्रकार मुनि मिथ्याभाषण करे, यह भी आश्चर्यजनक है । मुनि कभी असत्य का प्रयोग नहीं करते । मुनिवर ! आपको असत्य न कहना चाहिए । आपके कथन का मर्म क्या है, कृपया स्पष्ट समझाइए ।

मुनि ने उत्तर दिया—राजन् ! आप सनाथ-अनाथ का भेद नही जानते । इसी कारण आप यह कह रहे है और आश्चर्य मे पड़े हुए है । मै आपको सनाथ-अनाथ का रूप समझाता हूं । शान्त-चित्त से सुनिये । यह मेरे स्वानुभव की वात है । इसमे सदेह के लिये लेशमात्र अवकाश नही है ।

कौशाम्वी नाम की नगरी मे मेरे पिता रहते थे । उनके पास प्रचुर धन-सम्पत्ति थी । मेरा लालन-पालन अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया था । मुझे किसी चीज की कमी न थी । मेरी वाल्य-अवस्था वडे आनन्द से व्यतीत हुई । जव मै तरुण अवस्था मे आया तो सुयोग्य कन्या के साथ मेरा विवाह सवध हुआ । आप जिस अवस्था को भोग भोगने योग्य कहते है, उसी अवस्था मे आपके वताये हुए साधन विद्यमान होने पर भी मेरी क्या दशा हुई सो ध्यान से सुनिये । युवावस्था मे मेरी आखो मे रोग उत्पन्न हो गया । उसके कारण मुझे तीव्र वेदना होने लगी । नेत्र-पीडा के साथ-ही-साथ मेरे सम्पूर्ण शरीर मे दुःसह सताप फूट पडा । उस समय ऐसा जान पडता था मानो सारा शरीर आग मे रख दिया गया है ।

राजन् ! आप शासन के सचालक है । अगर आपके सामने कोई किसी की आखो मे सुई भौंक दे या किसी का शरीर जला दे तो आप क्या करेंगे ?

राजा ने कहा—मेरे राज्य में किसी ने अपराध किया और पता लगने पर भी मैंने अपराधी को दड न दिया हो, यह आज तक नही हुआ ।

मुनि—राजन् ! बाहर के अपराधी से आप मेरी रक्षा कर सकते थे, पर जिस शैतान रोग ने मुझ पर आक्रमण किया था, उससे मुझे कौन बचा सकता था, ? क्या आपके राज्य मे रोग का आक्रमण नही होता ? क्या आप उस आक्रमण का सामना करने के लिये कभी प्रयत्नशील हुए और प्रजा की रोग से रक्षा की है ? क्या अब आपके राज्य मे प्रजा रुग्ण नही होती ? अगर रोग से आप अपने प्रजा जनो की रक्षा नही कर सकते तो उनके नाथ कैसे कहला सकते है ? इस दृष्टि से विचार करे तो प्रजा का नाथ होना तो दूर रहा, आप अपने खुद के 'नाथ' भी नही ! मैं इसी प्रकार का अनाथ था। अगर यह कहा जाय कि रोग से किस प्रकार रक्षा की जा सकती है, वह तो अपने हाथ की बात नही है तो फिर नाथ होने का दावा क्यो करना चाहिए ? नम्रतापूर्वक अपनी अनाथता स्वीकार करनी चाहिए, जिससे सनाथ बनने का उपाय सूझ पडे और उसके लिये प्रयत्न भी किया जा सके।

राजन् ! तुम बाहर के शत्रुओ को देखते हो, पर भीतर जो शत्रु छिपे बैठे हैं उन्हे क्यो नही देखते ? भीतर के शत्रु तो असली शत्रु है। जो उन्हे जीत नही सकता वह नाथ कैसा ? अतएव तुम स्वय भी अनाथ हो।

राजा आपको बड़ी असह्य वेदना थी ?

मुनिराज मैं क्या बताऊ ! आंखो मे तीव्र वेदना थी, जैसे कोई तीक्ष्ण भाला लेकर उनमे चुभा रहा हो। आप विचार कीजिए कि उस समय जो शत्रु मुझे घोर

वेदना पहुचा रहा था, उसे पराजित न कर सकने वाला सनाथ है या अनाथ है ? एक ओर मेरी आंखो में पीडा थी, दूसरी ओर दर्द के मारे कमर टूटी जाती थी। इसके अतिरिक्त, जिसे उत्तमाग कहते हैं और जो ज्ञान का केन्द्रभूत मस्तिष्क है, उसमे भी इतनी पीडा थी मानो इन्द्र वज्र का प्रहार कर रहा है। इस प्रकार मेरा सारा शरीर पीड़ा से छटपटा रहा था।

आप कह सकते है कि उस वेदना का प्रतिकार करने के लिए वैद्य की सहायता लेनी चाहिए थी। पर जितने बडे-बडे चिकित्सको का उस समय पता चला, सबसे चिकित्सा कराई गई। दवा मे किसी प्रकार की कोरकसर नही की गई। नाना प्रकार की चिकित्सा-प्रणालियो का अवलम्बन किया गया पर फल कुछ भी नही निकला। बडे-बडे प्रतिष्ठित आयुर्वेदज्ञ, आपरेशन करने मे कुशल, मन्त्र-विद्या-विशारद लोग अपना कौशल दिखाते-दिखाते थक गये। वेदना नही मिटी, सो नही मिटी। अब कहो क्या मैं उस समय सनाथ था ?

राजन् ! तुमने जिस शरीर की प्रशसा की है और जिस शरीर को भोग के योग्य बताया है, उसी शरीर मे यह पीडा उत्पन्न हुई थी। उस समय मुझे यह विचार आया कि मैं इस शरीर के कारण ही इतना कष्ट भुगत रहा हूं। अगर मुझे विष मिल जाय तो विप-पान करके इस मार्मिक पीडा से मुक्त होऊ। मगर फिर सोचा—विष-पान करने से भी शरीर का सर्वथा अन्त न होगा। शरीर-उत्पति के कारणभूत कर्म जब तक विद्यमान हैं, तब तक एक शरीर का अन्त होने से क्या लाभ है ? एक के पश्चात् दूसरा शरीर प्राप्त होगा और वह भी इसी प्रकार का होगा।

शरीर की यह परम्परा जब तक नही मिट जाती तब तक एक शरीर का त्याग करना व्यर्थ है । इसके अतिरिक्त मैंने सोचा—जिस शरीर के कारण मुझे इतने कष्ट भोगने पड रहे हैं, उस शरीर का नाथ मैं अपने आप को क्यो मानू ? यह खोटी मान्यता ही सब अनर्थो की जड है । जब शरीर का ही यह हाल हैं तो आत्मीय जनो का तथा धन-दौलत का क्या ठिकाना है, उसका कोई नाथ कैसे हो सकता है ? मुझे इस घटना से शरीर और आत्मा के पार्थक्य का भान हुआ । मैंने समझा – इस पीडा का कारण स्वय मैं हू । अज्ञान के कारण मैं पर-पदार्थो को आत्मीय मान रहा हू । मैं अपने शरीर का भी नाथ नही हू, अगर शरीर का नाथ होता तो उस पर मेरा अधिकार होता । मेरी इच्छा के बिना वह रुग्ण क्यो होता ? वेदना का कारण क्यो बनता ? जीर्ण क्यो होता ? यह सब शरीरधारी की इच्छा के विरुद्ध होता है, अतएव यह स्पष्ट है कि मनुष्य अपने शरीर का नाथ नही है ।

मित्रो ! अनाथी मुनि की कथा विस्तृत और भाव-पूर्ण है । उसे यहा पूर्ण रूप से नही कहा जा सकता । 'मैं' और मेरा वास्तव मे क्या है, यह स्पष्ट करने के लिए अनाथी मुनि की कथा उपयोगी है । इससे यह बात सहज ही समझी जा सकती है कि पर-पदार्थो मे ममत्व धारण करना भ्रममात्र है ।

## ८ : मन की चपलता का प्रभाव

### श्री प्रसन्नचन्द्र राजर्षि

राजर्षि प्रसन्नचन्द्र ध्यान मे बैठे हुए थे। वे ऊपर से तो ऐसे दीखते थे मानो आत्मा या परमात्मा मे चित्त को लगाए हुए है, लेकिन वास्तविक वात कुछ और थी। राजा श्रेणिक ने प्रसन्नचन्द्र ऋषि को इस प्रकार ध्यान मे बैठे देखा। उसे आश्चर्य हुआ कि इन ऋषि का ऐसा प्रगाढ ध्यान है! इस प्रकार उनके ध्यान से प्रभावित होकर राजा ने भगवान से पूछा—प्रभो! प्रसन्नचन्द्र ऋषि का जैसा ध्यान मैंने देखा है वैसा ध्यान किसी दूसरे का नही देखा। अगर वे इस समय शरीर का त्याग करे तो किस गति को प्राप्त हो?

राजा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर मे भगवान ने कहा—अगर वे इस समय काल करे तो सातवे नरक मे जाएं।

यह उत्तर सुनकर श्रेणिक के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने पूछा–भगवन्! ऐसा क्यो? और जब ऐसे ध्यानी महात्मा सातवें नरक मे जाएगे तो मुझ जैसे पापी

की क्या गति होगी ? प्रभो ! स्पष्ट रूप से समझाइये कि सबसे अधिक वेदना वाले सातवे नरक मे वे महात्मा क्यो जाए गे ?

भगवान ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—राजन्, अब उनकी भाव-स्थिति बदली है । अतएव इस समय काल करे तो सर्वार्थसिद्ध विमान मे उत्पन्न हो !

भगवान की वाणी पर अटल श्रद्धा रखता हुआ भी श्रेणिक राजा गडबड मे पड गया । उसने सोचा—कहां सर्वार्थ-सिद्ध विमान और कहा सातवा नरक ! दोनो परस्पर विरोधी दो सिरों पर है । एक सासारिक सुख का सर्वोत्तम स्थान है और दूसरा दु ख का सर्वोपरि स्थान ! एक का जीवन अगले भव मे मोक्ष जाना ही है और दूसरे से निकलने वाला अगले भव मे मोक्ष जा ही नही सकता ! क्षण भर मे इतना वडा भारी परिवर्तन यह कैसे सम्भव है ? इस प्रकार सोचकर श्रेणिक ने फिर प्रश्न किया—प्रभो ! अभी-अभी तो आपने सातवे नरक के लिये कहा और अब सर्वार्थसिद्ध विमान मे उत्पन्न होने की बात कहते हैं । आखिर इसका कारण क्या है ?

राजा श्रेणिक इस प्रकार प्रश्न कर ही रहा था कि उसी समय देवदु दुभी का श्रुतिमधुर निर्घोष राजा के कानो मे सुनाई दिया । राजा ने पूछा—प्रभो ! यह दु दुभी कहा और क्यो बजी है ?

भगवान ने कहा—प्रसन्नचन्द्र ऋषि सर्वज्ञ हो गये हैं ।

राजा श्रेणिक चकित रह गया ! उसने कहा—देवाधिदेव ! कुछ समझ मे नही आया ! अभी आपने कहा था कि अभी काल करे तो सातवे नरक मे जाएं, फिर कहा कि सर्वार्थसिद्ध विमान मे जाए और अब आप कहते है कि वे सर्वज्ञ हो गए है । मैं इसका मर्म समझना चाहता हूं और उनका चरित सुनने की इच्छा करता हू । मुझ अज्ञ प्राणी पर अनुग्रह कीजिए ।

भगवान ने कहा—राजन् ! प्रसन्नचन्द्र ऋषि पोतनपुर के राजा थे । उन्हे ससार से वैराग्य हो गया और वे संयम ग्रहण करने के लिये उद्यत हुए । मगर उनके सामने एक समस्या खडी हुई कि लडका अभी छोटा है । उसे किसके सहारे छोडा जाय ? इस विचार के कारण सयम ग्रहण करने मे विलम्ब हो रहा था । परन्तु उनके किसी हितैषी ने अथवा उनके अन्तरात्मा ने कहा कि धर्मकार्य मे ढील नही करना चाहिए । 'शुभस्य शीघ्रम्' होना चाहिए ।

प्रसन्नचन्द्र ने कहा—तुम्हारा कहना ठीक है । मुझे संसार से विरक्ति हो गई है और वह विरक्ति ऊपरी नही, भीतरी है । क्षणिक नही, स्थायी है, मगर विलम्ब का कारण यह है कि पुत्र छोटा है । उसे किसके भरोसे छोड़ा जाय ?

प्रसन्नचन्द्र के इस कथन का उन्हे उत्तर मिला अगर आज ही तुम्हे मृत्यु आ घेरे तो छोटे बालक की रक्षा कौन करेगा ? वैराग्य के साथ मोह-ममता के ये विचार शोभा नही देते । प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को यह कथन ठीक मालूम हुआ और उन्होने संयम लेने की तैयारी की । संयम लेने

से पहले उन्होने अपने पांच सौ कार्यकर्ताओ को बुलाकर उनसे कहा—यह बालक छोटा है । यह तुम्हारे सहारे है । जब तक यह बड़ा न हो जाय, इसकी सभाल रखना । कर्मचारियो ने आश्वासन देते हुए कहा—आपकी आज्ञा प्रमाण है । हम राजकुमार की सभाल करेगे और प्राण भले दे देगे मगर इन्हे किसी प्रकार का कष्ट नही होने देगे ।

प्रसन्नचन्द्र ने पूर्ण वैराग्य के साथ सयम ग्रहण किया । मगर ऐसे उत्कट वैरागी की भावना मे भी दूषण लग गया था । अतएव तुम्हारे पूछने पर मैंने कहा था कि यदि वे इस समय काल करे तो सातवे नरक मे जावे ।

राजा श्रेणिक ने फिर प्रश्न किया—प्रभो ! उनकी भावना किस प्रकार दूपित हुई ?

भगवान—जिस समय तुम सेना लेकर यहा आ रहे थे, उस समय प्रसन्नचन्द्र ऋपि ध्यान मे बैठे थे । तुम अपनी सेना के आगे-आगे दो आदमियो को इसलिये चला रहे थे कि वे भूमि देखते रहे और कोई जीव कुचल न जाय । दोनो आदमी मार्ग साफ करते जाते थे ! उन दोनो ने भी प्रसन्नचन्द्र ऋषि को देखा । उनमे से एक ने कहा—यह महात्मा कितने त्यागी और कैसे तपस्वी है । देखो, किस तरह ध्यान मे डूबे हुए है । इनके लिए जगत की सम्पदा तुच्छ है ।

एक आदमी के इस प्रकार कहने पर दूसरे ने कहा—तू भूल रहा है । यह महान् पापी और ढोगी है । इसके समान पापी और ढोंगी शायद ही कोई दूसरा होगा ।

पहले आदमी ने आश्चर्य से पूछा—क्यो ? यह पापी क्यो है ?

दूसरा आदमी बोला—अपने नादान बालक को अपने कर्मचारियो के भरोसे छोडकर साधु हुआ है मगर उन कर्मचारियो की नियत बिगड गई है। वे सब आपस मे मिल गये है और राजपुत्र की घात करने की फिराक मे है। जब वे लोग उसे मार डालेगे तो यह निपूता मरेगा ? यह इसका पापीपन नही है ? इसने कैसी भयानक भूल की है ! दूध की रक्षा के लिये बिल्ली को नियत करना जैसे मूर्खता है, उसी प्रकार राजकुमार को कर्मचारियो के भरोसे छोडना मूर्खता है। इसकी मूर्खता के कारण ही अज्ञान बालक को अपने प्राणो की आहुति देनी पडेगी और यह मरकर नरक मे जायगा।

श्रेणिक, तुम्हारे दोनो आदमियो की आपस की बाते ऋषि प्रसन्नचन्द्र ने सुनी। यह बाते सुनकर उनके वैराग्य की भावना बदल गई। वह सोचने लगे—दुष्ट कृतघ्न लोग मेरे पुत्र की हत्या करना चाहते हैं। मै ऐसा कदापि नही होने दूगा। मुझमे बल की कमी नही है। अब तक मुझे राज्यबल ही प्राप्त था पर अब मैं योगबल का भी अधिकारी हूं। इन दोनो बलो द्वारा उन दुष्टो को बुरी तरह कुचल दूंगा।

प्रसन्नचन्द्र ऋषि के चित्त मे इस प्रकार अहकार का उदय हुआ और प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हुई। वे अपने मन मे अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प करने लगे। यहां तक कि वे मन-ही-मन घोर युद्ध करने लगे। अपने शत्रुओ का सहार करने लगे। जब वे ऐसा कर रहे थे तभी तुमने प्रश्न किया कि वे काल करे तो कहा जावे ? तुम उन्हे

ध्यान मे समझते थे और मैं देखता था कि वे घोर युद्ध में प्रवृत्त है । इसी कारण मैंने कहा था कि अगर वे इस समय काल करे तो सातवे नरक मे जावे ।

राजा श्रेणिक की उत्कंठा और बढी । उसने प्रश्न किया —भगवन् ! फिर आपने सर्वार्थसिद्धि विमान मे जाने के लिये कैसे कहा ?

भगवान ने उत्तर दिया प्रसन्नचन्द्र ध्यान–मुद्रा मे बैठे-बैठे भी क्रोध के आवेश मे आकर युद्ध करने लगे थे । उसी क्रोधावेश मे उनका हाथ अपने मस्तिष्क पर जा पहुचा । उन्होंने अपने सिर पर हाथ फेरा तो उन्हे विदित हुआ कि मेरे सिर पर केश नही है । यह सोचते ही उन्हे सुध आई कि—अरे ! मैं तो त्यागी हू ! मैंने जिसे त्याग दिया है, उसी के लिये फिर ससार मे जाने की या चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ? जिसे वमन कर दिया है, उसे फिर अपनाने का विचार ही अशोभनीय है ।

इस कथा के आधार पर आपको अपने सम्बन्ध मे विचार करने की आवश्यकता है । आप अपने मन की गति पर विचार कीजिए । आप यहा बैठे है, पर आपका मन कहां जा रहा है ? प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ध्यान मे बैठे थे, परन्तु उनका मन कहा-से-कहां चला गया था और उसका परिणाम क्या हुआ ? इसी प्रकार आप बैठे तो यहा है, मगर आपका मन अन्यत्र चला गया तो उसका परिणाम क्या होगा ?

# ६ : माली अर्जुन

राजगृह नगर मे अर्जुन नामक माली बगीचे मे बागवानी का धन्धा करता था। बागवानी का काम उसके यहां कई पीढियो से चला आता था । जो मनुष्य अपना पीढी-जात धन्धा करता है, उसका उस धन्धे मे गहरा और निराला ही अनुभव होता है । जो चलते रास्ते दूसरे के धन्धे को उडा लेता है और अपना परम्परागत धन्धा त्याग देता है, वह उस धन्धे को हानि पहुचाता है । वह परम्परागत व्यवसाय को क्षति पहुचाता है और नवीन व्यवसाय को भी । इससे समाज मे बडी गडबडी मचती है और अव्यवस्था फैल जाती है । इसी कारण भारतवर्ष मे वर्णव्यवस्था की स्थापना की गई थी और यह नियम बनाया गया था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना परम्परागत व्यवसाय ही करना चाहिये । अगर कोई अपना व्यवसाय त्याग कर दूसरे के व्यवसाय मे हाथ डाले तो राजा को हस्तक्षेप करके उसे रोकना चाहिये । अगर ऐसा न किया जाय तो वर्णसकरता फैल जायगी ।

अर्जुन माली अकेला ही अपना काम नही करता था । उसकी पत्नी भी उसकी सहायता करती थी । आजकल की स्त्रिया प्राय अपने पतियो को बोझ रूप हो रही है । पहले

की स्त्रिया ऐसी नही थी—उनका ढंग कुछ और ही था। आज पुरुषो पर अपनी स्त्री की जोखिम बनी रहती है और इसीलिये स्त्री, पुरुष के लिये भाररूप हो रही है। पुरुषो को सदा ही यह चिन्ता लगी रहती है कि हमारी स्त्री की ओर कोई बुरी नजर से न देखें और उसका अपमान न करे। उसे कोई बहका कर उडा न ले जाय। इस स्थिति के लिये उत्तरदाता कौन है—पुरुषवर्ग या स्वय महिलासमाज ? मैं इस झंझट मे पडना नही चाहता। किसी समूह को अवां-छनीय स्थिति मे डालने वाला दूसरा समूह अगर दोषी हो तो भी अवाछनीय स्थिति मे पडने वाले समूह को निर्दोष नहीं कहा जा सकता। मगर इस अभियोग प्रणाली को दूर रखकर मैं तो यही कहना चाहता हू कि प्राचीन काल मे महिला-समाज की ऐसी स्थिति नही थी। स्त्रिया, पुरुषो की अर्द्धांगिनी की हैसियत से उनकी सहायता करती थी। वे न केवल व्यवहारिक कार्यों मे ही वरन् धार्मिक कार्यो मे भी पुरुषो की सहायिका वनती थी। उपासकदशाग सूत्र मे स्त्रियो को 'धम्मसहाया' अर्थात धर्म मे सहायता पहुचाने वाली कहा है। स्त्रिया वीरता मे भी पुरुपो से किसी प्रकार हीन नही होती थी।

अर्जुन माली की स्त्री का नाम बन्धुमति था। उस दिन नगर मे वडा उत्सव था। अतएव पति-पत्नी दोनों, कुछ रात रहते ही फूल चुनने के लिये बगीचे मे जा चुके थे।

इसी नगर मे ललित गोष्ठी के छह जवान लडके बड़े गुडे थे। इन्होने पहले कोई ऐसा काम कर दिखाया था कि राजा इनके प्रति कृतज्ञ-से थे। अव वे भला-बुरा कोई

भी काम करें, उन्हे कोई रोकने वाला नही था। उनकी धाक नगर भर मे जम गई थी, अतएव किसी को बोलने का साहस भी नही होता था। ये गुंडे अपनी धाक का अत्यन्त अनुचित उपयोग करने लगे। उस दिन ये युवक अर्जुन माली के वगीचे मे पहुचे। ये लोग अर्जुन माली के पहुंचने से पहले ही वहा जा धमके थे। जव अर्जुन ने अपनी स्त्री के साथ वगीचे मे प्रवेश किया, तव इनमे से एक की दृष्टि उसकी स्त्री पर पडी। उसे देखते ही उसके हृदय मे दुर्वासना उत्पन्न हुई और वे किवाडो के पीछे छिप गये। जव अर्जुन माली अपनी स्त्री सहित यक्ष को वन्दन करने लगा तभी उन्होने उसे पकडकर वांध लिया।

इन पापियो ने अर्जुन माली के सामने ही उसकी स्त्री का सतीत्व भग किया। स्त्री कुछ न वोली। जो स्त्री अतने सतीत्व को हीरे से वढकर समझती है, उसकी आखों मे तेज का ऐसा प्रकृष्ट पुज विद्यमान रहता है कि उसका सामना होते ही पापी की निर्वल आत्मा थर-थर कापने लगती है। पर खेद, इस स्त्री ने अपने सतीत्व का जरा भी मूल्य न समझा।

अपनी आखो के आगे, अपनी पत्नी का यह व्यवहार देख कर अर्जुन माली क्रोध से तिलमिला उठा। उसका समस्त शरीर गुस्से से जलने लगा। असह्य क्रोध से वह अपना सिर धुनने लगा। पर वह विवश था—वन्धनो में जकडा हुआ।

यह घटना यक्ष के मन्दिर में घटी थी। अर्जुन

माली इस यक्ष का बडा भक्त था। उसके पूर्वज भी इस यक्ष की पूजा करते आये थे। आज अर्जुन माली ने यक्ष से प्रार्थना की—'हे यक्ष! हम तुम्हे कई पीढियो से पूजते आते है। क्या उसका प्रतिफल मुझे कुछ भी नही मिलेगा ? इस महान् सकट-काल मे भी तुम मेरी मदद न करोगे ? अगर अब काम न आये, तो कब आओगे ?

अर्जुन माली के हृदय की पुकार यक्ष ने सुनी। वह प्रकट हुआ और अर्जुन के शरीर मे प्रविष्ट हो गया। उसके बन्धन तडातड तडक गये। यक्ष की मूर्ति के हाथ मे एक बडा भारी मुद्गर था। अर्जुन माली ने बन्धमुक्त होते ही मुद्गर उठाया और उन छहो मदोन्मत्त युवको को और अपनी स्त्री को यमलोक पहुचा दिया। पाप का घडा फूट पडा।

शरीर मे यक्ष के प्रवेश से अर्जुन माली मे अपार बल आ गया था। वह क्रोध से पागल हो उठा। जिस नगर निवासी पर उसकी दृष्टि पडती थी, उसी को बिना मारे नही रहता था। उसके मन मे यह संस्कार सुदृढ हो गया था कि इन युवको को साड बनाने वाले यह नगर-निवासी है। यह लोग उन्हे आसमान पर न चढाते तो उनकी क्या मजाल थी कि वे इतना अत्याचार, अनाचार करते ?

अर्जुन माली के इस राक्षसी व्यवहार की खबर बिजली की तरह सारे राजगृह मे फैल गई। राजा श्रेणिक के कानो तक भी यह समाचार पहुचा। श्रेणिक ने शहर के बाहर न निकलने की आज्ञा घोषित कर दी। यह आज्ञा

भग करने पर अगर अर्जुन माली किसी का वध कर डाले तो हमारा उत्तरदायित्व नही है, यह भी सर्वसाधारण को सूचित कर दिया गया ।

राजा की और नगर-निवासियो की कितनी कायरता है ? इस कायरता ने ही उनके दु खो की वृद्धि की । अगर उन्होने कायरता न दिखाई होती और वहादुरी से योग्य प्रतिकार किया होता तो उन्हे इतनी मुसीवत न उठानी पडती । पर प्रकृति यहा तो कुछ और ही खेल दिखाना चाहती थी । सुदर्शन की भक्ति की शक्ति का परिचय कराना था ।

पाच महीने से कुछ अधिक समय तक अर्जुन माली नागरिको को कष्ट पहुचाता रहा । यह उनकी कायरता का प्रायश्चित्त था ।

सयोगवश इसी समय भगवान महावीर स्वामी राज-गृह नगर के वाहर एक उद्यान मे पधारे । नगर-निवासियो ने भगवान महावीर के पधारने का वृतान्त सुना, पर अर्जुन माली के भय मे कोई वाहर न निकला ।

सुदर्शन भगवान का अनन्य भक्त था । उसने भगवान के पधारने का सवाद सुना । उसे विना भगवान के दर्शन किये चैन नही पडा । वह प्रभु दर्शन के लिये माता-पिता की आज्ञा मे जाना चाहता था । माता-पिता ने उसे वहुत कुछ समझाया—वेटा ! तेरे न जाने से कुछ हानि न होगी । तेरा वहा काम क्या अटका है ? नगर की चिरैया वाहर नही जाती, तो तू ही क्यो जाता है ?

लेकिन सुदर्शन डरपोक नही था । वह अपने सकल्प पर दृढ रहा और प्रभु के दर्शन के निमित्त घर से निकल पड़ा । नगर की हवेलियो की छतो पर बैठे हुए नर-नारियों के समूह सुदर्शन को देख रहे थे। उनमे से कोई उसे जाने से रोकता था और कोई कहता था—देखो, इसे मौत लिये जा रही है । शहर का कोई बच्चा तो बाहर नही निकलता और यह भगतराज बनने चले है । दूसरा कोई कहता—अजी, जाने भी दो, हमारा क्या लिया ? बच्चू जाते हैं पर लौटकर नही आने के । अर्जुन माली देखेगा तो मुद्गर की मार से चटनी बना डालेगा । तब पता चलेगा, भक्ति कैसी होती है । भगवान तो ज्ञानी है । वे घट-घट की वात जानते है । घर मे बैठा-बैठा वन्दना कर लेता तो क्या वे स्वीकार न करते ?

सुदर्शन सब बाते सुनी-अनसुनी करता हुआ आगे बढ़ता चला जाता था । क्रमश नगर को पार कर वह और बाहर हो गया । नगर के बाहर अर्जुन मौजूद था । महाविकराल रूप, लाल-लाल आखे और मुद्गर हाथ मे पकडे हुए वह तैयार था । उसका रूप इतना डरावना था कि नजर पडते ही धैर्यवानो की छाती थरथरा उठे । परन्तु सुदर्शन निर्भय होकर आगे बढता चला जाता था ।

अर्जुन माली ने दूर से सुदर्शन को देखा तो उसकी प्रसन्नता का पार न रहा । वह मन मे सोचने लगा—अब मिला है शिकार ! आने दो कुछ और निकट तब अपनी प्यास बुझाऊंगा ।

सुदर्शन अपनी मस्तानी चाल से चलता जा रहा था ।

उसकी चाल देखकर अर्जुन माली सोचने लगा—इसकी चाल में इतना घमण्ड छिपा है ! जान पड़ता है, वड़ा अकड़वाज है ! अरे, इसने मुझे देख लिया है फिर भी इसके पैर ढीले नही पड़े । इसके चेहरे पर भय का भाव ही नही दिखाई देता । अ अव इतने निकट आ गया है—फिर भी वही चाल, वही अकड़, वही मस्ती, ।

अव अर्जुन से रहा न गया । उसने ललकार कर कहा—ओ जाने वाले !

उत्तर मे सुदर्शन कुछ न वोला । वह मौन था ।

अर्जुन माली मन-ही-मन विचार करने लगा—इसकी मुख–मुद्रा पर जरा भी भय का आभास नही ! पहले तो कोई ऐसा नही मिला । जो सामने आते थे वही गिडगिडाकर प्राणो को भीख मागने लगते थे, पर यह तो अद्भुत व्यक्ति है !

अर्जुन माली ने रास्ता रोक लिया ।

सुदर्शन ने भीषण सकट आया देखा तो उसी समय भूमि का प्रमार्जन किया, आसन विछाया और भगवान को वन्दना करके १८ पापो का परित्याग किया । उसने प्रतिज्ञा की—यदि मे इस सकट से वच जाऊंगा तो मेरी जैसी पूर्व क्रिया है, वैसी ही रखूंगा । इस संकट से पार न हो सका तो अव से महाव्रत धारण करता हू ।

## सुने री मैंने निर्वल के बल राम

संसार मे निर्वलो के सच्चे वल राम ही है । इस

बल के सामने तलवार का बल नगण्य—नाचीज बन जाता है।

सुदर्शन ने अहंकार त्याग दिया। वह पाषण-मूर्ति की भांति होकर ध्यान मे बैठ गया। यह देखकर अर्जुन माली और भी क्रूर हो गया। प्रहार करने के लिए उसने अपना मुद्गर ऊपर उठाया।

अनेक नगर-निवासी अपने मकानो की छतों से यह दृश्य देख रहे थे। उनमे जो प्रभु के भक्त थे, वे सोच रहे थे—प्रभो! सत्य की रक्षा करना। सुदर्शन सत्यभक्त है, सत्याग्रही है। इस समय केवल आपका ही सहारा है। कही ऐसा न हो कि आपके भक्त की पत जाय।

इससे विपरीत कई क्षुद्राशय पुरुप ऐसे भी थे जिन्हे अपने आपको भविष्यभाषि सिद्ध करने का प्रबल प्रमाण उपलब्ध हो रहा था। वे कह रहे थे–देखो, हमने पहले ही कह दिया था कि नही ? उसे समझाया कि मत जा भाई, अर्जुन माली देख पाएगा तो मुद्गर की मार से चूर्ण वना डालेगा। अब देखो, मुद्गर तानकर सामने अर्जुन माली खडा है। सिर पर पडने की ही देर है। मेरा कहना कितनी जल्दी सच सिद्ध हो रहा है।

पर यहा तो निर्बल का वल राम था। अगर राम (आत्मा) का वल प्रबल न होता तो जगत् मे सत्य की प्रतिष्ठा किस पर होती ? धर्म की स्थिरता किस आधार पर होती ?

अर्जुन माली ने अपना मुद्गर उठाया। वह ऊपर उठ तो गया मगर नीचे न आ सका। अर्जुन ने पूरी ताकत लगाई, पर मुद्गर स्तंभित हो गया था। सुदर्शन पर प्रहार न हो सका। अर्जुन तिलमिला उठा पर विवश था।

इधर सुदर्शन की तरफ देखो। उसकी आंखो से अमृत बरस रहा है।

अर्जुन माली ने तीन बार पूरी शक्ति लगाई। उसके हाथ नीचे की ओर रचमात्र नही झुकते थे। यह अद्भुत अवस्था देखकर अर्जुन माली हैरान था। वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा चुका, पर तनिक भी सफलता न मिली। अन्त मे वह परास्त हो गया। उसने सुदर्शन की ओर कातर दृष्टि से देखा। सुदर्शन ने भी अपनी सुधामयी दृष्टि से उसे देखा। जैसे ही उस पर सुदर्शन की नजर पडी, त्यो ही यक्ष उसके शरीर से निकलकर भाग गया। अर्जुन माली अशक्त होकर धडाम से नीचे धरती पर गिर पडा।

अर्जुन माली की यह अवस्था देख सुदर्शन ने अपनी निश्चलता भग की। वह उठा और अर्जुन के पास जाकर, उसके शरीर पर स्नेहपूर्ण हाथ फेरकर बोला—भाई, तुम्हे कष्ट हो रहा है। जी तो अच्छा है न ?

अर्जुन—तुम कौन हो ?

सुदर्शन—मैं श्रमणोपासक हू।

साधुओ और साध्वियो, आपके उपासक शिष्य भी

पहले कैसे होते थे ? आपके शिष्यो मे ऐसी शक्ति हो तो आपमें कितनी होनी चाहिए ? आज हम साधु इतना उप-देश देते है पर जितनी सफलता मिलनी चाहिए—श्रोताओं पर जितना गहरा प्रभाव पडना चाहिए, उतनी सफलता नहीं मिलती—उतना प्रभाव पडता दृष्टिगोचर नही होता। यह हमारे आत्मिक बल की न्यूनता है। जिस दिन हममे विशिष्ट आत्मज्योति प्रगट हो जायगी, उस दिन हमारे श्रोता शिष्य हमारे इशारे से काम करने लगेंगे। फिर इतने लम्बे भाषण की आवश्यकता ही नही रहेगी।

मित्रो ! सुदर्शन ने अपने राम पर भरोसा रखा, इसी कारण उसे लोकोत्तर विजय मिली। आप सुदेव और सुगुरु पर विश्वास करेंगे तो आपकी आत्मा में भी ऐसी ही दिव्य शक्ति फूट पड़ेगी।

कहते लज्जा आती है कि आप भगवान महावीर के शिष्य होकर कुदेव और कुगुरु को पूजते फिरते हैं ! आप भैरों और भोपो के आगे भटकते और सिर रगडते हैं। ऐ रोने वालो, कही रोने से भी बेटा मिलता है ? तुम महावीर के शिष्य हो, तुम मे वीरता होनी चाहिए। उस वीरता की जगह तुममे नपुंसकता आ गई है। क्या इसी नपुंसकता के बल पर धर्म को दिपाओगे ? तुम अहिंसा के परम सिद्धान्त को मानते हो, फिर भी जहा बकरे काटे जाते हैं, अन्य पशुओ का क्रूरतापूर्वक वध किया जाता है, मदिरा की बोतले उडेली जाती है, वहां जाकर शीश झुकाते हो ! शर्म !

गीता मे श्रीकृष्ण ने कहा है—जो देवताओ को पूजते

हैं वे देवों के पास और भूतो को पूजने वाले भूतों के पास जाते है।

सुदर्शन को सच्चा उपदेश लगा था। उसने देव की आराधना की थी और अर्जुन माली ने यक्ष की। यक्ष की शक्ति तामसी होती है, दुःखजनक होती है। इसके विपरीत देव की शक्ति सात्विक शान्ति और सुखप्रद होती है।

अर्जुन माली की शक्ति सुदर्शन की शक्ति के सामने परास्त हो गई। जनता यह अद्भुत चमत्कार देखकर चकित रह गई। भविष्यवक्ताओ के मुख मलिन से हो गये और धर्मनिष्ठ पुरुषो के प्रमाद का पार न रहा।

जब भक्तवर सुदर्शन भगवान के दर्शन करने जाने लगा तो अर्जुन माली ने भी दर्शनार्थ चलने की उत्सुकता प्रकट की। सुदर्शन ने प्रसन्नतापूर्वक उसे अपने साथ लिया। इस अनूठी जोडी को देखकर लोग दांतो तले उंगली दबाने लगे। किसी-किसी ने कहा कि—हम तो समझ रहे थे, सुदर्शन चूर-चूर हो जायगा पर अर्जुनमाली तो उसका शिष्य बन गया है।

मित्रो! सुदर्शन की भाति पापी मनुष्य को अपनाना सीखो। पापी के पाप का क्षय करने का यही उपाय है। पापी से घृणा करके, उसे अलग रखोगे तो उसके पाप का अन्त आना कठिन है। अगर उसे आत्मीय भाव से ग्रहण करोगे तो उसका सुधार होना सरल होगा। चाहे कोई ढेड हो, चमार हो, कसाई हो, कैसा भी पापी क्यो न हो, उसे सम्मान-पूर्वक धर्मोपदेश श्रवण करने के लिये उत्साहित करना

चाहिए। सुदर्शन के चरित्र से पतितों को दुरदुराने का त्याग करना सीखना चाहिए।

सुदर्शन अर्जुन माली को साथ लेकर प्रभु महावीर के पास गया। सुदर्शन ने विधिपुरस्सर वन्दना-नमस्कार कर भगवान के प्रति अपना भक्तिभाव प्रगट किया। अर्जुन ने भी सुदर्शन का अनुकरण किया।

अर्जुन माली को ससार के प्रपचो से घृणा हो गई थी। भगवान् का प्रभावशाली उपदेश सुनकर उसकी वह घृणा अधिक बढ गई। वह विरक्त हो गया। उसने महा-वीर स्वामी से मुनिधर्म की दीक्षा अगीकार की।

दीक्षित होने के पश्चात् मुनि के रूप मे, अर्जुन माली भिक्षा के निमित्त नगर मे आया। अज्ञानी जन उसे देखकर क्रोधित होने लगे। कोई कहता—हाय ! इसी दुष्ट ने मेरे पुत्र का घात किया था। इसी प्रकार विभिन्न लोग अपने-अपने सम्बन्धियो का स्मरण कर उसकी भर्त्सना करने लगे। किसी-किसी ने तो उस पर प्रहार भी किये। किसी ने थप्पड मारा, किसी ने घूसा जमाया, किसी ने लकडी लगाई, किसी ने केवल गालिया देकर ही सन्तोष कर लिया।

मगर अर्जुन माली पर इन सब व्यवहारों का मानो कुछ भी असर नही पडता था। वह पहले की ही भाति शान्त और गम्भीर था जब कोई उसके शरीर पर प्रहार करता तो वह उस दड को अत्यल्प समझता और सोचता—

मैंने इसके सम्बन्धी का वध किया था। यह उसका बदला तो बहुत थोड़ा ले रहा है। ये लोग मुझे बहुत सस्ते मे निबटा रहे हैं।

अर्जुन माली ने इसी उत्कृष्ट क्षमा-भावना के साथ शरीर का सदा के लिये त्याग किया और सिद्ध अवस्था प्राप्त की।

मित्रो ! इस कथानक को सुनकर आप छह युवकों और सातवी स्त्री के वध को ही पाप समझते होगे। भला पाप को पाप कौन न समझेगा ? पर महाभारत मे मैंने देखा है कि जो पुरुष शक्ति होते हुए भी अपने सामने अपराध होने देता है, जो अपराध का प्रतिकार नही करता, वह अपराध करने वाले के समान ही पापी है।

# १० : तृष्णा

कपिल श्रावस्तीनरेश के पुरोहित काश्यप का पुत्र था। पुरोहित की मृत्यु के पश्चात् वह विद्याध्ययन के लिए कौशाम्बी गया। वहां एक दासी के साथ उसका प्रेम हो गया। दासी की इच्छा पूरी करने के लिए वह राजा द्वारा प्रतिदिन प्रातःकाल दिए जाने वाले दो माशा सोने का दान लेने के लिए रात्रि मे चल पड़ा। रात्रि मे निकलने के कारण सिपाहियों ने उसे चोर समझकर पकड लिया और सूर्योदय के पश्चात् राजा के समक्ष उपस्थित किया।

कपिल की आकृति और भावभगी देखकर राजा को लगा कि यह मनुष्य चोर नही जान पड़ता।

उधर कपिल मन मे सोचने लगा—इस राजा का श्रावस्तीनरेश के साथ वैर है। जब यह जानेगा कि मैं श्रावस्ती का रहने वाला हू मुझे अधिक दण्ड देगा। पर कुछ भी क्यो न हो मैं झूठ हर्गिज नही बोलूंगा।

उसी समय राजा ने कपिल से पूछा—कहां रहते हो ?

कपिल बोला—मैं श्रावस्ती का रहने वाला हूं।

श्रावस्ती का नाम सुनते ही राजा का वैर-भाव ताजा

हो गया । उसने ललाट सिकोडते हुए कहा—किसका लड़का है ?

कपिल—पुरोहित काश्यप का पुत्र हू ।

राजा—तब तो तू मेरे शत्रु के मित्र का पुत्र है । अच्छा, यहां क्यो आया है ?

कपिल—श्रावस्ती के उपाध्याय मुझ पर ईर्ष्या रखते हैं । कोई मुझे पढाता नही था । अत. अध्ययन करने के लिये यहा आया हू ।

राजा—तो रात्रि के समय वाहर क्यो घूमता-फिरता था ?

कपिल—यह कहानी लम्बी है, फिर भी कहता हूं । मेरे भोजन की व्यवस्था एक सेठ के घर पर की गई थी । वहा एक दासी काम-काज के लिये आया करती थी । मैं उसके साथ भ्रष्ट हो गया । वह लोभी थी । उसने मुझसे कहा—त्यौहार आया करते है । त्यौहारो के अवसर पर मुझे नये कपडे चाहिये । आप ला दीजिये । मैंने उससे कहा—मेरे पास धन नही है । भोजन भी दूसरे के घर करता हू । तुम्हारे लिए कपडा कहां से लाऊ । तव वह वोली—कपडा भी लाकर नही पहिना सकते तो मुझसे प्रेम ही नही करना था । लाने की इच्छा हो तो उपाय मैं बता सकती हू । मेरे पूछने पर उसनें बतलाया—

'इस नगर मे एक धन्ना सेठ है । प्रात काल सबसे पहले, उनको जो ब्राह्मण आशीर्वाद देता है, उसे वे दो माशा

सोना दान करते है । तुम उनके पास जाओ और दो माशा सोना ले आओ ।

मैंने यह स्वीकार किया । मुझसे पहले पहुचकर कोई दूसरा सोना न ले ले, इस विचार से मैं मध्य रात्रि मे ही चल पडा । रास्ते मे मुझे सिपाहियो ने पकड लिया । मैं चोरी करने नही निकला था ।

कपिल की कथा सुनकर राजा का दिल पिघल गया । उसने कहा—यद्यपि तू मेरे शत्रु के मित्र का पुत्र है, फिर भी तूने निखालिश हृदय से सच्ची बात कह दी है । इससे मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं । तुझे जो चाहिए, वही मुझसे माग ले । तू मागने मे सकोच न करना, मै देने मे सकोच नहीं करूगा । जो मागेगा, वही पाएगा ।

राजा की यह उदारता देखकर कपिल विचार मे पड़ गया—मुझे क्या माग लेना चाहिए ? पहले बिना विचारे काम किया तो पकडा गया । अब खूब सोच समझकर ही काम करना चाहिए । ऐसा अवसर भी तो फिर नही मिलने का ।

कपिल ने राजा से कहा—विचार करने के लिये मुझे दो घडी का समय मिलना चाहिए । मै यही अशोक-वाडी मे जाकर विचार कर लेता हू ।

राजा ने विचार करने को मुहलत दे दी । कपिल अशोकवाड़ी मे जाकर विचार करने लगा—दो माशा सोना मागूगा तो उससे क्या होगा ? उससे तो पूरे कपड़े भी नहीं बन सकेंगे । फिर वह नये कपड़े पहनेगी और मै चिथड़े

लपेटे फिरूंगा !

तो दस माशा सोना ले लूं ? मगर इससे साधारण पौशाक ही तैयार होगी। राजा-रानी जैसी नही वन सकेगी। और वह भी एक वार वन जायगी, दूसरी वार के लिए फिर कही भटकना पडेगा। तो क्यो न राजा-रानी के ही नये कपड़े माग लूं ? कदाचित् वे कपड़े दे देंगे, मगर मूल्यवान कपडे आभूषणो के विना क्या सोहेगे ? इसलिए कपडो के साथ आभूषण भी माग लूंगा।

मगर कमी तो फिर भी रह जायगी ! उत्तम राजसी वस्त्र और मणिमय आभूषण पहनकर क्या झोपडी मे रहना अच्छा लगेगा ? राजा ने मुंह मागा देने की प्रतिज्ञा की है तो मागने मे कसर क्यो की जाय ? एक महल भी मांग लेने मे क्या हर्ज है ?

पर महल मे रहकर हाथ से काम करना उचित नही होगा। एक-दो नौकर भी चाहिए ही। किन्तु नौकरो का खर्च कहा से लाया जाएगा ? आखिर वे हर महीने वेतन मागेगे !

तो दो-चार गांव माग लूं ? लेकिन इससे भी क्या होगा ? दस-वारह गांवो के विना मजे से रहना संभव नही हो सकेगा।

जव मागना ही है और एक ही मागना है और मुंह मांगा मिलता है तो दस-वारह गांव मांगना भी क्या ओछापन

नही है ? फिर सारा ही राज्य क्यो नही माग लेना चाहिए ? मै सारा राज्य ही मांगूंगा ।

मगर इसमे भी एक कठिनाई है । सारा राज्य माग लेने से राजा मेरा बैरी बन जायगा, कदाचित् विद्रोह भी कर दे । इसलिये राजा को कारागार भी क्यो न माग लू । बस, यही ठीक है ।

किन्तु राजा कारागार मे बद रहेगा और मै सिहासन पर बैठूगा तो लोग क्या कहेगे ? यही न कि कपिल कितना नीच और कृतघ्न है, जिसने वचनबद्ध हुए राजा का राज्य ले लिया और फिर उसे जेलखाने मे डाल दिया । वास्तव में मै कितना नीच हू कि दो माशा सोने के बदले सम्पूर्ण राज्य मिलने पर भी मेरी लोभवृत्ति शान्त नही हुई । और मै वरदान देने वाले राजा को कारागार मे बन्द कर देने के लिए तैयार हो गया । जिस वैभव की कल्पना मात्र से मनुष्य इतना गिर जाता है, उसके मिल जाने पर कितना नही गिर जायगा । हाय । इस तृष्णा का कही अन्त भी है ?

इस प्रकार विचार धारा के मुडते ही कपिल की आत्मा जाग उठी । उसे उसी समय अवधिज्ञान हो गया । वह अपने पूर्वजन्म को हाथ की रेखा के समान स्पष्ट देखने लगा । एक कथा मे ऐसा उल्लेख आता है कि कपिल की भावना होते ही देव ने आकर उसे साधु का वेष प्रदान किया । तत्पश्चात् कपिल राजा के पास पहुचा । राजा ने कहा—यह क्या किया तुमने ?

# ११ : महारानी चेलना

मगध सम्राट् श्रेणिक की एक पत्नी का नाम चेलना था। चेलना जैन-धर्म की अनुयायिनी थी और कट्टर अनुयायिनी थी। उस समय तक श्रेणिक ने जैन-धर्म अगीकार नही किया था। यद्यपि राजा और रानी के धार्मिक विचार और आचार एक सरीखे नही थे, फिर भी दोनो मे हार्दिक स्नेह था। कभी-कभी दोनो मे धर्मचर्चा हुआ करती। एक वार श्रेणिक ने किसी जेन मुनि को रास्ते जाते देख चेलना से कहा—देखो, वे जा रहे है तुम्हारे गुरु! नीचा सिर और नीची नजर किये जाते हैं। कोई गाली दे या मार-पीट दे तो भी चूं नही करते। यह तो गनीमत है कि हमारे राज्य मे सुव्यवस्था है, कोई किसी को सता नही सकता अन्यथा तुम्हारे गुरुजी की क्या दशा होती? इतनी कायरता मनुष्य मे नही होनी चाहिए। मनुष्य को राज्य-सत्ता या किसी दूसरे के बूते पर जीवित नही रहना चाहिए। आत्म-रक्षा के लिए जो दूसरो की अपेक्षा रखता है वह तेजोहीन है, कायर है। कायर गुरु की उपासना करने से तुम मे भी कायरता आएगी। हम लोग क्षत्रिय है। हमारे गुरु वीर होने चाहिए, जो ढाल और तलवार से लैस होकर घोड़े पर घूमते हो।

रानी चेलना बोली—प्राणनाथ, आपका विचार भ्रमपूर्ण है। मेरे गुरु कायर नही, वीर है। मै कायर गुरु की चेली नही हूं। मेरे गुरु की वीरता के आगे आपके समान सौ वीर भी नही टिक सकते। आपके बडे-से-बडे सेनापति भी काम के गुलाम हैं, परन्तु मेरे गुरु ने उस काम को भी पराजित कर दिया है। ससार के महान-से-महान वीरो पर भी विजय प्राप्त करने वाले काम को जीत लेना क्या साधारण वीरता है? यह वीरता सर्वोत्तम वीरता है। जिसमें यह वीरता है, उसे आप कायर कैसे कह सकते है?

श्रेणिक—ठीक है, किसी दिन इसका भी उत्तर दिया जायगा।

रानी चेलना श्रेणिक का अभिप्राय समझ गई। उसने सोचा—राजा, गुरुजी की परीक्षा करेंगे। चलो, यह अच्छा ही है। परीक्षा का परिणाम अच्छा ही होगा और महाराज का झुकाव उस ओर अवश्य होगा।

एक दिन राजा ने किसी सुन्दरी वेश्या को बुलाकर कहा—तू उस साधु के पास जा और किसी उपाय से उसे भ्रष्ट कर। मेरा यह काम पूरा कर देगी तो मुह मांगा इनाम पाएगी।

वेश्या मुफ्त में ही राजा का काम करने के लिए तैयार थी। तिस पर राजा ने इनाम और वह भी मुंह मागा देनें का प्रलोभन दे दिया। फिर वह क्यो पीछे पैर रखती।

कपिल ने सन्तोप के स्वर मे कहा—मुझे जो चाहिए था, मिल गया है ।

राजा ने कहा—पर साधु का वेष क्यो धारण कर लिया है ?

कपिल - दान मागने का विचार करते-करते मेरे लोभ का अन्त नही आया । आपका सम्पूर्ण राज्य लेकर आपको कारागार मे रखने तक का विचार कर लिया । फिर भी सन्तोप नही हुआ । तृष्णा वढती ही चली गई । तब मैंने उसे कम करना शुरु किया । कम करते-करते मैं इस स्थिति मे आ पहुचा हू । यह स्थिति प्राप्त करने पर मुझे शान्ति मिली । मै दुनिया की और राज्य की खट—पट में नही पडना चाहता ।

राजा ने कहा आप चाहे तो सुख से राज्य करे मै लिख देता हू कि मै आजीवन आपका सेवक होकर रहूंगा । शत्रु के आक्रमण करने पर रक्षा करू गा ।

कपिल—अव राज्य करने का मोह मुझे नही रहा । मै आपसे एक वात पूछना चाहता हूं । अगर मै आपका राज्य माग लेता तो आप मेरे वैरी वन जाते या नही ?

राजा—अवश्य । उस दशा में वैर तो वधता ही ।

कपिल—परन्तु अव आप स्वयं राज्य दे देना चाहते हैं । यह इस त्याग का ही प्रताप है । जिस त्याग को

अपनाते ही राज्य चरणो मे लोटने लगा, उस त्याग को राज्य के लिये कैसे त्याग सकता हूं ?

यह कहकर कपिल मुनि जगल की ओर चल दिये। वहां पहुंचकर उन्होंने पाच सौ नृशस चोरो को उपदेश देकर सुधारा और अन्त मे अनन्त शान्ति प्राप्त की ।

तृष्णा आकाश की भाति असीम है, आग की तरह अतृप्त है और पिशाच की तरह सर्वभक्षी है ।

# ११ : महारानी चेलना

मगध सम्राट् श्रेणिक की एक पत्नी का नाम चेलना था। चेलना जैन-धर्म की अनुयायिनी थी और कट्टर अनुयायिनी थी। उस समय तक श्रेणिक ने जैन-धर्म अगीकार नही किया था। यद्यपि राजा और रानी के धार्मिक विचार और आचार एक सरीखे नही थे, फिर भी दोनो मे हार्दिक स्नेह था। कभी-कभी दोनो मे धर्मचर्चा हुआ करती। एक वार श्रेणिक ने किसी जेन मुनि को रास्ते जाते देख चेलना से कहा—देखो, वे जा रहे है तुम्हारे गुरु! नीचा सिर और नीची नजर किये जाते है। कोई गाली दे या मार-पीट दे तो भी चू नही करते। यह तो गनीमत है कि हमारे राज्य मे सुव्यवस्था है, कोई किसी को सता नही सकता अन्यथा तुम्हारे गुरुजी की क्या दशा होती? इतनी कायरता मनुष्य मे नही होनी चाहिए। मनुष्य को राज्य-सत्ता या किसी दूसरे के बूते पर जीवित नही रहना चाहिए। आत्म-रक्षा के लिए जो दूसरो की अपेक्षा रखता है वह तेजोहीन है, कायर है। कायर गुरु की उपासना करने से तुम मे भी कायरता आएगी। हम लोग क्षत्रिय है। हमारे गुरु वीर होने चाहिए, जो ढाल और तलवार से लैस होकर घोड़े पर घूमते हो।

रानी चेलना बोली—प्राणनाथ, आपका विचार भ्रमपूर्ण है । मेरे गुरु कायर नही, वीर है । मै कायर गुरु की चेली नहीं हूं । मेरे गुरु की वीरता के आगे आपके समान सौ वीर भी नही टिक सकते । आपके बड़े-से-बडे सेनापति भी काम के गुलाम हैं, परन्तु मेरे गुरु ने उस काम को भी पराजित कर दिया है । ससार के महान-से-महान वीरो पर भी विजय प्राप्त करने वाले काम को जीत लेना क्या साधारण वीरता है ? यह वीरता सर्वोत्तम वीरता है । जिसमे यह वीरता है, उसे आप कायर कैसे कह सकते हैं ?

श्रेणिक—ठीक है, किसी दिन इसका भी उत्तर दिया जायगा ।

रानी चेलना श्रेणिक का अभिप्राय समझ गई । उसने सोचा—राजा, गुरुजी की परीक्षा करेंगे । चलो, यह अच्छा ही है । परीक्षा का परिणाम अच्छा ही होगा और महाराज का झुकाव उस ओर अवश्य होगा ।

एक दिन राजा ने किसी सुन्दरी वेश्या को बुलाकर कहा—तू उस साधु के पास जा और किसी उपाय से उसे भ्रष्ट कर । मेरा यह काम पूरा कर देगी तो मुंह मागा इनाम पाएगी ।

वेश्या मुफ्त मे ही राजा का काम करने के लिए तैयार थी । तिस पर राजा ने इनाम और वह भी मुंह मागा देने का प्रलोभन दे दिया । फिर वह क्यो पीछे पैर रखती ।

वेश्या सिंगार सजकर और दूसरा कामोत्तेजक सामान लेकर रात्रि के समय साधु के स्थान पर पहुची । साधु ने स्त्री को देखते ही कहा—बहिन, रात्रि के समय हमारे स्थान पर स्त्रिया नही आ सकती । यह किसी गृहस्थ का घर नही है । यहा साधु टिके है ।

वेश्या बोली—आप ठीक कहते है । मैं विशेष प्रयोजन से आपके ही पास आई हू । मै आपको कष्ट देने नही, बल्कि आपका मनोरजन करने और आपको आनन्द देने के लिये ही आई हू ।

इस प्रकार कहती-कहती वेश्या साधु के स्थान मे घुस गई । साधु समझ गये कि इसका आशय दूषित है और यह मुझे भ्रष्ट करना चाहती है । यद्यपि मै अपने ब्रह्मचर्य व्रत पर दृढ रहूंगा, फिर भी जब यह बाहर निकलेगी और कहेगी कि मैने साधु को भ्रष्ट कर दिया है तो मेरी बात कौन सुनेगा ? इससे शासन की निन्दा होगी ।

इस प्रकार विचार कर मुनि ने अपनी लब्धि का प्रयोग किया । उन्होने अपना विकराल रूप दिखलाया कि वेश्या देखते ही बुरी तरह घबरा गई । उसने जमीन पर गिरकर मुनि से प्रार्थना की—दीनानाथ, क्षमा कीजिए । मुझे बचने दीजिए । मै निरपराध हूं । मै राजाजी के कहने से यहा आई हूं । मै अभी यहां से भाग जाती, पर विवश हू । बाहर ताला बन्द है । आप मुझ पर दया करे ।

उधर राजा श्रेणिक ने चेलना से कहा—तुम अपने गुरु की इतनी प्रशसा करती थी, अब उनका हाल तो देखो !

वे एक वेश्या को अपने घर मे लिये बैठे है !

रानी चेलना ने विस्मित होते हुए कहा—क्या आप सच कह रहे हैं ? मगर जव तक मैं अपनी आखो यह देख न लू, तब तक मान नही सकती । वह मुनि अगर दुराचारी होंगे तो मैं उन्हे गुरु नही मानूंगी । हम तो सत्य के उपासक है । आप जो कहते है, वह प्रत्यक्ष दिखलाइये ।

आखिर राजा और रानी साधु के स्थान पर पहुचे और राजा ने दरवाजा खोला । दरवाजा खुलते ही वेश्या ऐसी बाहर भागी जैसे पिंजरा खुलते ही पक्षी बाहर निकल भागता है । उसने निकलते ही राजा से कहा—आप मुझे और चाहे जो काम सौपे मगर साधु के पास जाने का काम अब न सौपिएगा । उन महात्मा के तप.तेज मे मैं भस्म ही हो गई होती, उन्ही की दयालुता के कारण प्राण बच गए ।

वेश्या की बात सुनकर रानी चेलना ने राजा से कहा—महाराज, यह वेश्या क्या कह रही है ? इसके कहने का अर्थ तो यही है कि आपने ही इसे यहा भेजा था । भले आपने इसे भेजा हो, मगर मैंने तो पहले ही कह दिया था कि मेरे गुरु को इन्द्राणी भी नही डिगा सकती । इस वेश्या के कथन पर विचार कीजिए ।

राजा श्रेणिक शर्मिन्दा हो गए । वे बोले—वेश्या की बातो का क्या ठिकाना ! अब इस बात को छोडो !

रानी बोली—ठीक है । आप भी इस बात को छोड़ दीजिए । जो होता है, अच्छा ही होता है । चलिए, उन महात्मा के पास तो चले ।

की है, पर मैंने ऐसा काम किया है कि दीवार पर चित्र भी दिखने लगें और जब चाहे तभी उन्हे मिटा भी सके। इनके चित्रों मे यह गुण नही है।

राजा का आदेश पाकर सुनन्द ने सामने का पर्दा हटा दिया। सामने की दीवार पर जो चित्र अंकित किये गये थे, वे सब बढिया पालिश की हुई इस दीवार पर प्रतिबिम्बित होकर दिखाई देने लगे। थोडी देर बाद उसने पर्दा डाल दिया तो दीवार चित्र-रहित स्वच्छ दिखलाई पड़ने लगी। राजा उसकी कुशलता देख बहुत प्रसन्न हुआ और उसे पारितोषिक दिया।

कहने का आशय यह है कि आप अपने हृदय पर ऐसा उत्तम पालिश कीजिये कि वह पूर्ण रूप से स्वच्छ हो जाय। उस पर संसार के बिम्ब भले ही पडे, परन्तु आत्मा से उनका स्पर्श न हो।

## १३ : चर्खा

चर्खा कातकर, सूत पैदा करके उसके कपड़े बनवाने मे आप पाप समझते हैं और मैनचेस्टर के कपडे पहनकर 'पवित्र हो गये' ऐसा आप मानते हैं। यह आपकी कैसी बुद्धि है कि आप हिंसा को उत्तम और अहिंसा को पाप समझते है।

पहले के जमाने मे बडे-बड़े धनाढ्य घरो की स्त्रिया चर्खा कातती थी। चर्खा सिर्फ पैसा पैदा करने की मशीन ही नही वरन् एकाग्रता प्राप्त करने का सरल साधन भी था। चर्खा विधवाओ के धर्म की रक्षा करने वाला और भूखो की भूख मिटाने वाला था। चर्खा आधुनिक काल का आविष्कार नही, पुरातन काल की स्मृति है। जैनशास्त्रो में भी इसका वर्णन आया है।

इस विषय मे एक चरित आया है। वह लम्बा है। अतएव उसका कुछ सार ही कहता हूं।

कुछ कुमारी बालिकाएं आखे मीचकर कोई खेल खेल रही थी। उन्होने मन्दिर में यह खेल किया था। उन्होनें आपस मे यह निश्चय किया था कि जिसके हाथ मे मन्दिर

राजा और रानी महात्मा के पास पहुचे । देखा, महात्मा दूसरे ही वेष मे थे । रानी ने कहा—देखिए, यह मेरे गुरु ही नही है मेरे गुरु का वेष ऐसा कहां होता है ? जैन मुनि को कभी भगवा वस्त्र पहने देखा भी है आपने ?

राजा चकित और लज्जित हुआ । उसने सोचा—रानी का कहना ठीक है मुझे धर्म का तत्त्व समझने का प्रयत्न करना चाहिए ।

उसी दिन श्रेणिक के अन्त करण मे तत्त्व की जिज्ञासा उत्पन्न हुई । धीरे-धीरे निष्पक्ष अवलोकन और मनन से उसके हृदय पर जैन-धर्म की गहरी छाप लग गई । अन्त मे राजा श्रेणिक भगवान महावीर का प्रधान भक्त बन गया ।

# १२ : हृदय की स्वच्छता

सुनन्द नामक एक चित्रकार था। किसी राजा ने बहुत से चित्रकारों को अपने महल मे चित्रकारी के लिए बुलाया। सुनन्द भी वहां आया था। राजा ने सर्वश्रेष्ठ चित्रकारी करने वाले को विशिष्ट पारितोषिक प्रदान करने की घोषणा की। सभी चित्रकार पारितोषिक पाने के लिए लालायित हुये। वे लोग पर्दा लगा-लगाकर चित्रकारी करने लगे। एक दीवार सुनन्द को भी चित्रकारी के लिए मिल गई थी। सब चित्रकार अपने-अपने काम मे लग गये। सुनन्द ने बहुत सोच-विचारकर भीत पर बढिया पालिश करने की ठानी। राजा नियत समय पर चित्रकारी देखने आया। सब चित्रकार अपना कार्य समाप्त कर चुके थे, पर सुनन्द ने अभी तक पालिश ही की थी। राजा सब की चित्रकारी देखता हुआ जब सुनन्द वाली दीवार की ओर आया तो उसे उस पर कुछ भी नजर न आया। राजा ने कहा—तू अभी पालिश ही कर पाया है !

सुनन्द नम्रतापूर्वक बोला—अन्नदाता ! सब ने एक काम किया है, मैंने दो काम किये हैं।

राजा—कैसे दो काम ?

सुनन्द—पृथ्वीनाथ ! इन लोगो ने सिर्फ चित्रकारी

की है, पर मैंने ऐसा काम किया है कि दीवार पर चित्र भी दिखने लगे और जब चाहे तभी उन्हे मिटा भी सके। इनके चित्रों मे यह गुण नहीं है।

राजा का आदेश पाकर सुनन्द ने सामने का पर्दा हटा दिया। सामने की दीवार पर जो चित्र अकित किये गये थे, वे सब बढिया पालिश की हुई इस दीवार पर प्रतिबिम्बित होकर दिखाई देने लगे। थोड़ी देर बाद उसने पर्दा डाल दिया तो दीवार चित्र-रहित स्वच्छ दिखलाई पड़ने लगी। राजा उसकी कुशलता देख बहुत प्रसन्न हुआ और उसे पारितोषिक दिया।

कहने का आशय यह है कि आप अपने हृदय पर ऐसा उत्तम पालिश कीजिये कि वह पूर्ण रूप से स्वच्छ हो जाय। उस पर ससार के बिम्ब भले ही पडे, परन्तु आत्मा से उनका स्पर्श न हो।

# १३ : चर्खा

चर्खा कातकर, सूत पैदा करके उसके कपड़े बनवाने मे आप पाप समझते हैं और मैनचेस्टर के कपडे पहनकर 'पवित्र हो गये' ऐसा आप मानते है। यह आपकी कैसी बुद्धि है कि आप हिसा को उत्तम और अहिसा को पाप समझते है।

पहले के जमाने मे बड़े-बडे धनाढ्य घरो की स्त्रिया चर्खा कातती थी। चर्खा सिर्फ पैसा पैदा करने की मशीन ही नही वरन् एकाग्रता प्राप्त करने का सरल साधन भी था। चर्खा विधवाओ के धर्म की रक्षा करने वाला और भूखो की भूख मिटाने वाला था। चर्खा आधुनिक काल का आविष्कार नही, पुरातन काल की स्मृति है। जैनशास्त्रो मे भी इसका वर्णन आया है।

इस विषय मे एक चरित आया है। वह लम्बा है। अतएव उसका कुछ सार ही कहता हू।

कुछ कुमारी बालिकाएं आंखे मीचकर कोई खेल खेल रही थी। उन्होने मन्दिर मे यह खेल किया था। उन्होने आपस मे यह निश्चय किया था कि जिसके हाथ मे मन्दिर

का जो खम्भा आ जाय, वही उसका पति माना जाय। बालिकाएं खेलने लगी। संयोगवश आर्द्रकुमार नामक एक मुनि वहां खडे थे और वे एक बालिका के हाथों मे आ गये। आंखे खोलने पर बालिका चौकी। मुनि चुप-चाप आगे जानें लगे। तब बालिका बोली—नाथ, आप कहा पधारते है?

मुनि ने उत्तर दिया—बाई, हम अपने ठिकाने जा रहे है।

बालिका—मैंने आपको पति-रूप मे स्वीकार कर लिया है। मैं भी आपके ही साथ चलूंगी।

मुनि—हम मुनि हैं। पति स्वीकार करना हो तो किसी संसारी को स्वीकार करो।

बालिका—क्या कुलीन कन्या कभी दूसरा पति स्वी-कार करती है?

मुनि मौन हो रहे। बालिका उनके पीछे-पीछे लगी। जहां मुनि जाते, वह भी वही उनके पीछे लगी रहती। बालिका की यह दृढता और प्रेम देखकर आखिर मुनि पिघले और बोले—देखो, मै तुम्हारे साथ विवाह करता हूं, मगर मै तुम्हे जीवन भर नही निभा सकता। सिर्फ बारह वर्ष तक मै तुम्हारे साथ रहूंगा। अगर यह बात स्वीकार हो तो ठीक, अन्यथा तुम दूसरा मार्ग खोज लो।

वालिका—नही, नाथ! आप जैसा कहेगे, वही करूंगी। आप कितने ही दिन मेरे साथ रहे, पर विवाह तो अन्य पुरुष के साथ मेरा नहीं होगा।

दोनो का विवाह हो गया । देवों ने इस अवसर पर बारह करोड सोनैया (स्वर्ण-मोहर) बरसाये । कुछ समय के बाद एक पुत्र भी उत्पन्न हो गया । दिन जाते क्या देर लगती है ? बारहवा वर्ष समाप्त होने को आया । अब उस लडकी को जिसका नाम श्रीमती था, खयाल हुआ कि पति-देव जाने वाले हैं । मैं भी उन्हे रोकना नही चाहती । उन्होने मेरे लिए जो अद्भुत त्याग किया है, वही मेरे लिये सब है । मगर उनके जाने पर मैं अनाथ हो जाऊ गी । अब मेरी रक्षा कौन करेगा ?

श्रीमती बाई गरीब नही थी । पास मे विपुल धन था । पुत्र था । रहने के लिये मकान की कमी नही थी । पर वह सोचती थी—अभी मै यौवन अवस्था मे हू । किसके सहारे अपना समय व्यतीत करू गी । मेरे शील की रक्षा कैसे होगी ?

उसे प्रतिज्ञा थी कि मेरे पास जो धन है, उसमे से एक भी पाई अपने काम मे नही लू गी ।

श्रीमती जब विचार मे डूबी हुई थी तो उसे अचानक कुछ स्मरण आया । मानो डूबते को सहारा मिल गया । उसने कहा – वाह ! स्वामी वाह ! खूब कृपा की । बस, अब वह साधन मिल गया, जिसके सहारे अपना यौवनकाल शान्ति से व्यतीत करूंगी ।

आप समझे, श्रीमती को क्या साधन मिल गया था ? चर्खा !

वह सोचती—मुझे ज्यादा खाना होगा तो ज्यादा कातूंगी, मामूली खाना होगा तो मामूली कातूंगी। बस, अब मैं सनाथ हुई। अब हर्षपूर्वक पतिदेव को विदा कर सकूंगी।

यह कथा बहुत लम्बी है, तात्पर्य यह है कि चर्खा प्राप्त कर श्रीमती ने बडी ही शांति के साथ अपना शेष जीवन व्यतीत किया।

# १४ : शांतिनाथ

उपा प्रात काल लालिमा फैलने और उजाला होने को कहते है। भगवान शान्तिनाथ का जन्मकाल शान्तिप्रसार का उषाकाल था। इस उषाकाल के दर्शन कब और कैसे हुए, इत्यादि बाते समझाने के लिए शान्तिनाथ भगवान का जन्म चरित्र सक्षेप में बतला देना आवश्यक है। जिस प्रकार सूर्योदय की उषा से सूर्य का सम्बन्ध है, उसी प्रकार भगवान शान्तिनाथ के उपाकाल से उनका सम्बन्ध है। अतएव उसे जान लेना आवश्यक है।

हस्तिनापुर मे महाराज अश्वसेन और महारानी अचला का अखड राज्य था। हस्तिनापुर नगर अधिकतर राजधानी रहा है। प्राचीनकाल मे उसकी बहुत प्रसिद्धि थी। आजकल हस्तिनापुर का स्थान देहली ने ले लिया है। ॐ

भगवान शान्तिनाथ सर्वार्थसिद्ध विमान से च्युत होकर महारानी अचला के गर्भ मे आये। गर्भ मे आते

---

ॐहस्तिनापुर के परिचय के लिये देखिए, किरण १७ (पाडव चरित) पृ० ६।

समय महारानी अचला ने जो दिव्य स्वप्न देखे, वे सब उषाकाल की सूचना देने वाले थे, मानो स्वप्न मे दिखाई देने वाले पदार्थों मे कोई भी स्वार्थी नही है। हाथी, वृषभ, सिह और पुष्पमाला कहते है कि आप हमे अपने मे स्थान दीजिए । चन्द्रमा और सूर्य निवेदन कर रहे है कि हमारी शान्ति और तेज, हे प्रभो ! तुम्हारे मे ही है ।

## उग्गए विमले भाणू ।

हे प्रभो ! हमारे प्रकाश से अंधकार नहीं मिटता है अतएव आप ही प्रकाश कीजिए ।

उधर फहराती हुई ध्वजा कहती है— मैं तीन लोक की विजयपताका हू । मुझे अपनाइए ! मंगलकलश कहता है मेरा नाम तभी सार्थक है जब आप मुझे ग्रहण कर लें । मानसरोवर कहता है—यह मंगलकलश मेरे से ही बना है । मैं और किसके पास जाऊं? मैं संसार के मानस का प्रतिनिधि होकर आया हू और प्रार्थना करता हूं कि तू सब के मानस मे प्रवेश कर और उसे उज्ज्वल बना । क्षीरसागर कहता है यह सरो-वर तो छोटा-सा है । लेकिन अगर आप मुझे न धारण करेंगे तो मै कहा रहूगा ? प्रभो ! इस ससार को अमृतमय कर दो । ससार मुझसे अतृप्त है, अतः आप उसे तृप्त कीजिए ।

इस प्रकार उषाकाल की सूचना देकर भगवान शाति-नाथ सर्वार्थसिद्ध विमान से महारानी अचला के गर्भ मे आये। सब देवी-देवताओ ने भगवान की प्रार्थना की—प्रभो ! सब

लोग अपने-अपने पक्ष मे अड़े हुए है । आप संसार का उद्धार कीजिए । हमारे सिर पर भी आशीर्वाद का हाथ फेरिये ।

लोकोत्तर स्वप्नो ने मानो अचला महारानी को बधाई दी । उसके बाद अचला महारानी के गर्भ मे भगवान का आगमन हुआ । क्रमश गर्भ की वृद्धि होने लगी ।

जिन दिनों भगवान शान्तिनाथ गर्भ मे थे, उन्ही दिनो महाराज अश्वसेन के राज्य मे महामारी का रोग फैल गया ।

प्रश्न हो सकता है कि जब भगवान गर्भ मे आये तो रोग क्यो फैला ? मगर वह रोग नही, उषाकाल की महिमा को प्रकट करने वाला अन्धकार था । जैसे उषाकाल के पहले रात्रि होती है, और उस रात्रि से ही उषाकाल की महिमा जानी जाती है, उसी प्रकार वह महामारी भगवान शान्तिनाथ के उषाकाल के पहले की रात्रि थी । उसका निवारण करने के कारण ही भगवान 'शातिनाथ' पद को प्राप्त हुए । यद्यपि भगवान गर्भ मे आ चुके थे और उस समय रोग फैलना नही चाहिए था, फिर भी रोग के फैलने के बाद भगवान के निमित्त से उसकी शाति होने के कारण भगवान की महिमा का प्रकाश हुआ । इससे भगवान के आने की सूचना और भगवान के प्रताप का परिचय उनके माता-पिता को मिल गया ।

राज्य मे मरी रोग फैलने की सूचना महाराज को मिली । महाराज ने यह जानकर कि मरी रोग के कारण लोग मर रहे हैं, रोग की उपशाति के अनेक उपाय किये

मे भाग नही लेना चाहती, वह आदर्श पत्नी नही हो सकती। ऐसी स्त्री पापिनी है।

अचला देवी ने जो विचार किया क्या वह स्त्री का धर्म नही है ? अवश्य। किन्तु आजकल तो वचपन मे ही लड़कियो को उलटी शिक्षा दी जाती है। कन्या को ऐसा विनयशील होना आवश्यक है, जिससे गृहस्थावस्था मे वह अपने परिवार को शान्ति दे सके, स्वयं शान्ति प्राप्त कर सके और कुटुम्व-जीवन पूरी तरह आनन्दमय हो सके।

वीकानेर में लडकियो को लडके के वेप मे रखने की प्रथा देखी जाती है। मेरी समझ मे ही नही आता कि ऐसा करने से क्या लाभ है ? पुरुप की पोशाक पहिनने से कोई स्त्री पुरुष तो हो ही नही सकती। सभव है, कन्या के माता-पिता उसे लड़के की पोशाक पहनाकर सोचते हो—लडके की पोशाक पहना कर हम कन्या की लकडा होने की भावना पूरी कर रहे हैं। मगर ऐसा करने से क्या हानि होती है, इस वात पर उन्होने विचार नही किया। लडकी को लड़का बनाने का विचार करना प्रकृति से युद्ध करना है। प्रकृति से युद्ध करके कोई विजय नही पा सकता। फल यह होता है कि ऐसा करने से लड़की के संस्कार विगड जाते हैं। कोई-कोई वचपन के मूल्य को नही समझते। वे वाल्यावस्था को निरर्थक ही मानते है। पर वाल्यावस्था मे ग्रहण किये हुए संस्कारो के आधार पर ही वालक के सम्पूर्ण जीवन का निर्माण होता है। जिसका वालकपन विगड गया, उसका सारा जीवन विगड़ गया और जिसका वालकपन सुघर गया, उसका सारा जीवन

सुधर गया। किसी कवि ने कहा है—

**यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।**

कच्चे घड़े पर बेलबूटे बना दिये जाते हैं, वे घड़े के पकने पर भी नही मिटते। लेकिन पक्के घड़े पर बनाये बेलबूटे कायम नही रहते। यही बात बाल्यावस्था के विषय मे है। अतएव जीवननिर्माण की दृष्टि से बाल्यावस्था का मूल्य बहुत अधिक है। माता-पिता को यह बात दिल में बिठा लेनी चाहिए कि बालक के संस्कार, चाहे वे भले हों या बुरे हो, जीवन भर जाने वाले नही है। अतएव उन्हें बुरे सस्कारो से बचाकर अच्छे सस्कारो से सुसस्कृत करना चाहिए। अगर बालको को प्रारभ से ही खराब बोलचाल और खान-पान से बचाते रहो तो आगे चलकर वे इतने उत्तम बनेंगे कि आपका गृहस्थ जीवन सुखमय, शांतिमय और सतोषमय बन जायगा।

कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने एक निबन्ध मे लिखा है कि पाच वर्ष तक के बालक को सिला हुआ कपड़ा पहनाना उसकी वृद्धि मे बाधा डालना है। खुले शरीर मे जो काति आ सकती है, वह सिले कपड़ो से बन्द किये हुए शरीर मे नही आ सकती। चुस्त कपडो से बालक के शरीर का विकास भी रुक जाता है। ऐसी स्थिति मे यह समझना कठिन नही है कि गहनो से भी बालक का विकास अवरुद्ध हो जाता है। जो बालक 'सोना' शब्द का उच्चारण भी नही कर सकता, न सोने को पहिचानता ही है, उसे सोना पहनाने से क्या लाभ है? सोना बालक के

मगर शाति न हुई ।

यह मरी लोगो की कसौटी थी। इसी से पता चलता था कि लोग मार्ग पर है या मार्ग भूले हुए है । यह मरी शाति से पहले होने वाली क्राति थी ।

उपाय करने पर भी शान्ति न होने के कारण महाराज वडे दु खी हुए । वह सोचने लगे—जिस प्रजा का मैंने पुत्र के समान पालन किया है, जिसे अज्ञान से सज्ञान, निर्धन से धनवान और निरुद्योगी से उघोगवान बनाया है, वह मेरी प्रजा असमय मे ही मर रही है ! मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ हो रहा है ! मेरे राजा रहते प्रजा को कष्ट होना मेरे पाप का कारण है । पहले के राजा, राज्य मे दुष्काल पड़ना, रोग फैलना, प्रजा का दु खी होना आदि अपने पाप का ही फल समझते थे ।

रामायण मे लिखा है कि एक ब्राह्मण का लडका बचपन मे ही मर गया । ब्राह्मण उस लड़के को लेकर रामचन्द्रजी के पास गया और बोला—आपने क्या पाप किया है कि मेरा लडका मर गया ?

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि पहले के राजा प्रजा के कष्ट का कारण अपना ही पाप समझते थे। इसी भावना के अनुसार महाराज अश्वसेन मरी फैलने को अपना ही दोप मानकर दु खी हुए। उन्होने एकान्त मे जाकर निश्चय किया कि जब तक प्रजा का दु ख दूर न होगा, मैं अन्न–जल ग्रहण नही करूंगा ।

सुदृढ निश्चय मे बडा बल होता है । भक्त तुकराम

ने कहा है—

**निश्चयाचा बल तुका म्हणे तो च फल ।**

निश्चय के बिना फल की प्राप्ति नही होती ।

इस प्रकार निश्चय करके महाराज अश्वसेन ध्यान लगाकर बैठ गये । भोजन का समय होने पर अचला ने दासी को भेजा कि वह महाराज को भोजन करने के लिये बुला लावे । दासी गई किन्तु महाराज को ध्यानमुद्रा मे बैठा देख कर वह सहम गई । भला उसका साहस कैसे हो सकता था कि वह महाराज के ध्यान को भग करने का प्रयत्न करे । वह धीमे-धीमे स्वर से पुकार कर लौट गई । उसके वाद दूसरी दासी आई, फिर तीसरी आई, मगर ध्यान भग करने का किसी को साहस न हुआ । महारानी अचला बार—बार दासियो को भेजने के अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करके कहने लगी—स्वामी को बुलाने के लिए दासियो का भेजना उचित नही था, स्वय मुझे जाना चाहिए था । यद्यपि मैंने पति से पहले भोजन करने की भूल नही की है, लेकिन उन्हे बुलाने न जाकर दासियो को भेजने की भूल अवश्य की है ।

समय अधिक हो जाने के कारण भोजन ठण्डा अवश्य हो गया था । इस कारण दासियो को दूसरा भोजन बनाने की आज्ञा देकर महारानी अचला स्वय महाराज अश्वसेन के समीप गई ।

महारानी सोच रही थी—पत्नी, पति की अर्द्धांगिनी है । उसे पति की चिन्ता का भी भाग बटाना चाहिए । जो स्त्री पति की प्रसन्नता मे भाग लेना चाहती है और चिन्ता

मे भाग नही लेना चाहती, वह आदर्श पत्नी नही हो सकती। ऐसी स्त्री पापिनी है।

अचला देवी ने जो विचार किया क्या वह स्त्री का धर्म नही है? अवश्य। किन्तु आजकल तो वचपन मे ही लड़कियो को उलटी शिक्षा दी जाती है। कन्या को ऐसा विनयशील होना आवश्यक है, जिससे गृहस्थावस्था मे वह अपने परिवार को शान्ति दे सके, स्वय शान्ति प्राप्त कर सके और कुटुम्व-जीवन पूरी तरह आनन्दमय हो सके।

वीकानेर मे लडकियो को लडके के वेप मे रखने की प्रथा देखी जाती है। मेरी समझ मे ही नही आता कि ऐसा करने से क्या लाभ है? पुरुष की पोशाक पहिनने से कोई स्त्री पुरुप तो हो ही नही सकती। सभव है, कन्या के माता-पिता उसे लडके की पोशाक पहनाकर सोचते हो—लडके की पोशाक पहना कर हम कन्या की लकडा होने की भावना पूरी कर रहे हैं। मगर ऐसा करने से क्या हानि होती है, इस वात पर उन्होने विचार नही किया। लडकी को लड़का वनाने का विचार करना प्रकृति से युद्ध करना है। प्रकृति से युद्ध करके कोई विजय नही पा सकता। फल यह होता है कि ऐसा करने से लडकी के सस्कार विगड जाते हैं। कोई-कोई वचपन के मूल्य को नही समझते। वे वाल्यावस्था को निरर्थक ही मानते है। पर वाल्यावस्था मे ग्रहण किये हुए संस्कारो के आधार पर ही वालक के सम्पूर्ण जीवन का निर्माण होता है। जिसका वालकपन विगड गया, उसका सारा जीवन बिगड़ गया और जिसका वालकपन सुधर गया, उसका सारा जीवन

सुधर गया। किसी कवि ने कहा है—

**यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।**

कच्चे घड़े पर बेलबूटे बना दिये जाते है, वे घड़े के पकने पर भी नही मिटते। लेकिन पक्के घड़े पर बनाये बेलबूटे कायम नही रहते। यही बात बाल्यावस्था के विषय मे है। अतएव जीवननिर्माण की दृष्टि से बाल्यावस्था का मूल्य बहुत अधिक है। माता-पिता को यह बात दिल में बिठा लेनी चाहिए कि बालक के संस्कार, चाहे वे भले हों या बुरे हो, जीवन भर जाने वाले नही है। अतएव उन्हें बुरे संस्कारो से बचाकर अच्छे सस्कारो से सुसस्कृत करना चाहिए। अगर बालको को प्रारभ से ही खराब बोलचाल और खान-पान से बचाते रहो तो आगे चलकर वे इतने उत्तम बनेगे कि आपका गृहस्थ जीवन सुखमय, शातिमय और सतोषमय बन जायगा।

कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने एक निबन्ध मे लिखा है कि पांच वर्ष तक के बालक को सिला हुआ कपड़ा पहनाना उसकी वृद्धि मे बाधा डालना है। खुले शरीर मे जो काति आ सकती है, वह सिले कपड़ो से बन्द किये हुए शरीर मे नही आ सकती। चुस्त कपडो से बालक के शरीर का विकास भी रुक जाता है। ऐसी स्थिति मे यह समझना कठिन नही है कि गहनो से भी बालक का विकास अवरुद्ध हो जाता है। जो बालक 'सोना' शब्द का उच्चारण भी नही कर सकता, न सोने को पहिचानता ही है, उसे सोना पहनाने से क्या लाभ है? सोना बालक के

प्राणो का ग्राहक भले ही वन सकता है, लाभ तो उससे कुछ भी दिखाई नही देता। बालक को जब सिला कपड़ा पहनाया जाता है तो वह रोने लगता है। वह रोकर मानो कहता है कि मुझे इस बन्धन मे मत डालो। मगर कौन बालको की पुकार सुनता है ?

जरा विचार कीजिये कि आप लोग अपने बालकों को नाना प्रकार के आभूषण और गोटा किनारी के कपडे पहिनाये विना सतोष नही मानते, मगर अग्रेजो के कितने लडको को आपने गहने पहिने देखा है ?

आप बालको को बचपन से ही ऐसी विकारयुक्त रुचि का बना देते है कि आगे चलकर उनकी रुचि का सुधरना कठिन हो जाता है। बडे होने पर कदाचित् उन्हे गहने न मिले तो वे दु:ख का अनुभव करते है। उनकी दृष्टि ही विकृत हो जाती है। उनका जीवन दु:खमय बन जाता है। माता-पिता को चाहिए कि वे बालक को सादगी और स्व-च्छता का सबक सिखावें, जिससे उनका अगला जीवन सुख और सतोष के साथ व्यतीत हो सके।

बहुत से लोग लड़को पर अच्छा भाव रखते है परन्तु लड़किया उन्हे आफत की पुडिया मालूम होती है। लड़का उत्पन्न होने पर वे प्रसन्न होते है और लड़की के जन्म पर मातम-सा मनाते है—उदास हो जाते हैं। फिर उसके पालन-पोषण मे भी ऐसी लापरवाही की जाती है कि लडकी अपने भाग्य से ही बड़ी हो पाती है। लडकी बडी हो जाती है तो उसके शिक्षण का वैसा प्रबन्ध नही किया जाता, जैसा लड़के का ! लेकिन उसे लड़के के वेष मे रखा जाता है,

जिससे उसका नम्रता का गुण कम हो जाता है।

जहा इस प्रकार का पक्षपात हो, समझना चाहिए कि वहा भगवान शांतिनाथ को समझने का प्रयत्न ही नही किया गया है। इसलिए मैं कहता हू कि पक्षपात को दूर करो। यह पक्षपात गृहस्थ-जीवन का घोर अभिशाप है। लडकियों के विरुद्ध किया जाने वाला ऐसा पक्षपात अत्यन्त भयकर परिणाम पैदा करने वाला है। किसी नवयुवती कन्या को बूढे के साथ व्याह देना क्या कम अत्याचार है? पैसे के लोभ मे आकर अपनी कन्या के साथ ऐसा निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने वाले लोग किस प्रकार भगवान शातिनाथ की उपासना कर सकते है? अपनी ही सन्तान को जो लोग अशाति की आग मे झोकते नही हिचकते, उन्हे किस प्रकार शाति मिल सकती है? अगर आप सच्ची शाति चाहते है तो अपने समग्र जीवन-क्रम का विचार करे और उसमे अशाति पैदा करने वाले जितने अ श हैं, उन्हे हटा दे। इससे आपका परिवार, समाज और देश शाति प्राप्त करेगा। ऐसा करने पर ही भगवान शातिनाथ की आराधना हो सकेगी।

कन्या के वदले पैसे लेने वाले का कभी भला नही होता। मै अपनी आखो देखी बात कहता हूं। एक आदमी के पाच लडकिया थी और एक लडका था। लडकियो के उसने मन-चाहे रुपये लिये। यही नही वरन् किसी–किसी लड़की की सगाई एक जगह करके छोड दी और फिर दूसरी जगह की। इतना करने पर भी उसकी दरिद्रता दूर नही हुई और न उसके लडके का ही विवाह हुआ। उसके वश का नाश हो गया।

मतलव यह है कि प्रकृति के नियमो को तोड़कर रुपये के लोभ मे पडकर नवयुवती कन्या को वूढे के हवाले कर देना या अयोग्य धनवान को लडकी देकर योग्य धन-हीन को वचित रखना, योग्य नही है। भगवान ने तो दासी वेचने को भी वडा पाप कहा है, फिर कन्या को वेच देना कितना वडा पाप होगा ?

महारानी अचला को वाल्यावस्था से ही सुन्दर संस्कार मिले थे। वह अपने पत्नीधर्म को भली-भाति समझती थी। इस कारण वह भोजन किये विना ही महाराज अश्व-सेन के समीप पहुची। वहा जाकर देखा कि महाराज अश्व-सेन गंभीर मुद्रा धारण करके ध्यान मे लीन हैं। महारानी ने हाथ जोडकर धीमे और मधुर किन्तु गभीर स्वर में महा-राज का ध्यान भग करने का प्रयत्न किया। महारानी का गम्भीर स्वर सुनकर महाराज का ध्यान टूटा। उन्होंने आखे खोलकर देखा तो सामने महारानी हाथ जोडे खड़ी नजर आई। महाराज ने इस प्रकार खड़ी रहने और ध्यान भग करने का कारण पूछा। महारानी ने कहा—आप आज अभी तक भोजन करने नही पधारे, इसका क्या कारण है ?

महाराज सोचने लगे—जिस उपद्रव को मैं दूर नही कर सकता, उसे महारानी स्त्री होकर कैसे दूर कर सकती है ? फिर अपनी चिन्ता का कारण कहकर इन्हे दुःखी करने से क्या लाभ है ? इस प्रकार विचार कर वह चुप ही रहे। कुछ न वोले।

पति को मौन देख महारानी ने कहा—जान पडता

है, आप किसी ऐसी चिन्ता मे डूबे है, जिसे सुनने के लिये मैं अयोग्य हू । सभवतः इसी कारण आप बात छिपा रहे हैं । यदि मेरा अनुमान सत्य है तो आज्ञा दीजिए कि मैं यहा से टल जाऊं ! ऐसा न हो तो कृपया अपनी चिन्ता का कारण बतलाइए । आपकी पत्नी होने के कारण आपके हर्ष-शोक में समान रूप से भाग लेना मेरा कर्त्तव्य है ।

महाराज अश्वसेन ने कहा— मेरे पास ऐसी कोई चीज नही है, जो तुमसे छिपाने योग्य हो ! मैं ऐसा पति नही कि अपनी पत्नी से किसी प्रकार का दुराव रखू । मगर मैं ऐसा सोचता हू कि मेरी चिन्ता का कारण सुन लेने से मेरी चिन्ता तो दूर होगी नही, तुम्हे भी चिन्ता हो जायगी । इससे क्या लाभ होगा ?

महारानी—अगर बात कहने से दु.ख नही मिटेगा तो उदास होने से भी नही मिटेगा । इस समय सारा दु ख आप उठा रहे हैं, लेकिन जब आप, अपनी इस अर्द्धांगिनी को दु ख का कारण कह देगे तो आपका आधा दु ख कम हो जायगा ।

महाराज—तुम्हारी इच्छा है तो सुन लो । इस समय सारी प्रजा महामारी की बीमारी से पीडित है । मुझसे ही कोई अपराध बन गया है, जिसके कारण प्रजा को कष्ट भुगतान पड रहा है । ऐसा न होता तो मेरे सामने प्रजा दु खी क्यो होती ?

महारानी—जिस पाप के कारण प्रजा दु ख पा रही

है, वह आपका ही नही है, मेरा भी है ।

महारानी की यह बात सुनकर महाराज को आश्चर्य हुआ । फिर उन्होने कुछ सोचकर कहा—ठीक है । आप प्रजा की माता है । आपका ऐसा सोचना ठीक ही है । मगर विचारणीय बात तो यह है कि वह दु ख किस प्रकार दूर किया जाय ?

महारानी—पहले आप भोजन कर लीजिए । कोई-न-कोई उपाय निकलेगा ही ।

महाराज—मैं प्रतिज्ञा कर चुका हू कि जब तक प्रजा का दु.ख दूर न होगा, मै अन्न-जल ग्रहण नही करूंगा ।

महारानी—जिस नरेश मे इतनी दृढता है, जो प्रजा-हित के लिए आत्मबलिदान करने को उद्यत है, उसकी प्रजा कदापि दु.खी नही रह सकती । लेकिन जब तक आप भोजन नही कर लेते, मै भी भोजन नही कर सकती ।

महाराज—तुम अगर स्वतन्त्र होती और भोजन न करती, तब तो कोई बात ही नही थी । लेकिन तुम गर्भ-वती हो । तुम्हारे भूखे रहने से गर्भ को भी भूखा रहना होगा और यह अत्यन्त ही अनुचित होगा ।

गर्भ की याद आते ही अचला महारानी ने कहा—नाथ ! अब मैं महामारी के मिटाने का उपाय समझ गई । यह महामारी उषा के पूर्व का अन्धकार है। मैं इसे मिटाने का उपाय करती हूं ।

महारानी अचला महल के ऊपर चढ गई और अमृत-दृष्टि से चारो ओर देखकर कहने लगी–प्रभो ! यदि यह महामारी शान्त न हुई तो पति जीवित नही रहेगे । पति के जीवित न रहने पर मैं भी जीवित नही रह सकूगी और इस प्रकार यह गर्भ भी नष्ट हो जायगा । इसलिए हे महामारी ! मेरे पति के लिए, मेरे लिए और इस गर्भ के लिए इस राज्य को शीघ्र छोड दो ।

उषा के आगे अंधकार कैसे ठहर सकता है ? महारानी के चारों ओर देखते ही महामारी हट गई । उसके बाद महाराज अश्वसेन को सूचना मिली कि राज्य में शांति हो गई है । महाराज आश्चर्य चकित रह गए । वे महारानी के महल मे आये । मालूम हुआ कि वे महल के ऊपर है । महाराज वही पहुचे । उन्होने देखा कि अचला महारानी अचल ध्यान मे खडी हैं, चारो ओर अपनी दिव्य दृष्टि फिराती हैं, किन्तु मन को नही फिरने देती ।

महाराज अश्वसेन ने थोड़ी देर यह दृश्य देखा । उसके बाद स्नेह की गम्भीरता के साथ कहा— देवी, शान्त होओ ।

पति को आया जान महारानी ने उनका सत्कार किया । महाराज ने अतिशय सतोष और प्रेम के साथ कहा—समझ मे नही आया कि तुम रानी हो या देवी ? तुम्हारी जितनी प्रशसा की जाय थोडी है । तुम्हारे होने से ही मेरा बड़प्पन है । तुम्हारी मौजूदगी से ही मेरा कल्याण–मंगल हुआ । तुमने देश मे शान्ति का प्रसार करके प्रजा के

और मेरे प्राणो की रक्षा की है ।

पति के मुख से अपनी अलकारमय प्रशंसा सुनकर रानी कुछ लज्जित हुई । फिर रानी ने कहा—नाथ ! ये अलकार मुझे शोभा नही देते । ये इतने भारी है कि मैं इनका बोझ नही उठा सकती । मुझमे इतनी शक्ति कहा हैं, जितनी आप कह रहे हैं ? थोडी-सी शक्ति हो भी तो वह आपकी ही शक्ति है । कांच की हाडी मे दीपक रखने पर जो प्रकाश होता है वह कांच की हाडी का नही, दीपक का ही है । इसलिए आपने प्रशसा के जो अलकार मुझे प्रदान किये है, उन्हे आभार के साथ मैं आपको ही समर्पित करती हू । आप ही इनके योग्य है । आप ही इन्हे धारण कीजिए ।

महाराज—रानी, यह भी तुम्हारा एक गुण है कि तुम्हे अपनी शक्ति की खबर ही नही । वास्तव मे जो अपनी शक्ति का घमण्ड नही करता, वही शक्तिमान होता है । जो शक्ति का अभिमान करता है, उसमे शक्ति रहती ही नही । वड़े-बडे ज्ञानी, ध्यानी और वीरो की यही आदत होती है कि वे अपनी शक्ति की खबर भी नही रखते । मैंने तुम्हे जो अलकार दिये हैं उन्हे तुम मेरे लिये लौटा रही हो, किन्तु पुरुष होने के कारण मैं उन्हे पहिन नही सकता । साथ ही मुझे ख्याल आता है कि वह शक्ति न तुम्हारी है, न हमारी है । हमारी और तुम्हारी भावना पूरी करने वाले त्रिलोकीनाथ का ही यह प्रताप है । वह नाथ जन्म धारण करके सारे संसार को सनाथ करेगा । आज के इस चमत्कार को देखते हुए, इन अलकारो को गर्भस्थ प्रभु के लिए सुरक्षित

रहने दो । जन्म होने पर इनका 'शांतिनाथ' नाम रखेगे । 'शांतिनाथ' नाम एक सिद्ध मन्त्र होगा, जिसे सारा संसार जपेगा और शांति-लाभ करेगा । देवी तुम कृतार्थ हो कि ससार को शाति देने वाले शातिनाथ तुम्हारे पुत्र होगे ।

रानी—नाथ, आपने यथार्थ कहा । वास्तव मे बात यही है । अपनी शक्ति नही, उसी की शक्ति है । उसी का प्रताप है, जिसे मैने गर्भ मे धारण किया है ।

प्रार्थना मे कहा गया है—

**अश्वसेन नृप अचला पटरानी,**
**तस सुत कुलसिंगार हो सुभागी ।**
**जन्मत शांति थई निज देश में,**
**मिरगी मार निवार हो सुभागी ।**

इस प्रकार शातिनाथ भगवान रूपी सूर्य के जन्म धारण करने से पहले होने वाली उषा का चमत्कार आपने देख लिया । अब शातिनाथ—सूर्य के उदय होने का वृतान्त्त कहना है मगर समय कम होने के कारण थोड़े ही शब्दो मे कहता हू ।

शातिनाथ भगवान को गर्भ मे रहने या जन्म धारण करने के कारण आप वन्दना नही करते है । वे इस कारण वन्दनीय है कि उन्होंने दीक्षा धारण करके, केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त मे मुक्ति प्राप्त की ।

भगवान शातिनाथ ने लम्बे काल तक ससार मे रह-कर अद्वितीय काम कर दिखाया, उन्होने स्वय राज्य करके राज्य करने का आदर्श जनता के समक्ष उपस्थित किया। राज्य करके उन्होने अहंकार नही सिखलाया। उनमे ऐसी-ऐसी अलौकिक शक्तिया थी कि जिनकी कल्पना भी हमारे हृदय मे आश्चर्य उत्पन्न करती है। लेकिन उन्होने ऐसी शक्तियो का कभी प्रयोग नही किया। माता अपने बालकों को कामधेनु का दूध पिलाकर तृप्त कर सकती हो तो भी उसे अपना दूध पिलाने मे जिस सुख का अनुभव होता है, कामधेनु का दूध पिलाने मे वह सुख कहा ? इसी प्रकार शातिनाथ शक्ति का प्रयोग कर सकते थे, परन्तु उन्हे शान्ति और प्रेम से काम लेने मे ही आनन्द आता था।

शातिनाथ भगवान ने ससार को क्या-क्या सिखाया और किस प्रकार महारम्भ से निकालकर अल्पारम्भ मे लाये, यह कथा लम्बी है। अतएव इतनी सूचना करके ही सन्तोष करता हू।

प्रभो! आप जन्म, जरा, मरण इन तीनो बातो मे ही उलझे रहते तो आप शान्तिनाथ न बनते। लेकिन आप तो ससार को शांति पहुचाने वाले और शांति का अनुभव-पाठ पढाने वाले हुए। इस कारण हम आपको भक्तिपूर्वक वन्दना करते है। आपने कौनसी शाति दिखलाई है, इस सम्बन्ध मे कहा है—

चइत्ता भारह वास चक्कवट्टी महिड्ढिओ।

चक्रवर्ती की विशाल समृद्धि प्राप्त करके भी आपने

विचार किया कि संसार को शाति किस प्रकार पहुचाई जा सकती है। इस प्रकार विचार कर आपने शाति का मार्ग खोजा और ससार को दिखलाया। जैसे माता कामधेनु का नही वरन् अपना ही दूध बालक को पिलाती है, उसी प्रकार आपने शाति के लिए यंत्र-मत्र-तत्र आदि का उपयोग नही किया किन्तु स्वय शांतिस्वरूप बनकर ससार के समक्ष शांति का आदर्श प्रस्तुत किया। आपके आदर्श से ससार ने सीखा कि त्याग के बिना शाति नही प्राप्त की जा सकती। आपने ससार को अपने ही उदाहरण से बतलाया है कि सच्ची शाति भोग मे नही, त्याग मे है और मनुष्य सच्चे हृदय से ज्यो-ज्यो त्याग की ओर बढता जायगा, त्यो-त्यो शान्ति उसके समीप आती जायगी।

# १५ : चेड़ा-कोरिणक का युद्ध

श्रावक अपराधी को मारने का त्यागी नही होता। लोग कहते है कि अहिंसा का पालन करने से कायरता आती है। परन्तु ऐसा कहना भूल है। जान पडता है, यह भ्रमपूर्ण मान्यता कुछ जैन नामधारी लोगो के कायरतापूर्ण व्यवहार से ही प्रचलित हो गई है। जैनधर्म गृहस्थ के लिए यह नही कहता कि गृहस्थ अपराधी को मारने का भी त्याग करे। गृहस्थ के लिये जैनधर्म ने अपराधी को मारना निषिद्ध नही ठहराया है और न अपराधी को दण्ड देने वाले को अधर्मी ही कहा है। यह वात स्पष्ट करने के लिये यहा एक उदाहरण दिया जाता है—

जिस समय भारत वर्ष में चारो ओर अराजकता फैलती जा रही थी और शक्तिशाली लोग अशक्तो को सता रहे थे, उस समय नौ लिच्छवी और नौ मल्ली नामक अठारह राजाओ ने मिल कर एक गण-संघ की स्थापना की थी। इस गण-सघ का उद्देश्य सबलो द्वारा पीडित निर्बलो की रक्षा करना था। गण-संघ के अठारह गणराजाओ का गणनायक (President) चेटक राजा था। राजा चेटक या चेड़ा भगवान् महावीर का पूर्ण भक्त था।

सशक्त लोगो से निर्बलो की रक्षा करने के लिये ही गण-सघ की स्थापना की गई थी । जिस समय की यह घटना है उस समय चम्पा नगरी मे कोणिक राजा राज्य करता था । कोणिक राजा श्रेणिक का पुत्र था । कोणिक के बारह भाई थे, जिनमे सब से छोटे भाई का नाम बहिल-कुमार था । बहिलकुमार के पास एक कीमती हार और एक हाथी था । यह हार और हाथी उसके पिता ने उसे पुरस्कार दिया था । बहिलकुमार को राज्य मे कोई हिस्सा नही मिला था । उसने हार और हाथी पाकर ही सन्तोष मान लिया था ।

बहिलकुमार हाथी पर सवार होकर आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करता था । लोग उसकी प्रशसा करते हुए कहते थे—राज्य के रत्नो का उपभोग तो बहिलकुमार ही करते है । कोणिक के लिये तो केवल राज्य का भार ही है ।

लोगो का यह कथन कोणिक की रानी पद्मा के कानो तक पहुचा । रानी ने विचार किया—किसी भी उपाय से वह हार और हाथी राज्य मे मगाना चाहिये । यह सोचकर रानी ने कोणिक से कहा—नाथ ! राजा आप है मगर रत्नो का—हार और हाथी का—उपभोग बहिलकुमार करता है । तुम्हारे पास तो केवल निस्सार राज्य ही है ।

कोणिक ने कहा—स्त्रियो की बुद्धि बहुत ओछी होती है । इसी कारण तू ऐसा कहती है । बहिलकुमार के पास तो सिर्फ हार और हाथी है, मगर मैं तो सारे राज्य का स्वामी हू । इसके अतिरिक्त बहिलकुमार के पास हार और

हाथी हैं तो कोई गैर के पास थोड े ही है ! आखिर तो मेरे भाई के पास ही है न ?

रानी पद्मा ने सोचा–मेरी यह युक्ति काम नही आई। अब दूसरा कोई उपाय काम मे लाना चाहिये। यह सोचकर उसने कोणिक से कहा—तुम्हे अपने भाई पर इतना अधिक विश्वास है, यह मुझे नही मालूम था। तुम्हे इतना विश्वास है, यह अच्छा ही है। मगर एक वार अपने विश्वास-पात्र भाई की परीक्षा तो कर देखो कि उन्हे तुम्हारे ऊपर कितना विश्वास है और तुम्हारे विश्वास पर वह हार तथा हाथी भेजता है या नही ?

कोणिक को यह बात पसन्द आ गई। उसने वहिल-कुमार के पास सन्देशा भिजवा दिया—इतने दिनो तक हार और हाथी का उपभोग तुमने किया है। अव कुछ दिनों तक हमे उपभोग करने दो।

यह सन्देश पाकर वहिलकुमार ने सोचा—अब कोणिक की नजर हार और हाथी पर पडी है। वह प्रत्येक उपाय से हार और हाथी को हस्तगत करने की चेष्टा करेगा। मुझे राज्य मे कोई हिस्सा नही मिला। फिर भी मैंने हार-हाथी पाकर ही सन्तोष मान लिया। अब ये भी जाने की तैयारी मे है।

इस प्रकार विचार कर और हार तथा हाथी को बचाने के लिए वहिलकुमार रात्रि के समय निकल पडा और अपने नाना राजा चेटक की शरण मे जा पहुंचा। वहिल-कुमार ने राजा चेटक को सारी कथा कह सुनाई। चेटक ने

सम्पूर्ण घटना सुनकर वहिलकुमार से कहा—तुम्हारी बात ठीक है । राजा चेटक ने उसे अपने यहां आश्रय दिया ।

वहिलकुमार हार और हाथी लेकर बाहर चला गया है, यह समाचार सुनते ही पद्मा रानी को कोणिक के कान भरने के लिये पूरी सामग्री मिल गई । वह कोणिक के पास जाकर कहने लगी—तुम जिसे भाई-भाई कहकर ऊचा चढ़ाते थे, उसकी करतूत देख ली न ! तुम्हारे भाई को तुम्हारे ऊपर कितना विश्वास है ! उसने हार और हाथी नही भेजे । इतना ही नही, कदाचित् तुम जबर्दस्ती हार, हाथी लूट लोगे इस भय से वह अपने नाना के पास भाग गया है । वहा जाने को कोई खबर भी उसने तुम्हारे पास नही भेजी । अब मैं देखती हू कि तुम क्या करते हो और हार तथा हाथी प्राप्त करने के लिए कैसी वीरता दिखाते हो ?

इस प्रकार की उत्तेजनापूर्ण बाते कहकर पद्मा ने कोणिक को खूब भड़काया । पद्मा की ये बातें सुनकर कोणिक को क्रोध आ गया । वह कहने लगा—मैं चेडा राजा के पास अभी दूत भेजता हूं । अगर चेडा राजा बुद्धिमान होगा तो वहिलकुमार को हार और हाथी के साथ मेरे पास भेज देगा ।

कोणिक का दूत राजा चेटक के पास पहुचा । दूत का कथन सुनकर चेटक ने उत्तर मे कहला दिया—मेरे लिये तो कोणिक और वहिलकुमार दोनों सरीखे है । परन्तु जैसे कोणिक ने अपने दस भाइयो को राज्य में हिस्सा दिया है, उसी प्रकार वहिलकुमार को भी हिस्सा दिया जाय अथवा हार और हाथी रखने का अधिकार उसे दिया जाय ।

चेटक का यह उत्तर न्यायदृष्टि से ठीक था। मगर सत्ता के सामने न्याय-अन्याय कौन देखता है! जिसके हाथ मे सत्ता है, वह तो यह कहता है कि हमारा वाक्य न्याय है और जिधर हम उगली उठावे, उधर ही पूर्व दिशा है।

चेटक का उत्तर सुनकर कोणिक ने फिर कहला भेजा—हम राजा हैं। रत्नो पर राजा का ही अधिकार होता है। तुम्हे हमारे बीच मे पडने की कोई आवश्यकता नही है। तुम वहिलकुमार को मेरे पास भेज दो। हम भाई-भाई आपस मे निबट लेंगे।

दूत ने चेटक के पास पहुचकर कोणिक का सन्देश सुनाया। कोणिक ने अपने सन्देश में राज्य का हिस्सा देने के विषय मे कुछ भी नही कहलाया था। अतएव चेटक ने यही प्रत्युत्तर दिया—अगर कोणिक वहिलकुमार को राज्य मे हिस्सा देने को तैयार हो, तब तो ठीक है। मगर उसने इस सम्वन्ध मे कुछ भी नही कहलाया। ऐसी स्थिति में वहिलकुमार को कैसे भेज सकता हूं? सबलो से निर्बलो की रक्षा करना तो हमारी प्रतिज्ञा है।

दूत फिर चम्पा नगरी लौट गया और चेटक का उत्तर कोणिक से कह दिया। कोणिक को अपनी शक्ति का अभिमान था। उसने राजा चेटक को कहला दिया—या तो वहिलकुमार को हार, हाथी के साथ मेरे पास भेज दो, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

चेटक राजा ने अपने गण-सघ के सब सदस्यो को

एकत्र किया और सम्पूर्ण घटना से परिचित किया। ऐसी परिस्थिति मे क्या करना चाहिए, इस विषय मे उनकी सम्मति पूछी। आगे-पीछे का विचार करने के बाद सभी राजा इस निर्णय पर पहुचे कि क्षत्रिय होने के नाते सबलो द्वारा सताए जाने वाले निर्बलो की रक्षा करना हमारा धर्म है। अपने गण-सघ का उद्देश्य भी निर्बलो की रक्षा करना है। वहिलकुमार न्याय के पथ पर है। न्याय दृष्टि से उसे कोणिक के पास भेज देना उचित नही है। युद्ध करके शरणागत की रक्षा करना ही हम लोगो का कर्त्तव्य है।

गणराजा अपने धर्म का पालन करने के लिए अपने प्राण तक देने उतारू हो गये। परन्तु तुम लोग धर्म की रक्षा के लिए कुछ करते हो ? क्या तुम धर्म की रक्षा के लिए थोडा-सा भी स्वार्थ त्याग सकते हो ? स्वार्थ त्याग करने से ही धर्म की रक्षा हो सकती है। गणराजाओ जैसी परिस्थिति अगर तुम्हारे सामने उपस्थित हो जाय तो तुम क्या करोगे ? कदाचित् तुम यही सोचोगे कि—कहा का हार और कहां का हाथी ! हमारा उससे क्या लेन-देन है ? मगर क्या यह राजा लोग ऐसा नही सोच सकते थे ? वास्तव मे इस प्रकार का विचार करना कायरता है। वीर पुरुष ऐसा तुच्छ विचार नही करते। वे दूसरो की रक्षा के लिए सदैव उद्यत रहते है। आज तो लोगो मे कायरता व्याप गई है। यह कायरता स्वार्थ-पूर्ण व्यापार के कारण आई है, मगर लोगो का कहना है कि वह धर्म के कारण आई है। यह कहना एक गम्भीर भूल है। धर्म के कारण कायरता कदापि नही आ सकती। वीर पुरुष ही धर्म का पालन कर सकते हैं।

समस्त गणराजाओ के साथ चेडा राजा युद्ध के लिए

तैयार हो गया। इधर कोणिक राजा भी अपने दसो भाइयों के साथ युद्ध के लिए तैयार हुआ। यद्यपि कोणिक के दस भाई कह सकते थे कि हम सबको राज्य का हिस्सा मिला है तो वहिलकुमार को भी हिस्सा मिलना चाहिए, परन्तु उन्होने भी सत्ता के सामने मस्तक झुका दिया। इतिहास-वेत्ताओं का कथन है कि गणराज्य प्रजातन्त्र राज्य के समान था परन्तु दूसरे राजा स्वच्छन्द थे और गरीबो पर अन्याय करते थे।

गणराजाओ की सेना का नेतृत्व चेटक ने ग्रहण किया। वास्तव मे धार्मिक व्यक्ति धर्म की रक्षा के लिए सदा आगे ही रहता है। आज के प्रमुख तो कार्य करने के समय नौकरो को आगे कर देते हैं परन्तु चेटक राजा स्वय अगुवा वना और उसने अपनी युद्ध कला का परिचय दिया। राजा चेटक ने अपनी अचूक वाणावलि के द्वारा कोणिक के भाइयो का शिरच्छेद कर डाला।

अपने भाइयों के मर जाने से कोणिक भयभीत हो गया। कोणिक ने तप आदि द्वारा इन्द्रों की आराधना की। उसकी आराधना के फलस्वरूप शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र आये। शक्रेन्द्र ने कोणिक से कहा—तुम्हारा पक्ष न्यायपूर्ण नही है और चेटक राजा का पक्ष न्यायपूर्ण है।

कोणिक बोला कुछ भी हो, इस समय तो मेरी रक्षा करो।

शक्रेन्द्र ने उत्तर दिया—मैं अधिक तो कुछ नही कर

सकूंगा, सिर्फ चेटक राजा के वाणो से तुम्हारी रक्षा करूंगा। मैं उनका बाण-वेध चुका दूंगा।

चमरेन्द्र वोला—तुम मेरे मित्र हो, इस कारण मैं सेनावैक्रिय करूंगा और रथमूसल का सग्रामवैक्रिय करके तुम्हे विजय दिलाऊंगा।

चमरेन्द्र से इस प्रकार आश्वासन पाकर कोणिक बहुत प्रसन्न हुआ। अब कोणिक फिर तैयार होकर राजा चेटक के सामने युद्ध करने आ पहुचा। भगवान ने कहा—उस सग्राम मे एक करोड अस्सी लाख मनुष्य मारे गये।

भगवती सूत्र मे भी एक ऐसा उदाहरण आया है। वरुण नागनतुआ नामक एक श्रावक था। यह श्रावक बेले-बेले पारणा करता था। वह चेटक राजा का सामन्त था। एक वार उसे युद्ध मे जाने के लिए कहा गया। उस समय उसके दूसरा उपवास था। क्या ऐसा उपवास करने वाले को युद्ध मे जाना उचित था? क्या वह नही कह सकता था कि मैं उपवासी हू। युद्ध मे कैसे जा सकता हू? परन्तु उसने ऐसा कोई उत्तर न देते हुए यही कहा कि अवसर आने पर सेवक को स्वामी की सेवा करनी चाहिए। स्वामी की सेवा करने के ऐन मौके पर कोई बहाना वनाकर किनारा काटना अनुचित है। अवसर आने पर नमकहराम बनना क्या हरामखोरी नही है?

आज भारतवर्ष मे वडी हरामखोरी दिखाई देती है। जो लोग भारत का अन्न खाते है, वही भारत की नाक काटने वाले कामो मे शामिल होते हैं। जो वस्त्र भारत को

गुलाम बनाते है, उन्ही को वे अपनाते है। भारत की सभ्यता को, रहन-सहन आदि को भुला देते है। यह नमक-हरामी नही तो क्या है ? वायसराय, गवर्नर आदि आते हैं और भारत का शासन करते है, पर उन्हे भारतीय वेष-भूषा पहनने के लिए कहा जाय तो क्या वे कहना मानेगे ? वे यही उत्तर देगे कि हम तो अपनी मातृभूमि की सेवा बजाने आये है, द्रोह करने नही। अतएव हम अपना वेष कैसे छोड़ सकते है ? इस प्रकार अंगरेज लोग भारत में रहते हुए भी अंग्रेजी पोशाक पहन कर फूले नही समाते। यह कृतघ्नता के सिवाय और क्या है ? पोशाक और रहन-सहन से मातृभूमि की पहचान होती है। मगर आज भारत का रहन-सहन बदल गया है। सभ्यता बदल देने से मातृ-भूमि के प्रति द्रोह होता है। देश-हित की दृष्टि से भी भारतीय सस्कृति अपनाने योग्य है।

वरुण नागनतुआ वीर होने के कारण ही, उपवासी होता हुआ भी, देश रक्षा के लिए युद्ध मे शामिल हो गया। मगर आज कायरता आ जाने के कारण देश, समाज और धर्म का पतन हो रहा है।

कहने का आशय यह है कि चेटक राजा और वरुण नागनतुआ ने श्रावक या सम्यग्दृष्टि होने पर भी सग्राम लडा। फिर भी उनका स्थूल अहिसा व्रत खडित न हुआ। इसका कारण यही है कि वे निरपराध को ही मारने के त्यागी थे। ऐसी अवस्था मे उनका स्थूल अहिसाव्रत कैसे भग हो सकता था ? अपराधी को मारने का समावेश स्थूल हिसा मे नही होता। राज्य भी ऐसे कामो को अपराध

नही गिनता । लोग अपराधी को दंड देने के समय दूर-दूर भागते हैं और निरपराध के गले पर कलम-कुठार चलाने के लिए तैयार हो जाते हैं । यह उनकी कायरता है ।

उक्त कथन का आशय यह है कि गृहस्थधर्म मर्यादा-युक्त है । गृहस्थधर्म का पालन करने से आत्मा का विकास भी होता है और सांसारिक काम भी नही रुकता । जैनधर्म वीरों का धर्म है । इस वीरधर्म में कायरता के लिए लेश-मात्र भी गुंजाइश नही । जिसमे वीरता होगी, वही जैनधर्म का भली-भाति पालन कर सकेगा । आज कायरता को पोषने का जो अपवाद जैनधर्म पर लगाया जाता है, उसका प्रधान कारण जैन कहलाने वालो का कायरतापूर्ण व्यवहार ही है । अगर जैनधर्म का यथोचित पालन किया जाय तो देश, समाज और धर्म का उत्थान हुए बिना नही रह सकता । धर्मपालन के लिए वीरता और धीरता की आवश्यकता रहती है । जो मनुष्य अपनी ही रक्षा नही कर सकता, वह दूसरो की रक्षा कैसे कर सकता है ? देश, समाज और धर्म के उत्थान के लिए सर्वप्रथम नैतिक बल प्राप्त करने की आवश्यकता है ।

# १६ : इन्द्रिय-विजय

जितशत्रु नामक एक राजा था। उसके प्रधान का नाम सुबुद्धि था। सुबुद्धि बडा विचारशील था। एक दिन सुबुद्धि राजा के साथ भोजन करने बैठा था। भोजन स्वादिष्ट था। राजा ने प्रधान से कहा—देखो, कितना स्वादिष्ट भोजन है! राजा के इस कथन के उत्तर मे सुबुद्धि ने कहा—इसमे क्या है? इष्ट से अनिष्ट हो जाना और अनिष्ट से इष्ट हो जाना तो वस्तुओ का स्वभाव ही है। राजा ने कहा—प्रधान, तुम तो नास्तिक जान पडते हो। क्या यह भी कभी सम्भव है कि अच्छी वस्तु बुरी और बुरी वस्तु अच्छी बन जाए?

राजा अपने दूसरे कर्मचारियों से इस सम्बन्ध मे बात करता तो वे सब राजा की ही बात का समर्थन करते थे। मगर सुबुद्धि तो यही कहता कि तुम लोग चाहो सो कहो। मेरे गुरुजी ने तो मुझे यही सिखलाया है और मे यही मानता हूं कि इष्ट का अनिष्ट और अनिष्ट का इष्ट हो जाना ही पुद्गल का स्वभाव है। पुद्गल का स्वभाव नष्ट हो जाना है, अतएव वस्तु का इष्ट-अनिष्ट हो जाना स्वाभाविक है।

राजा ने प्रधान को बहुत समझाने की कोशिश की,

पर प्रधान ने अपनी बात नही बदली । प्रधान को अपनी बात पर पूरा भरोसा था । उसने राजा से कहा जिस बात को मैं सत्य मानता हू, उस सत्य को मैं असत्य कैसे कह सकता हूं ? राजा ने समझ लिया कि प्रधान इस समय हठ पकड़कर बैठा है । अब इस बात को जाने दिया जाय ।

एक दिन राजा नगर-निरीक्षण करने निकला । प्रधान साथ ही था । नगर के चारो ओर खाई थी । पानी भर जाने के कारण खाई मे से बदबू निकल रही थी । राजा और प्रधान उसी खाई के पास से निकले । खाई से निकलने वाली दुर्गन्ध असह्य थी । राजा ने प्रधान से कहा—प्रधान, देखो, इस खाई का पानी कितना बदबूदार है ? इतना कह कर राजा ने अपनी नाक दबा ली । उस समय भी प्रधान ने यही उत्तर दिया—महाराज ! इष्ट से अनिष्ट और अनिष्ट से इष्ट हो जाना तो वस्तु का स्वभाव ही है । प्रधान का उत्तर सुनकर राजा ने कहा—प्रधान तुम बहुत हठी हो । क्या सब चीजे ऐसी हो सकती है ? प्रधान बोला—महाराज, मैं हठ नही करता । वस्तु का सच्चा स्वरूप कह रहा हू । आप कुछ भी फरमावे, मुझे तो आप के प्रति भी समभाव रखना है और वस्तु के प्रति भी समभाव रखना है ।

घर पहुच कर प्रधान ने विचार किया—वस्तु-स्वरूप के संबध में राजा के साथ मेरा मतभेद बढता चला जा रहा है । मुझे किसी प्रकार राजा को अपनी बात की खातरी करा देनी चाहिए कि मैं जो कुछ कहता हूं, वह सत्य है—असत्य नही । इस प्रकार विचार कर उसने अपना एक विश्वस्त आदमी भेजकर, खाई का बदबूदार पानी एक

घड़ा भर कर मंगवाया। प्रधान ने उस पानी को अपने ४९ प्रयोगो द्वारा परिष्कृत किया। तत्पश्चात् उसने वह पानी राजा के पानी भरने वाले को दिया और कहा—महाराज जव भोजन करने वैठे तो पीने के लिए यह पानी रख देना।

राजा जव भोजन करने वैठा तो उस आदमी ने वही पानी पीने के लिए रख दिया। पानी पीकर राजा ने कहा—अरे, यह पानी तो वहुत मीठा है। यह कहा से लाया है? आदमी ने उत्तर दिया—यह पानी प्रधानजी ने भेजा है। राजा ने प्रधान को उसी समय वुलवाकर कहा—तुम इतना मीठा पानी पीते हो और मेरे लिए यह आज भिजवाया है! प्रधान ने कहा—इस पानी मे ऐसा क्या है? यह तो वस्तु का स्वभाव ही है कि वह अनिष्ट से इष्ट और इष्ट से अनिष्ट हो जाती है।

राजा ने कहा—फिर वही वात कहने लगे!

प्रधान—मैं जो कहता हूं, ठीक कहता हूं। यह पानी उसी खाई का पानी है, जिसकी वदवू के मारे आपने नाक दबा लिया था।

राजा—वह वदवूवाला पानी इतना मीठा कैसे वन सकता है?

प्रधान—महाराज! मै प्रयोग द्वारा आपके सामने भी उस पानी को ऐसा मीठा वना सकता हूं।

आखिर राजा ने खाई का दुर्गन्ध वाला पानी मंगवाया। प्रधान से उसे शुद्ध और सुगन्धित वनाने के लिए कहा।

प्रधान ने पहले की तरह उस पानी को परिष्कृत कर दिया। इस घटना से राजा को विश्वास हो गया कि वस्तु मे परिवर्तन हो सकता है। राजा ने प्रधान के उस सिद्धान्त को स्वीकार करके कहा—प्रधानजी ! आप धर्मज्ञ और विचारशील है। अत मुझे केवली-प्ररूपित धर्म सुनाइए। सुबुद्धि प्रधान श्रावक था और धर्मतत्त्व का ज्ञाता था। उसने राजा को धर्मतत्त्व समझाया। श्रावक को धर्म समझाने का अधिकार है, मगर जव वह स्वय ज्ञाता हो, तभी वह दूसरो को समझा सकता हैं। सुबुद्धि प्रधान से धर्मतत्त्व समझकर राजा बारह व्रतधारी श्रावक बना। धीरे-धीरे उसने आत्मकल्याण किया।

कहने का आशय यह है कि धर्म का ज्ञाता व्यक्ति तो यही मानता है कि इष्ट से अनिष्ट और अनिष्ट से इष्ट होना ही वस्तु का स्वरूप है। इस प्रकार वस्तु का स्वरूप समझ लेने पर मनुष्य इष्ट वस्तु पर राग और अनिष्ट वस्तु पर द्वेष धारण नही करता। वह समभाव ही रखता है। वह भलीभाति जानता है कि जो वस्तु थोडी देर के लिए इष्ट प्रतीत होती है और फिर अनिष्ट मालूम होने लगती है, उसके खातिर मैं अपने आत्मा मे राग-द्वेष क्यो उत्पन्न होने दू ? वस्तु आत्मा का उत्थान भी करती है और पतन भी करती है। वस्तु के निमित्त से जब आत्मा मे राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है तो ऐसी अवस्था मे आत्मा का पतन होता है और समभाव उत्पन्न होने से आत्मा का उत्थान होता है। जिस वस्तु के निमित्त से आत्मा का उत्थान हो सकता है, उसे आत्मपतन का कारण क्यो बनाया जाय ?

इस-प्रकार विचार कर इन्द्रियों का निग्रह करने वाला व्यक्ति अवश्य ही आत्मकल्याण का भागी होता है।

सभी शास्त्रकार और सभी धर्मावलम्वी इन्द्रियो के निग्रह की वात कहते हैं। इस विषय मे प्रायः किसी का मतभेद नही है। सभी लोगो का कथन है कि इन्द्रियों का निग्रह करने से आत्मा का कल्याण हो सकता है। गीता मे भी कहा है—हे अर्जुन ! तुझे आत्मा का कल्याण करना हो तो सवसे पहले इन्द्रियो का निग्रह कर। इन्द्रियनिग्रह से आत्मा का उत्थान होता है और इन्द्रियो के अधीन वनने से आत्मा का पतन होता है। अतएव इन्द्रियो को वश मे रखो। उन्हे पदार्थों के प्रलोभन मे मत जाने दो। पर्वत पर से एक ही पैर फिसल जाय तो कौन कह सकता है कि कितना पतन होगा ? इसी प्रकार एक भी इन्द्रिय अगर कावू से वाहर हो गई तो कौन कह सकता है कि आत्मा का कितना पतन होगा। इसलिए अगर तुम अपने आत्मा को सिद्ध, वुद्ध, मुक्त तथा शान्त करके दु.खमुक्त करना चाहते हो तो सर्व-प्रथम इन्द्रियो का निग्रह करो। इन्द्रियनिग्रह ही आत्मविजय का अमोघ साधन है।

# १७ : पुरुषार्थ

भगवान महावीर का सिद्धान्त उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम का है। श्री उपासक दशांगसूत्र के सकडालपुत्र के अध्ययन मे इसी सिद्धान्त का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। गोशालक का मत यह है कि उत्थान आदि कुछ भी नही हैं, जो होनहार है वही होता है। इस मत के विरुद्ध भगवान का सिद्धान्त यह है कि उत्थान, बल, वीर्य पुरुषाकार तथा पराक्रम आदि द्वारा आत्मा सिद्ध होता है। सक्षेप मे भगवान महावीर पुरुषार्थवादी थे और गोशालक नियतिवादी।

एक बार भगवान महावीर ने सकडालपुत्र से कहा— आत्मा उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषाकार तथा पराक्रम से सिद्ध होता है। इस कथन के उत्तर मे सकडालपुत्र ने कहा कि उत्थान आदि द्वारा आत्मा सिद्ध नही होता वरन् सिद्ध होने वाला हो तो हो जाता है।

सकडालपुत्र पहले गोशालक का श्रावक था। इस कारण उसने गोशालक के मत का समर्थन किया। एक दिन सकडालपुत्र ने अपनी दूकान मे से मिट्टी के बर्तन बाहर निकाले और धूप मे सुखा दिये। तब भगवान महावीर ने

उससे कहा—हे शकडाल ! ये मिट्टी के वर्त्तन किस तरह बने है ?

सकडालपुत्र ने वर्त्तनो के बनने का क्रम बतलाते हुए कहा - जंगल से मिट्टी लाया। फिर उसमे दूसरी चीजो का मिश्रण करके मिट्टी का पिंड बनाया। उसे चाक पर चढाया और तब वर्त्तन बनाये है।

भगवान ने कहा—ये वर्त्तन उत्थान आदि से ही बने है न !

शकडाल—नही, होनहार ही होता है।

भगवान—अगर कोई तुम्हारे वर्त्तनो को फोड डाले तो ?

सकडाल—मेरे वर्त्तन फोड़ने वाले को मैं बिना मारे नही छोडूंगा। मैं उसके हाथ पैर तोड दूंगा।

भगवान—सकडाल ! तुम उसे इतना दड क्यो दोगे ? तुम्हारे हिसाव से तो होनहार ही होता है। फिर तुम दण्ड क्यो दोगे ? तुम्हें अपने मंतव्य के अनुसार तो यही मानना चाहिए कि लकडी के सयोग से वर्त्तन फूटने वाले थे, सो फूट गये।

भगवान का यह कथन सुनकर सकडालपुत्र विचार मे पड गया। इतने मे ही भगवान ने उसके सामने दूसरा उदाहरण उपस्थित करते हुए कहा—हे सकडालपुत्र ! कल्पना करो, तुम्हारी पत्नी सिंगार करके वाहर निकली और कोई पुरुष उस पर वलात्कार करना चाहता है तो तुम क्या करोगे ?

सकडालपुत्र ने कहा—मैं ऐसे दुष्ट पुरुष के नाक-कान काट लूगा । यहा तक कि उसे प्राणदण्ड देने का भी प्रयत्न करूंगा ।

भगवान—हे सकडालपुत्र ! तुम्हारे मत के अनुसार तो होनहार ही होता है । फिर तुम्हे उस दुष्ट पुरुष को दण्ड नही देना चाहिए ।

भगवान की युक्तिसगत वाणी सुनकर सकडालपुत्र को बोध हो गया । उसने भगवान से कहा - भगवन् ! मैं धर्म-श्रवण करना चाहता हू । भगवान ने उसे धर्म का श्रवण कराया । भगवान की धर्मवाणी सुनकर वह बारह व्रतधारी श्रावक बन गया । जब तक सकडालपुत्र धर्मतत्त्व को समझा नही था, तब तक उसमे मताग्रह था । जब उसे वास्तविक धर्मतत्त्व का बोध हुआ तो उसने नियतिवाद का त्याग करके पुरुषार्थवाद का सत्यधर्म स्वीकार किया ।

सकडालपुत्र कुम्भार था, फिर भी भगवान ने उसे श्रावक बनाया । क्या ऐसा करना ठीक था ? उन्होने कुम्भार को श्रावक बनाकर ससार के सामने आदर्श उपस्थित किया कि कोई किसी भी वर्ण या जाति का क्यो न हो, शरीर से छोटा या मोटा क्यो न हो, मुझे किसी के प्रति, किसी भी प्रकार का पक्ष नही है । मैं सब का कल्याण चाहता हू । भगवान के इस कथन पर तुम भी थोड़ा विचार करो ।

गोशालक ने सुना कि सकडालपुत्र ने मेरा मत त्याग दिया है । उसे फिर अपने मत का अनुयायी बनाने के लिए

गोशालक उसके पास पहुचा । गोशालक ने विचार किया—सकडालपुत्र तो महावीर भगवान का पक्का श्रावक बन गया है । तब उसने भगवान की प्रशसा करना आरम्भ किया ।

गोशालक ने सकडालपुत्र से कहा—क्या यहां महा—माहण, महायान, महानिर्यामक, महागोप तथा महासार्थवाह आये थे ?

सकडालपुत्र ने गोशालक से इन विशेषणो का अर्थ पूछा । गोशालक ने अर्थ समझाया । तव सकडालपुत्र ने कहा—तुमने मेरे गुरु की प्रणसा की है, इस कारण मेरी दूकान मे ठहरो और पाट आदि जो चाहिए, सो लो । यह सव मैं तुम्हें गुरु मानकर नही देता हूं वरन अपने गुरु भगवान महावीर की प्रशंसा करने के कारण दे रहा हूं ।

# १८ : उत्तम क्षमा

क्षमा तीन प्रकार की होती है—तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी । तमोगुणी क्षमा वाले वे लोग हैं, जो अपनी स्त्री के साथ बलात्कार करते देख हृदय मे क्रोध तो करते हैं, मगर भय के मारे सामना नही करते । यह तमोगुणी क्षमा प्रशस्त नही है, यह कायरता है, घृणित है और नपु—सकता है । अर्जुन माली का कार्य ससार का नाशक नही, अत्याचारी को दण्ड देने का है और वह दूसरे अत्याचारियों के ऐसे दुस्साहस को रोकने के लिए किया गया था । हमारा उपदेश तो ऐसी क्षमा के लिए है जो सुदर्शन सेठ ने अर्जुन माली के प्रति धारण की थी । वह सतोगुणी क्षमा थी । जिसमे क्रोध तनिक भी उत्पन्न नही होता और क्षमा कर दिया जाता है, वही सतोगुणी क्षमा है । धर्म अत्याचार-अनाचार को न रोकने की शिक्षा नही देता । धर्म किसी को कायर नही बनाता । धर्म की ओट मे कोई अत्याचार-का प्रतिकार न करे या कायरता को छिपाने के लिए धर्म का बहाना करे, यह अलग बात है । मगर जिसने धर्म के तत्त्व को ठीक तरह समझ लिया होगा, वह अपने ऐसे कृत्यो द्वारा धर्म को बदनाम नही करेगा ।

बौद्ध ग्रन्थो में एक कथा आई है । सोमदेव नामक

एक ब्राह्मण की आध्यात्मिक भावना बालकपन से ही बढी-चढ़ी थी। अतएव माता-पिता के मरते ही सोमदेव और उसकी पत्नी ने सन्यास ले लिया। स्त्री सुन्दरी थी। दम्पती वन मे रहकर तप किया करते थे। एक बार दोनो नगर मे आये। नगर के राजा ने स्त्री को देखा तो उसके चित्त मे विकार पैदा हो गया। वह सोचने लगा—यह रमणीरत्न गलियो मे क्यो पडा फिरना चाहिये? यह तो महल की शोभा बढाने योग्य है। यह सोचकर उसने सोमदेव से कहा, यह स्त्री तेरे साथ शोभा नही देती।

सोमदेव ने कहा—हां, शोभा नही देती।

राजा—तो इसे हम ले जाएं?

सोमदेव—मेरी नही है, भले कोई ले जाय।

राजा ने स्त्री से कहा—चलो, हमारे साथ चलो।

स्त्री ने सहज भाव से उत्तर दिया—चलिए, कहा चलना है?

आगे-आगे राजा चला और पीछे-पीछे स्त्री। महल मे पहुचकर स्त्री ध्यान लगाकर बैठ गई। उसने ऐसा ध्यान लगाया कि कई अनुकूल-प्रतिकूल सत्ताए हार गई, मगर उसका ध्यान न टूटा। राजा को अपना पागलपन मालूम हुआ। उसका अज्ञान हट गया। वह उस सन्यासिनी के पैरो मे गिरकर क्षमा मागने लगा।

स्त्री ने, मानो कुछ हुआ ही नही है, ऐसे सहज भाव से उत्तर दिया—किसने और क्या अपराध किया है, वह मुझे

मालूम ही नही है । मैं क्षमा क्या करू ं ।

आखिर राजा संन्यासिनी को लेकर सोमदत्त के पास गया । सोमदत्त को उसकी स्त्री सौपकर उसने कहा—मैंने आपकी अवज्ञा की है । मेरा यह अपराध है तो गुरुतर, फिर भी मैं आपसे क्षमायाचना करता हू ं ।

सोमदेव ने कहा—जब यह मेरी है ही नही, तब इसमे मेरी अवज्ञा क्या हुई ?

इसे कहते हैं क्षमा ! ऐसी क्षमा के द्वारा भी अन्याय-अत्याचार का नाश किया जाता है । अन्याय-अत्याचार के समूल नाश का यह सर्वश्रेष्ठ तरीका है । इस तरीके से अन्यायी और अत्याचारी के हृदय का परिवर्तन हो जाता है । परन्तु ऐसी भावना प्राप्त करने के लिये साधना चाहिए ।

# १६ : काली-महाकाली

अन्तगडसूत्र मे, अन्त में, दस महारानियों की जो कथा है, वह अत्यन्त गम्भीर है और जैनधर्म की कथाओ पर शिखर के समान है । यह दसों महारानियां वैभव और भोगो मे डूबी हुई थी । ससार के सर्वश्रेष्ठ भोग उन्हें सुलभ थे । कभी किसी वस्तु का अभाव उन्होने जाना ही नही था । लेकिन भगवान महावीर के प्रताप से उन्होने समस्त भोगों का परित्याग कर दिया । वे साध्विया हो गई और आध्यात्मिक साधना मे लीन रहने लगी । भिक्षा द्वारा अपना शरीर निर्वाह करने लगी । इनमे से भी कृष्णा महारानी के चरित का स्मरण करके तो रोमांच हो आता है । कहां राजसी वैभव और कहा दुष्कर तप ! कहा उनकी फूल-सी कोमल काया और कहां पद-पद पर परिषहो का सहन करना ! कैसी अनोखी उत्क्राति का संदेश है !

मै धर्मशास्त्र सुना रहा हूं, इतिहास नही सुना रहा हूं । जिसके हृदय में भक्ति है, वह तो धर्मशास्त्र की कथा को ऊंची समझेगा ही, परन्तु लोकदृष्टि से देखने वाला भी इतना अवश्य कहेगा कि राजरानी साध्वी बनें—स्वेच्छा से भिक्षुणी के जीवन को अंगीकार करे, यह कल्पना ही कितनी उच्च है ! जिस मस्तिष्क ने यह कल्पना की है, वह क्या-

असाधारण नही होगा ?

जैनधर्म और बौद्धधर्म की कथाओ से विदित होता है कि भारतवर्ष मे अनेक राजरानिया साध्वी बनी हैं। महाराज अशोक की बहिन भी भिक्षुणी सघ मे प्रविष्ट हुई थी। सुना जाता है कि उसके नाम का पीपल आज भी सीलोन मे विद्यमान है ऐसी साध्विया जब ससार मे घूम-घूमकर जनता को जागृत करती होगी, तव भारत मे और भारत के प्रति दूसरे देशो मे किस प्रकार की भावना उत्पन्न होती होगी, यह कौन कह सकता है ? सचमुच भारतीय इतिहास का वह स्वर्णकाल अनूठा था ! एक राजरानी स्वेच्छापूर्वक वैभव को लात मारकर भिक्षुणी बनती और घर-घर फिरती है। जीवन के किसी अभाव ने उसे भिक्षुणी वनने को वाध्य नही किया था। किसी अपूर्व अन्त प्रेरणा से प्रेरित होकर ही उसने ऐसा किया था और ऐसा करके वह क्या दु खी थी ? नही। भोगो मे अतृप्ति थी, त्याग मे तृप्ति थी। भोगो मे असन्तोष, ईर्ष्या और कलह के कीटाणु छिपे थे, त्याग मे सन्तोष की शाति थी, निराकुलता का अद्‌भुत आनन्द था, आत्मरमण की स्पृहणीयता थी। इसी सुख का अनुभव करती हुई वे भिक्षुणिया अपने जीवन को दिव्य मानती थी। उनका त्याग महान था।

आप कितने भाग्यशाली हैं कि यह महान आदर्श आपके सामने उपस्थित है। आप पूर्ण रूप से अगर इस आदर्श पर नही चल सकते तो भी उसी ओर कदम तो वढा सकते हैं। कम-से-कम विपरीत दिशा मे तो न जाए ! मगर आप इस ओर कितना लक्ष्य देते है ? आपसे तो अभी

तक वारीक वस्त्रो का भी मोह नही छूट सकता। इन वस्त्रो के लिए चाहे किसी की चमडी जाती हो, पर आप पतले कपडे नही छोड सकते। अगर आप इतना सा भी त्याग नही कर सकते तो राजसी वैभव और राजसी भोगो का त्याग करने वाले सन्तो और ऐसी ही सतियो का चरित सुनकर क्या लाभ उठाएगे ? क्या आपको उन त्यागमूर्ति महासतियो का स्मरण भी आता है ?

महासेन कृष्णा विदुसेन कृष्णा,<br>
राम कृष्णा शुद्धमेवजी ।<br>
नित—नित वदू रे समणी,<br>
त्रिकरण—शुद्ध त्रिकालजी ।

कवि ने यह वन्दना किस काली को की है ? और आप यह वन्दना किस काली को कर रहे है ? भारत की इन महाशक्तियो को भगवान ने किस भाव से शास्त्र मे स्थान दिया है ? आप इन सतियो को किस प्रकार वन्दना कर सकते हैं ? सासारिक भोगो के प्रति हृदय मे जब तक तिरस्कार की भावना उत्पन्न न हो जाय तब तक मनुष्य इन्हे वन्दना करने का सच्चा अधिकारी किस प्रकार हो सकता है ? हम किसी के कहने से या भावावेग मे आकर उन सतियो के नाम पर चाहे मस्तक झुका ले, किन्तु वास्तव मे उन्हे वन्दना करने योग्य तभी समझे जाएगे, जब उनके त्याग को पहिचानोगे। उनके त्याग को पहचानकर वन्दना करने से आपके पाप जलकर भस्म हो जाएगे।

सेठानियां, सेठानियो को तो वहिन बनाती है मगर

किसी दिन किसी गरीबिनी को बहिन बनाया है ?

काली और सुकाली के हृदय मे अपना कल्याण करने की भावना उत्पन्न हुई । तब वे कहने लगी—यह राजमहल आत्मा के लिए कारागार है और बहुमूल्य आभरण हथकडिया-बेडिया है । इनके सेवन से आत्मा अशक्त बनता है, गुलाम बनता है । ऊपरी सजावट के फेर मे पडकर हम आन्तरिक सौन्दर्य को भूल जाते है । स्वाभाविकता की ओर अर्थात् आत्मा के असली स्वरूप की ओर हमारी दृष्टि ही नही पहुच पाती । ससार के भोगोपभोग और सुख के साधन असलियत को भुलाने वाले हैं । यह इतने सारहीन हैं कि अनादि काल से अब तक भोगने पर भी आत्मा इनसे तृप्त नही हो पाया । अनन्त काल तक भोगने पर भी भविष्य मे तृप्ति होने की सम्भावना नही है । अलबत्ता, इन्हे भोगने के दण्ड-स्वरूप नरक और तिर्यच गतियो के घोर कष्ट सहन करने पडते है । इन भोगविलासो के चक्कर मे पडने वाला स्वार्थी बन जाता है । वह अपनी ही सुख-सुविधा का विचार करता है और अपने दीन-दुखी पडौसी की तरफ नजर भी नही डालता ।

रानिया कहती है—जिन गरीबो की बदौलत हम राजरानी कहलाती है, उन्ही गरीबो को हमने भुला रखा है । यही नही, वरन एक प्रकार से उनके प्रति वैर-विरोध कर रखा है । राजमहल मे रहकर हम उन बहिनो से नही मिल सकती, जिन्होने हमे महारानी बनाया है । इन चकाचौंध करने वाले गहनो और कपडो के कारण वे हमारे पास नही आ सकती—नजदीक आते डरती है ।

काली का तप था ।

मित्रो ! आपके यहा ऐसी शक्तिया भरी पड़ी हैं । फिर भी न मालूम क्यो आपमे वल नही आता ! आप मेरी दी हुई मात्रा का सेवन करो । चाहे वह कटुक हो पर इससे रोग का अवश्य ही विनाश होगा, इसमे सन्देह नही ।

काली महासती अपने समस्त स्वर्गोपम सुखो को तिलाजलि देकर यह घोर तपस्या किस उद्देश्य से कर रही थी ?

कर्मक्षय करने के लिए !

यह उत्तर है तो ठीक, परन्तु आप पूरी तरह नही कह सकते । इस कारण इतनी-सी वात कहकर समाप्त कर देते हैं । कर्म का अर्थ दुष्कर्म समझना चाहिए । काली महासती विचारती है—मैंने उत्तम भोजन खाया और इसी कारण अनेक गरीबो को दुत्कारा, मुसीबत मे डाला और अधिक गरीव वनाया है । यही मेरा दुष्कर्म है । इसका वदला चुकाने के लिए उन्होने वढिया कपडो का और उत्तम भोजन का त्याग करके सादे कपडे और नीरस भोजन किया ।

काली महारानी सफल कियो अवतार ।
पायो छे भव—जल पार ।। काली० ।।
कोणिक राजा की छोटी माता,
श्रेणिक नृप नी नार ।
वीर जिणन्द की वाणी सुन ने,
लीनो है सयम—भार ।। काली० ।।

चन्दनबाला, सती मिली है गुरानी ।
नित-नित नमी चरणार, विनय कभी भणी,
अग इग्यारा जारी निर्मल बुद्धि अपार । काली० । १ ।

महासती काली कहती है कि मैंने बढिया भोजन खाकर और बढिया कपडे पहनकर बहुत लोगो के साथ परोक्ष रूप से विरोध किया । जिन गरीबो की कृपा से उत्तम वस्त्र और भोजन की प्राप्ति होती थी, उन गरीबो को मैंने धक्के दिलवाये और निकम्मे मसखरे लोग पडे-पडे माल खाते रहे । गरीबो के घोर परिश्रम के फलस्वरूप ही हमे दूध, घी, शक्कर और चावल आदि वस्तुएं प्राप्त होती थी, मगर जब उन्ही गरीबो मे से कोई मुट्ठी भर आटे की आशा से मेरे पास आता था तो उसे आटे के बदले धक्के मिलते थे कि दूध, घी और चावल-शक्कर खाने वालो को नजर न लग जाय ।

मैं जब बच्चा था तब भोजन करते समय अगर भीलनी आ जाती तो किवाड बन्द कर लिये जाते थे । इसका कारण यह था कि भीलनी को डाकिनी समझा जाता था । तारीफ यह है कि अनाज उन्ही के यहा से आता था । वही अनाज पैदा करते थे और उन्ही के प्रति ऐसी दुर्भावना किसी एक घर या एक कुटुम्ब मे नही थी वरन् व्यापक रूप से घर-घर फैली हुई थी । आज सोचता हू— समाज का यह कितना जबर्दस्त अन्याय है । कितनी भीषण कृतघ्नता है ।

अमीर लोग गरीबो को दुत्कारते हैं और दूसरे अमीर

अगर कोई स्त्री फटे-पुराने कपड़े पहनकर महारानी से मिलने जाना चाहे तो क्या पहरेदार उसे भीतर घुसने देंगे ? नही । अगर धक्के मारकर न भगा देंगे तो डाट-फटकार बताये बिना भी नही रहेगे । मगर रानी से पूछा जाय कि तुमने जो वस्त्र और आभूषण धारण किये हैं, वे आये कहा से है ? वे गरीबो के पसीने से ही बने हैं या राजा की तिजोरी मे उगे है ? रानी इस प्रश्न का क्या उत्तर देगी ?

यह बात सिर्फ रानी-महारानी पर ही लागू नही होती । बढ़िया और कीमती गहने-कपड़े पहनने वाला, फिर वह कोई भी क्यो न हो, बढ़िया गहने कपड़े वालो को ही चाहता है । उसे बिना जेवर का गरीब आदमी प्यारा नही लगता । यही विकार है । बढ़िया वस्त्रो मे और आभूषणो मे अगर विकार न हो तो भगवान महावीर को शायद ही सादा वेप चलाने की आवश्यकता पड़ती । जिसकी मैत्री-भावना विकसित हो गई है, उसी के हृदय मे इस प्रकार की सद्भावनाए जागृत होती है और वही वस्त्र-आभूषण का त्याग करता है ।

महारानी काली के हृदय मे मित्रभावना विकसित हुई । अतएव उन्होने विचार किया- मुझे अपनी सब बहिनो से समान रूप मे मिलना चाहिए । मेरे और उनके बीच मे जो बड़ी दीवार खड़ी है उसे मैं गिरा दूगी । मैं सारे भारत को जगाना चाहता हू और भेदभाव की काल्पनिक दीवारो को धूल मे मिला देना चाहती हू । यह विचार कर महारानी काली ने उत्तम वस्त्र उतारकर सादे वस्त्र

धारण किये इन्द्राणी सरीखा मनोहर शृंगार हटा दिया और जिस केशराशि को बड़े चाव से सजाया करती थी और सुगन्धित तेल-फुलेल से नहलाया करती थी, उसी केशराशि को नौंचकर फेंक दिया। उन्होंने स्वदेश की बनी सादी खादी से अपना शरीर सजा लिया। महारानी काली ने साध्वी होकर सफेद वस्त्र धारण किये।

आज अगर कोई विधवा बाई भी सफेद वस्त्र धारण कर लेती है तो होहल्ला मच जाता है। काली रानी का वह तेज आज बहिनो मे नही रहा। न जाने कब और कैसे गायब हो गया है।

आखिर काली रानी ने ससार त्याग दिया। ससार त्यागकर उन्होने जो अवस्था अपनाई, वह वर्णनातीत है। महाकृष्णा काली नामक सती ने आबिल तपस्या करना आरम्भ किया। चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिनो तक आबिल तप करके उन्होने अपनी कोमल और कान्त काया को झुलसा डाला। एक उपवास और उसके बाद आबिल, फिर उपवास और दूसरे दिन फिर आबिल, इस प्रकार उनकी तपस्या निरन्तर जारी रही।

'आविल' प्राकृत भाषा का शब्द है। सस्कृत मे इसे 'आचाम्ल' व्रत कहते हैं। इस व्रत का अनुष्ठान करने वाला सरस भोजन का त्याग करके नीरस और नमकहीन रूखा-सूखा भोजन करता है। पके हुए चावलो को पानी से धोकर उन्हे स्वादहीन बनाकर दिन भर मे एक बार खा लेना और फिर दूसरे दिन उपवास करना, यह महासती

काली का तप था ।

मित्रो ! आपके यहा ऐसी शक्तिया भरी पडी है । फिर भी न मालूम क्यो आपमे वल नही आता ! आप मेरी दी हुई मात्रा का सेवन करो । चाहे वह कटुक हो पर इससे रोग का अवश्य ही विनाश होगा, इसमे सन्देह नही ।

काली महासती अपने समस्त स्वर्गोपम सुखो को तिलाजलि देकर यह घोर तपस्या किस उद्देश्य से कर रही थी ?

कर्मक्षय करने के लिए ।

यह उत्तर है तो ठीक, परन्तु आप पूरी तरह नही कह सकते । इस कारण इतनी-सी वात कहकर समाप्त कर देते हैं । कर्म का अर्थ दुष्कर्म समझना चाहिए । काली महासती विचारती है—मैंने उत्तम भोजन खाया और इसी कारण अनेक गरीवो को दुत्कारा, मुसीवत मे डाला और अधिक गरीव वनाया है । यही मेरा दुष्कर्म है । इसका वदला चुकाने के लिए उन्होने वढिया कपडो का और उत्तम भोजन का त्याग करके सादे कपडे और नीरस भोजन किया ।

काली महारानी सफल कियो अवतार ।
पायो छे भव—जल पार ।। काली० ।।
कोणिक राजा की छोटी माता,
श्रेणिक नृप नी नार ।
वीर जिणन्द की वाणी सुन ने,
लीनो है सयम—भार ।। काली० ।।

चन्दनबाला, सती मिली है गुरानी ।
नित-नित नमी चरणार, विनय कभी भणी,
अग इग्यारा जारी निर्मल बुद्धि अपार। काली०। १।

महासती काली कहती है कि मैंने बढिया भोजन खाकर और बढिया कपडे पहनकर बहुत लोगो के साथ परोक्ष रूप से विरोध किया। जिन गरीबो की कृपा से उत्तम वस्त्र और भोजन की प्राप्ति होती थी, उन गरीबो को मैंने धक्के दिलवाये और निकम्मे मसखरे लोग पड़े-पडे माल खाते रहे। गरीवो के घोर परिश्रम के फलस्वरूप ही हमे दूध, घी, शक्कर और चावल आदि वस्तुए प्राप्त होती थी, मगर जब उन्ही गरीबो मे से कोई मुट्ठी भर आटे की आशा से मेरे पास आता था तो उसे आटे के वदले धक्के मिलते थे कि दूध, घी और चावल-शक्कर खाने वालो को नजर न लग जाय।

मैं जब बच्चा था तब भोजन करते समय अगर भीलनी आ जाती तो किवाड बन्द कर लिये जाते थे। इसका कारण यह था कि भीलनी को डाकिनी समझा जाता था। तारीफ यह है कि अनाज उन्ही के यहा से आता था। वही अनाज पैदा करते थे और उन्ही के प्रति ऐसी दुर्भावना किसी एक घर या एक कुटुम्ब मे नही थी वरन् व्यापक रूप से घर-घर फैली हुई थी। आज सोचता हू— समाज का यह कितना जबर्दस्त अन्याय है। कितनी भीषण कृतघ्नता है।

अमीर लोग गरीबो को दुत्कारते हैं और दूसरे अमीर

उसकी और ध्यान देने की फुर्सत ही कहा ? आजकल के लोगो मे क्षुद्र, सकीर्ण और स्वार्थमय भावना घुसी हुई है, तिस पर भी धर्म के नाम पर इसी प्रकार का उपदेश मिल जाता है। बडे खेद की वात है कि लोगो को यह धर्म सिखलाया जा रहा है कि—

कोई भेखधारी आवे द्वार जी,
शर्मा-शर्मी दीजे आहार जी।
पछे कीजे पश्चात्ताप जी,
तो थोडो लागे पाप जी ॥

खेद ! धर्म के नाम पर कैसा हलाहल विप पिलाया जा रहा है। अगर द्वार पर आये हुए को लोकलाज के कारण भोजन दिया तो घोर पाप लग जाएगा। अलवत्ता, भोजन देकर अगर पश्चात्ताप कर लिया जाय तो पाप मे कुछ कमी हो जाएगी ! स्वार्थपरता की हद हो गई ! धर्म के नाम पर यह जो शिक्षा दी गई है और दी जा रही है, उससे धर्म को कितना आघात पहुच रहा है, यह समझने की चिन्ता किसे है ? इससे लोग धर्म अगर इतनी निर्दयता, कठोरता, स्वार्थपरायणता और अमानुपिकता की शिक्षा देता है तो धर्म का ध्वस हो जाना ही जगत के लिए श्रेयस्कर है ! भाइयो, जरा उदारतापूर्वक विचार करो। धर्म के मौलिक तत्त्व को व्यापक दृष्टि से देखो। द्वेष से प्रेरित होकर हम यह नही कह रहे है, परन्तु धर्म के प्रति फैलती हुई घृणा का विचार करके और साथ ही लोगो मे आई हुई अनुदारता का ख्याल करके कह रहे हैं। यह धर्म नही है।

धर्म के नाम पर अधर्म फैलेगा तो धर्म बदनाम होगा। अधर्म फैलाने वालो का भी हित नही होगा। अतएव निष्पक्ष दृष्टि से धर्म के स्वरूप पर विचार करो। धर्म ही पापो का नाश करने वाला है। अगर धर्म के ही नाम पर पाप किया जाएगा और उसी को धर्म समझ लिया जाएगा तो पापो का नाश किस प्रकार होगा ?

आपने अपने सम्बन्धियो को अनेक बार भोजन कराया होगा, पर क्या याद आता है कि किसी दिन किसी गरीब को स्नेही सम्बन्धियो की तरह जिमाया हो ?

नही।

लेकिन पुण्य किधर होता है ? अपनी श्रीमंताई दिखाने के लिए सगे को जबर्दस्ती खिलाने से पुण्य का बध होता है या गरीब के प्राण बचाने के लिए उसे खिलाने से ?

भूखे को खिलाने से।

यह जानते और मानते हुए भी अपनी प्रवृत्ति को बदलते क्यो नही ? फिर कहते हो कि हम पुण्य और पाप को जानते हैं ?

बात काली महारानी की चल रही है। उनके अन्त-करण मे यह भावना उत्पन्न हुई कि मैंने उत्तम-उत्तम भोजन किये परन्तु गरीबो को देना तो दूर रहा, उल्टे उनकी नजर पडने से बचाव किया। अलबत्ता, मैंने अपनी सरीखी रानियो को बडे प्रेम से जिमाया है, पर उससे क्या हुआ ? वह तो मोह था या लोकव्यवहार था, दया नही थी। हृदय मे दया होती तो भूखे को खिलाया होता। मैंने यह पाप

के आने पर उसकी मनुहार करते है । अपने पाप का प्रायश्चित्त करते हुए एक महाराष्ट्रीय कवि ने कहा है—

उत्तम जन्मा येऊनी रामा ! गेलो मी वाया
दुष्ट पातकी शरण मी आलो,
सत्वर तव पाया ।
आर्जविले वहुलवण भजने च्याह्या जेवाया
खुधित अतिथि कदी नाही घेतला,
उदार कर कधी केला नाही प्रेमे जेवाया पैसा एक द्याया
नाम फुटकने तेहिन आले स्वामी वदनाया ।। उत्तम० ।।१।।

कवि कहता हैं—मैंने उत्तम जन्म व्यर्थ गवा दिया । मेरा नाम उत्तम है, जन्म उत्तम कुल में हुआ है, परन्तु काम मैंने अधम किये । इस कारण मैं पातकी हूं ।

मित्रो ! जिसे आत्मा और परमात्मा पर विश्वास होगा, वही अपना अपराध स्वीकार करेगा उसके लिए पश्चात्ताप करेगा और उससे वचने की भावना भाएगा ।

कवि परमात्मा के सामने अपनी आलोचना करता हुआ कहता है—प्रभो ! मैं आपकी शरण आया हूं । मेरी रक्षा करो । मैंने अपने सगे-सम्बन्धियो को पाहुने वनाकर जिमाने की वड़ी-वडी तैयारिया की । तरह–तरह के व्यजन और मिष्ठान तैयार करवाए । वे जीमने वैठे । जीमते–जीमते तृप्त हो गए और कहने लगे—वस, अव मत परोसिये । अव एक कौर भी नही निगल सकता । लेकिन वडप्पन के मद मे छककर मैं नही माना । थोड़ा और खाने

का आग्रह किया । न माने तो जबर्दस्ती करके थाल मे भोजन डाल दिया । फिर पकडकर मुंह मे खिलाया । उसी समय क्षुधा से पीडित एक व्यक्ति मेरे द्वार पर आया । भूख से उसकी आखे निकल रही थी, बिना मास के हाडो का पीजरा सरीखा उसका शरीर दिखाई देता था । जिस समय सगे-सम्बन्धी भोजन परोसने के लिए मना कर रहे थे और मैं जबर्दस्ती उन्हे परोसने मे लगा था, ठीक उसी समय वह भूखा द्वार पर आया । उसने कहा – मेरे प्राण अन्न के अभाव मे भूख के मारे जा रहे है । अगर थोडा भोजन हो तो दे दो । परन्तु हाय मेरी कठोरता ! मैंने टुकडा भी देने की भावना नही की और सगे-सम्बन्धी के गले मे ठूसने मे ही व्यस्त रहा ।

मित्रो ! कवि ने अपने पाप का प्रदर्शन किया है और ऐसा करके उसने अपने पाप को हलका कर लिया है, ऐसा समझ लेना उपयुक्त नही होगा । कवि जनता की भावनाओ का प्रतिनिधि होता है । वह समाज की स्थिति का शाब्दिक चित्रण करता है । अतएव उसका कथन समाज का चित्र समझना चाहिए । इस दृष्टि से मराठी कवि का उपर्युक्त कथन सारे समाज का चित्रण है—सम्पूर्ण समाज के पाप का दिग्दर्शन है । आप अपने ऊपर इस कथन को घटाइये । अगर आप पर यह घटित हो तो आप भी अपने दुष्कर्मो की आलोचना कीजिए और उनसे बचने का दृढ सकल्प कीजिए ।

भूख के कारण जिसके प्राण निकल रहे है, उसे एक टुकडा मिल जाय तब उसके लिए बहुत है । मगर लोगो को

उसकी और ध्यान देने की फुर्सत ही कहा ? आजकल के लोगो मे क्षुद्र, सकीर्ण और स्वार्थमय भावना घुसी हुई है, तिस पर भी धर्म के नाम पर इसी प्रकार का उपदेश मिल जाता है। बडे खेद की बात है कि लोगो को यह धर्म सिखलाया जा रहा है कि—

कोई भेखधारी आवे द्वार जी,
शर्मा-शर्मी दीजे आहार जी।
पछे कीजे पश्चात्ताप जी,
तो थोडो लागे पाप जी ॥

खेद! धर्म के नाम पर कैसा हलाहल विष पिलाया जा रहा है। अगर द्वार पर आये हुए को लोकलाज के कारण भोजन दिया तो घोर पाप लग जाएगा। अलवत्ता, भोजन देकर अगर पश्चात्ताप कर लिया जाय तो पाप मे कुछ कमी हो जाएगी! स्वार्थपरता की हद हो गई! धर्म के नाम पर यह जो शिक्षा दी गई है और दी जा रही है, उससे धर्म को कितना आघात पहुच रहा है, यह समझने की चिन्ता किसे है? इससे लोग धर्म अगर इतनी निर्दयता, कठोरता, स्वार्थपरायणता और अमानुषिकता की शिक्षा देता है तो धर्म का ध्वस हो जाना ही जगत के लिए श्रेयस्कर है! भाइयो, जरा उदारतापूर्वक विचार करो। धर्म के मौलिक तत्त्व को व्यापक दृष्टि से देखो। द्वेष से प्रेरित होकर हम यह नही कह रहे है, परन्तु धर्म के प्रति फैलती हुई घृणा का विचार करके और साथ ही लोगो मे आई हुई अनुदारता का ख्याल करके कह रहे है। यह धर्म नही है।

धर्म के नाम पर अधर्म फैलेगा तो धर्म बदनाम होगा। अधर्म फैलाने वालो का भी हित नही होगा। अतएव निष्पक्ष दृष्टि से धर्म के स्वरूप पर विचार करो। धर्म ही पापो का नाश करने वाला है। अगर धर्म के ही नाम पर पाप किया जाएगा और उसी को धर्म समझ लिया जाएगा तो पापो का नाश किस प्रकार होगा?

आपने अपने सम्बन्धियो को अनेक बार भोजन कराया होगा, पर क्या याद आता है कि किसी दिन किसी गरीब को स्नेही सम्बन्धियो की तरह जिमाया हो?

नही।

लेकिन पुण्य किधर होता है? अपनी श्रीमंताई दिखाने के लिए सगे को जबर्दस्ती खिलाने से पुण्य का बध होता है या गरीब के प्राण बचाने के लिए उसे खिलाने से?

भूखे को खिलाने से।

यह जानते और मानते हुए भी अपनी प्रवृत्ति को बदलते क्यो नही? फिर कहते हो कि हम पुण्य और पाप को जानते हैं?

बात काली महारानी की चल रही है। उनके अन्त -करण मे यह भावना उत्पन्न हुई कि मैंने उत्तम-उत्तम भोजन किये परन्तु गरीबो को देना तो दूर रहा, उल्टे उनकी नजर पडने से बचाव किया। अलबत्ता, मैंने अपनी सरीखी रानियो को बडे प्रेम से जिमाया है, पर उससे क्या हुआ? वह तो मोह था या लोकव्यवहार था, दया नही थी। हृदय मे दया होती तो भूखे को खिलाया होता। मैंने यह पाप

किया है । मै इस पाप को सहन नही करूंगी अब मैं ऐसा भोजन करूंगी जिसे गरीब भी पसन्द नही करते । ऐसा भोजन करके मैं ससार को दिखला दूंगी कि इस पाप का प्रायश्चित्त ऐसे होता है ।

मित्रो ! बढिया भोजन की अपेक्षा सादा भोजन करने से दया कितनी अधिक हो सकती है, इस बात पर विचार करो । आपके घर बाजरे की घाट बनी होगी और वह बची रहेगी तो किसी गरीब को देने की इच्छा हो जाएगी । अगर दाल का हलुआ बचा होगा तो शायद ही कोई देना चाहेगा ! उसे तो किसी सम्बन्धी के घर भेजने की इच्छा होगी । इसीलिए तो कहा है—

दया धर्म पावे तो कोई पुण्यवत पावे,
जाने दया की बात सुहावे जी ।
भारी कर्मो अनन्त ससारी,
जाने दया दाय नही आवे जी ।।

विचार करो कि पुण्यवान कौन है ? मिष्ठान्न-भोजन करने वाला और अपने भोजन के लिए अनेको को कष्ट मे डालने वाला पुण्यवान है या सादा भोजन करके दूसरो पर दया करने वाला पुण्यवान है ? सुनते है भारतीयों की आमदनी डेढ आना प्रतिदिन है । इसे देखते हुए अगर प्रत्येक आदमी डेढ आने मे अपना निर्वाह करे तब तो सब को भोजन मिल सकता है, लेकिन आप कितने आने प्रतिदिन खर्च करते है ? आपका काम तीन आने, छह आने या बारह आने मे भी चल जाता है ?

नही ।

अगर कोई चलाना चाहे तो चल क्यो नही सकता ? हा, इतने व्यय मे वह मौज-शौक नही होगी, जो अभी आप कर रहे हैं । जब प्रति मनुष्य डेढ आने की दैनिक आय है तो तीन आने खर्च करने वाला एक आदमी को, छह आना खर्च करने वाला सात आदमियो को भूखा रखता है ! इससे स्पष्ट है कि अमीर लोग ज्यो-ज्यो अधिक मौज करते हैं, त्यो-त्यो गरीब ज्यादा तादाद मे भूखे मरते है ? एक लम्बी-चौडी दरी को समेटकर उस पर एक ही आदमी बैठ जाय और दूसरे को नही बैठने दे तो क्या बडप्पन समझा जायगा ? बडप्पन तो औरो को बिठलाने मे है ।

काली रानी कहती है मेरे गले मे वह अन्न कैसे उतरा जिसके लिए अनेक मनुष्यो को कष्ट मे पडना पडा !

इस राजसत्ता ने कैसे-कैसे अनर्थ किये हैं । जब मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत हो जाता है, उसे न्याय–अन्याय, धर्म–अधर्म कुछ नही सूझता । एक हार और एक हाथी के लिए एक करोड अस्सी लाख मनुष्यो का घमासान हो गया ! लडाई तो अपनी मौज के लिए करे और नाम प्रजा की रक्षा हो !

महासती महासेन कृष्णा एक आविल, एक उपवास, इस प्रकार क्रमश आविल करती-करती सौ आविल तक चढ गई । चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिन मे उन्होने अपना शरीर सुखा डाला ।

काली महासती राजरानी थी। साध्वी के वेश में जब वे लोगो के घर भिक्षा के लिए जाती होंगी, तब लोगो में त्याग के प्रति कितनी स्पृहा होती होगी? लोग त्याग के प्रति कितनी आदरभावना अनुभव करते होगे? एक राज-रानी राजसी वैभव को ठुकराकर, भोगोपभोगो से मुंह मोड़-कर वस्त्रो और आभूषणो को छोडकर जव साध्वी का वेप अंगीकार करती है, तो संसारर को न मालूम कितना उच्च और महान् आदर्श सिखलाती है।

## २० : नयन-दान

महाभारत मे एक कथा है । एक तपस्वी जगल मे रहता था और भिक्षा के लिए नगर मे आया करता था । एक दिन वह जिस स्त्री के घर भिक्षा लेने गया, उस स्त्री की आखो पर मुग्ध हो गया । वह बार-बार उसी के घर भिक्षा लेने पहुचने लगा । स्त्री चतुर थी । वह समझ गई कि तपस्वी वार-बार मेरे घर भिक्षा लेने आता है तो कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य होना चाहिए । आखिर उसने तपस्वी से पूछ ही लिया—महाराज ढिठाई के लिए क्षमा कीजिए । मैं यह जानना चाहती हू कि आप बार-बार मेरे यहा भिक्षा लेने क्यो आते है ? क्या दूसरी जगह आपको भिक्षा नहीं मिलती ?

आज असत्य का साम्राज्य फैल गया है । लोग असत्य को 'नीति' समझने लगे हैं। मानो असत्य बोलना कोई पाप ही नही है ! किन्तु प्राचीन काल के लोग असत्य भाषण करना बडा पाप मानते थे । अतएव उस स्त्री के प्रश्न के उत्तर मे तपस्वी ने स्पष्ट कह दिया—मै तुम्हारे नेत्रो पर मुग्ध हू । तुम्हारे कमल के समान नेत्रो को देखने के लिए ही बार-बार यहा आता हू ।

स्त्री ने कहा—अच्छा, यह बात है ? आप कल फिर आना ।

तपस्वी बोला मैं तो बिना निमन्त्रण ही आया करता हू, तो फिर निमन्त्रण पाकर क्यो नही आऊंगा ?

दूसरे दिन उस स्त्री ने अपने दोनो नेत्र निकालकर एक पत्ते पर रख लिये । जब तपस्वी आया तो उसे नेत्र देती हुई बोली–आप जिन नेत्रो पर मुग्ध हुए है, वे नेत्र आपके चरणो मे भेट धरती हू । आज भिक्षा मे इन्हे भी लेते जाइए ।

नेत्र वाहर निकाल लेने से उनका खाली स्थान और निकाले हुये दोनो नेत्र बडे भयानक दिखाई देते थे । वास्तव मे जिन आखो को कमल के समान समझा जाता है, वे मास के लोथ के सिवाय और क्या हैं ?

स्त्री ने कहा—ये नेत्र बडे अनर्थकारी है । इन्होने आप जैसे तपस्वी को भी मोह मे फसा दिया !

यह दृश्य और स्त्री का कथन देख-सुनकर तपस्वी के पैरो तले की जमीन खिसक गई । उसके हृदय मे घोर अन्तर्द्वन्द्व मच गया । उसने कहा—माता, तुमने मेरी आत्मा को पवित्र करने के लिए कितना वडा त्याग किया है ? अपराध मेरा था और प्रायश्चित्त तुमने किया ? मुझे क्षमा करना ।

इतना कह कर तपस्वी लौटने लगा । तब उस स्त्री ने कहा—इन नेत्रो को तो साथ लेते जाइए ।

तपस्वी अब उन नेत्रो का क्या करता ? वह सीधा

जगल मे भाग गया । उस दिन से उसने प्रण कर लिया कि अब भूल कर भी मैं नगर मे नही जाऊ गा। जंगल मे जो मिल जायगा, उसीसे अपना निर्वाह कर लू गा ।

साधारण लोग अपने दोषो की तरफ दृष्टिपात नही करते किन्तु जो विवेकवान है वह अपने ही दोष देखता है, दूसरो के दोष नही देखता । यही नही, वह दूसरे के अपराध के लिए आप प्रायश्चित करता है ।

# २१ : अहो-सुखम्

काशी मे कुछ तापस चौमासा करने आए । उनमे एक तापस बूढा था और राजा उसका भक्त था । जव चौमासा पूरा हुआ और तापस हिमालय की ओर जाने लगे, तव राजा ने वृद्ध तापस से कहा—आप वृद्ध है । पर्वत चढने मे आपको कष्ट होगा । इसलिए आप यही वाग मे रह जाइए और अपने शिष्यो को तपस्या करने भेज दीजिए ।

तपस्वी ने विचार किया—वृद्धावस्था के कारण वास्तव मे मुझे चढने-उतरने मे वडा कष्ट होता है तो मैं यही क्यो न रह जाऊ ? और वह वही रह गया । अपने शिष्यो को हिमालय की ओर भेज दिया ।

वडे शिष्य की देख-रेख मे सव शिष्य तपस्या करते थे । एक वार एक शिष्य को गुरु से भेंट करने की इच्छा हुई । वह काशी आया । जव गुरु के स्थान के समीप पहुचा तो शाम का समय हो गया था और वह वेहद थक भी गया था । इस कारण सीधा गुरु के पास न जाकर वह गुरु के स्थान के वाहर की एक चवूतरी पर सो गया ।

काशी का राजा उसी समय तपस्वी के दर्शन करने आया । राजा के साथ हाथी-घोड़े और लाव-लश्कर होते ही

है। इन सबके कोलाहल से शिष्य की नीद खुल गई। शिष्य ने उठकर राजा को देखा और फिर आखें मूदकर पड़ गया और कहने लगा—

**अहो सुखं, अहो सुखं, अहो सुखम्।**

वह शिष्य राजा को पास आया देखकर भी नही उठा। राजा सोचने लगा—यह कितना अशिष्ट है कि मुझे देखकर भी पडा रहा। और फिर यह निर्लज्जता कि 'अहो सुख, अहो सुखं' कर रहा है! इसके लिए उठ कर बैठना ही मुश्किल है तो यह तपस्या क्या करता होगा? राजा ने सोचा—ऐसे-ऐसे लोग भी है जो घर छोडकर भी खाकर पडे रहते है।

राजा ने जाकर वृद्ध तापस से भेंट की। फिर उसने पूछा—कोई नया तापस भी आया है?

गुरु को उसके आने का पता चल गया था। अतएव उन्होने कहा—हां, आया तो है।

राजा—वही तो नही, जो बाहर पडा है?

गुरु—हा, वही है।

राजा आश्चर्य है कि जिन्हे उठकर बैठना भी कठिन है, वे क्या तपस्या करते होगे? जान पडता है—खाया बहुत है, इसीसे पडा है और 'अहो सुख, अहो सुख' रट रहा है। परन्तु आपने ऐसे आदमी को अपना चेला कैसे बना लिया जो खाने मैं ही सुख माने।

राजा का प्रश्न सुनकर वृद्ध तापस हंसा। राजा को

वृद्ध तापस की इस हसी पर आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—आप हसे क्यो ?

तापस—राजन् ! तुम उसे पहचानते नही हो। तुमने उसका भेद नही जाना। भेद को पाये विना अपनी सम्मति वना लेना मूर्खता है। अज्ञानता उसमे नही, तुममें है।

राजा—क्या मेरी कोई भूल है ?

तापस—हा, पर क्या भूल है, यह तुम नही जानते। एक दिन वह भी तुम्हारे ही समान राज्य और ऐश्वर्य का स्वामी था। परन्तु ससार की यह उपाधि, जो तुझे आनन्द देने वाली जान पडती है, उसे दु ख रूप प्रतीत हुई। उसे वह जजाल प्रतीत हुआ। वह सोचने लगा—कव मेरे सिर से यह वोझ हट जाय !

किसी के सिर पर दो-चार मन का वोझ हो और वह हट जाय तो आनन्द होता है। उस आनन्द को वही समझ सकता है, जिसके सिर से वोझ उतरा हो।

इस प्रकार राज्य के भार से घवराकर उसने उसका त्याग कर दिया है और मेरा शिष्य वन गया है। हिमालय से चलकर वह आज सध्या को ही यहा पहुचा है। तुम्हे देखकर उसने सोचा होगा—मैंने अपने सिर का वोझा हटा दिया, इस कारण मैं आनन्द मे सो रहा हू। इस राजा को मेरे जैसा आनन्द कहा ?

एक आदमी आग मे जल रहा और दूसरा वाहर

खडा है। जो बाहर खडा है वह उस जलते हुए को देखकर सोचता है कि मैं आनन्द मे हूं। उस समय वह समझता है कि आग मे जलने वाले को ताप मे कितना दुख है और अग्नि से बाहर रहने वाले को कितना सुख होता है! और जब अग्नि से बाहर रहने वाला स्वय कभी आग से जल चुका हो तब तो वह स्पष्ट रूप से दोनो अवस्थाओ की तुलना कर लेता है। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष अपने जीवन की आलोचना और तुलना करके देखते है। तब उन्हे मालूम होता है कि वे कितने सुखी है।

राजन्! उस शिष्य ने इसीलिए 'अहो सुखं, अहो सुख' कहा था। वह इस ससार को तुच्छ समझता है। पर तुमने उलटा अर्थ किया।

राजा ने यह जानकर वृद्ध तापस से क्षमायाचना की। उसने उस तापस से भी उपदेश सुना। उसे शान्ति मिली।

मित्रो! जिन तापसो को पूर्ण ज्ञान नही मिला, उन्हे भी 'अहो सुखम्' की भावना उत्पन्न होती है। वे भी ससार के प्रपचो को त्याग कर शान्ति का अनुभव करते हैं तो जिन्होने महाव्रत ग्रहण कर लिये हैं, जो त्याग की चरम सीमा पर पहुच चुके है, उन्हे कितना सुख होगा, इस बात को विचारो और शाति प्राप्त करने का प्रयत्न करके जीवन को सफल बनाओ।
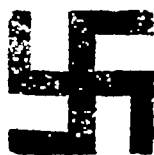
# २२ : अवांछित विवाह-सम्बन्ध

लंका के प्रचण्ड प्रतापशाली सम्राट् रावण का नाम किसने नही सुना ? वह एक बार दिग्विजय के लिए निकला। दिग्विजय करते-करते वह एक नगरी मे पहुचा। वहा कुबेर नामक राजा राज्य करता था। राजा कुबेर बड़ा ही चतुर था। उसके सामने रावण की दाल न गली। रावण उसे पराजित नही कर सका। कुबेर 'असालिका' नामक विद्या जानता था। उस विद्या की सहायता मे वह नगरी के चारो ओर अग्नि का कोट बना देता था। इसी विद्या के प्रताप से उसकी नगरी अजेय बनी रही।

रावण को बडी निराशा हुई, लेकिन वह भाग्यवान था, अत विजय का एक मार्ग निकल आया।

कुबेर की एक रानी रावण को पहले ही चाहती थी। उसके माता-पिता भी रावण के साथ उसका विवाह करना चाहते थे पर रावण दिग्विजय के लिए निकल पडा था, इस कारण उसके पिता ने राजा कुबेर के साथ उसका विवाह कर दिया। फिर भी वह हृदय से रावण को चाहती थी।

रानी ने देखा कि रावण को विजय नही मिल रही

है और वह निराश हो रहा है। जिस विद्या के कारण रावण को विजय नही मिल रही है, उसकी चाबी मेरे हाथ में है, जो मेरे पति ने मुझे प्रसन्न करने के लिए बतलाई है। अगर रावण मुझे अपना लेना स्वीकार कर ले तो मैं उसे विजय बना सकती हू।

अनिच्छित विवाह का परिणाम कैसा होता है, यह बात इस घटना से स्पष्ट मालूम हो जाती है। कुबेर की वह पत्नी रावण के साथ विवाह करना चाहती थी, फिर भी उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध कुबेर के साथ कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि रानी अपने पति के साथ बडे-से-बडा धोखा करके, ऐसे समय रावण से मिलने के लिए तैयार हुई जबकि वह पति का शत्रु बनकर आया था।

रानी ने दासी के साथ रावण के पास सदेश भेजा—अगर आप मुझे स्वीकार करे और अपनी पत्नी बनाले तो मैं आपको विजयी बना सकती हू। जिस विद्या के प्रताप से नगरी के चारो बाजू अग्नि का कोट बन जाता है, उसकी चाबी मुझे मालूम है। दासी यह सदेश लेकर गुप्त रूप से रावण के पास गई। उसने सदेश सुनाया। रावण पहले बडा नीतिमान और धर्मनिष्ठ था। उसने रानी के प्रस्ताव को यह कह कर अस्वीकार कर दिया—विजय प्राप्ति के लिए मैं इस प्रकार का निन्दनीय काम नही कर सकता। विजय हो, चाहे न हो, पर मैं इसके लिए परस्त्री को स्वीकार नही कर सकता।

रावण का स्पष्ट उत्तर सुनकर दासी चुपचाप लौट

गई। विभीपण ने देखा—यह दासी आई तो प्रसन्न वदन थी, मगर जा रही है उदास होकर। उसका कारण पूछना चाहिए। विभीपण ने उस दासी को अपने पास बुलाकर पूछा—क्यो, उदास होकर क्यो जा रही हो?

दासी ने सुकुचाते हुए सारी घटना विभीषण से कही। तव विभीषण वोले—रावण क्या समझे? तुम जाओ और रानी से कह दो कि विभीषण उन्हे अपनी भाभी वनाने के लिए तैयार है।

दासी ने महल मे जाकर रानी से सव हाल कहा। रानी ने प्रसन्न होकर विचार किया—जव विभीषण मुझे अपनी भाभी वनाने के लिए तैयार है तो फिर चहिए ही क्या?

इधर रावण ने विभीपण से कहा—क्या तुम मुझे भ्रष्ट करने के लिए तैयार हुए हो? क्या तुम परस्त्री के साथ मेरा सम्वन्ध जोड़ना चाहते हो?

विभीषण वोले—आप इस विषय मे चिन्ता न कीजिए। ऐसा कदापि नही होगा। यह तो राजनीति का एक खेल है। राजनीति मे अनेक उपायो से काम निकालना पडता है।

आखिर रानी विभीपण के पास आ पहुची। विभीषण ने रानी से कहा—मैं आपको भाभी मानता हू। असालिका विद्या की चावी आप मुझे वतला दीजिए।

भोली रानी ने समझा—विभीषण जव मुझे भाभी

मानते है तो रावण के साथ विवाह होने मे अब क्या मीन-मेख हो सकती है ? बस, रानी ने वह चावी विभीषण को वतला दी और विभीषण ने नगरी पर विजय प्राप्त कर ली।

विजयी होने के वाद रानी ने विभीषण से कहा—अव आपके भाई के साथ मेरा विधिपूर्वक विवाह हो जाना चाहिए।

विभीषण ने कहा मैंने आपको भाभी कहा है तो क्या आपको भूल जाऊगा। मगर मै आपको ऐसे मार्ग पर चलते नही देख सकता जो मेरा माता के लिए योग्य न हो। मेरी भाभी किसी भी प्रकार का निन्दनीय कार्य नही कर सकती। अगर मैं आप का सम्वन्ध अपने भाई के साथ कर दू तो भी आप उनकी उपपत्नी ही कहलाएगी। अतएव आपका भला इसीमे है कि आप यह विचार त्याग दे। मैं आपके लिए ऐसी व्यवस्था किये देता हू कि कुबेर राजा आपका आदर करेगे और आप मेरी भाभी भी बनी रहेगी।

पराजय होने के वाद राजा कुबेर को पता चला कि महल मे से रानी गायब है ! उसे समझते देर न लगी कि इस पराजय का कारण रानी ही है। वह इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि विभीषण उसके पास पहुचे। उन्होने कहा—भैया, किस विचार मे डूबे हो ? अपने लिए विभीषण द्वारा कहा हुआ 'भैया' विशेषण सुनकर कुबेर वहुत प्रसन्न हुआ उसने विभीषण का यथोचित आदर करके विठलाया और विचार किया—यह मेरे शत्रु के भाई होकर भी कितने मीठे शब्द वोल रहे हैं और उधर उस दगावाज

रानी को देखो, जो सब तरह से मेरी होकर भी मेरे साथ विश्वासघात कर गई है।

विभीषण ने प्रेमपूर्ण स्वर मे कहा—आप इस विषय मे अधिक विचार करके परेशान न हों। आपने रानी के मन को सन्तुष्ट और प्रसन्न नही किया। इस कारण अगर यह परिणाम आया तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? मगर जो हुआ सो हुआ। मैं आपकी पत्नी को यहा बुलाये लेता हू। आप हृदय से उनका आदर कीजिए। इससे आपकी अप्रतिष्ठा भी न होगी और उनका धर्म भी न जायगा।

कुवेर ने विभीषण की सलाह स्वीकार कर ली। साथ ही वादा किया—अब मैं उसके साथ अच्छा व्यवहार करूंगा।

विभीषण—ठीक है। इस घटना को भूल जाइए। समझ लीजिए, घटना घटी ही नही है।

विभीषण ने राजा और रानी का सम्बन्ध फिर स्थापित कर दिया।

विना मन का विवाह समाज के लिए भयानक अभिशाप है।

# २३ : स्वर्ग की चाह

एक बार महाराज श्रेणिक ने अपने बुद्धिमान् पुत्र और मन्त्री अभयकुमार से पूछा—सब की आत्मा क्या चाहती है ?

अभयकुमार ने कहा–सब कल्याण चाहते है महाराज !
श्रेणिक—फिर कल्याण होता क्यो नही है ? जब सभी कल्याण चाहते है तो फिर कल्याण न होने का कारण क्या है ?

अभय—लोग जिसको चाहते है, उसको नही करते और जिसको नही चाहते, उसको करते है। ऐसी अवस्था मे कल्याण बेचारा क्या करे ?

श्रेणिक—वाह ! क्या सारी दुनिया मूर्ख है कि जो चाहती है, सो नही करती और जो नही चाहती, सो करती है ?

अभय—इसके लिए मैं प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित करूंगा।

कुछ दिन बाद अभयकुमार ने दो महल खाली करवाए। एक को बिलकुल काला रगवाया और दूसरे को एकदम ऐसा सफेद कि देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाय। महलो को रगवाकर अभयकुमार ने शहर मे ढिंढोरा पिटवाया कि जो धर्मात्मा हो और जिसे स्वर्ग मे जाने की इच्छा हो, वह

सफेद महल मे जावे और जो पापी हो और स्वर्ग न जाना चाहता हो, वह काले महल मे जावे ।

शहर के सब लोग सफेद महल मे भर गये । भला काले महल मे जाकर पापी कौन बनें ? फिर भी एक आदमी उस काले महल मे भी गया ।

महाराज श्रेणिक को साथ लेकर अभयकुमार सफेद महल मे आये । दोनो एक-एक सिंहासन पर बैठ गये । हुक्म दिया गया कि महल मे-से एक-एक निकले ।

सबसे पहले एक वेश्या निकली । अभयकुमार ने उससे पूछा—तुम भी यहा आई हो ?

वेश्या—हा अन्नदाता !

अभय—क्यो ? क्या पुण्य किया है, जो स्वर्ग जाना चाहती हो ?

वेश्या—मैं जो कुछ करती हू, अच्छा ही करती हू ।

अभय—क्या अच्छा करती हो ?

वेश्या—हमारे बिना ससार का सौन्दर्य नही है। हम ससार में सौन्दर्य-भावना बढाती है। कोई कह सकता है कि हम गरीबो से पैसे लेती है, मगर थोडे-से पैसो मे ही उसे स्वर्ग-सुख का अनुभव करा देती है । मैं सभी को आनन्द देती हू । किसी की चोरी नही करती, डाका नही डालती । फिर क्या बुरा करती हू जो इस महल मे आने की अधि-कारिणी नही हू ?

अभयकुमार ने वेश्या को जाने के लिए कहकर

महाराज श्रेणिक से कहा—महाराज, देखिए ! यह भी स्वर्ग-सुख की इच्छुक है—स्वर्ग जाना चाहती है । यह जानती है कि वह नरक के योग्य काम कर रही है, फिर भी यहा आई है । आत्मा तो इसकी भी स्वर्ग चाहती है, परन्तु स्वर्ग जाने योग्य काम नही करती । मैंने आपसे ठीक ही निवेदन किया था कि लोग कल्याण के इच्छुक होने पर भी कल्याण के काम नही करते ।

अभयकुमार ने फिर दूसरे आदमी को बुलवाया । दूसरा आदमी कसाई था । अभयकुमार ने उससे पूछा—क्या पुण्य किया है, जो इस महल मे आए हो ?

कसाई—सरकार ! हमने बुरा ही क्या किया है ? अगर हम बुरे है तो सभी बुरे हैं । हमारी ही तरह बहुत लोग छुरी चलाया करते है । अन्तर इतना ही है कि हम प्रकट मे चलाते हैं और दूसरे भीतर-ही भीतर चलाया करते है । हम तो मेहनत भी करते हैं और कसाई के रूप मे प्रसिद्ध ही है, किन्तु बहुत-से लोग हमसे भी बढकर है जो प्रकट मे कसाई नही हैं, मगर कसाई का काम करने मे हमे भी मात कर देते हैं । हम सिर्फ पशुओ को ही मारते हैं पर वे मनुष्यो के गले काटा करते है । फिर आप हमी पर क्यो नाराज होते है ?

कसाई के बाद चोर आया । अभयकुमार उसे भली-भाति पहचानता था । उसने पूछा—ओह, आप भी यहा आये है ?

चोर—क्यो महाराज ! करें क्या ! हर रोज भूख

लगती है और पैसा पास मे नही होता। तब क्या भूखे मर जाए ? और पत्नी तथा बाल-बच्चो का भी गला घोट दे ? उधर उन्हे देखिए जो गरीबो को सता-सताकर अपनी तिजोरिया भरते हैं। उनके पास बेकार धन पडा रहता है। उसमें से थोडा-बहुत हम ले आते हैं। साहस करके लाते हैं, जान पर खेलकर लाते है और अपना तथा बाल-बच्चो का पेट पालते है। यह कौनसी वड़ी बुरी बात हो गई ?

अभयकुमार ने श्रेणिक से कहा—महाराज ! जिनके पाप प्रकट है, वे भी अपना पाप छिपाने का ही प्रयत्न करते है, तो जिनके पाप छिपे है वे कब प्रकट करने लगे ? दुनिया धर्मी वनना चाहती है, स्वर्ग मे जाना चाहती है, मगर कर्म ऐसे करती है। अव स्वर्ग मिले तो कैसे ? लोग इस ससार को देख कर घवरा उठेगे पर मै नही घवराता। क्योकि—

**सिद्धों जैसा जीव है, जीव सोई सिद्ध होय।**
**कर्म-मैल का आंतरा, बूझे बिरला कोय ॥**

चिदानन्द सव का उज्ज्वल है सबकी दौड कल्याण की ही ओर है। मगर जीव मोह के कारण कल्याण की इच्छा रख कर भी अकल्याण के काम करता है।

सफेद महल से उठकर दोनो काले महल मे आए। यह महल खाली पड़ा था। केवल एक सुशील श्रावक जो धर्मात्मा के रूप मे प्रसिद्ध था, इसमे आया था। राजा उसे देखकर चौंके और वोले—तुम यहा क्यो आए।

श्रावक—महाराज ! वहुत दिनो से मैं अपने पाप को

निकालना चाहता था । मै धर्मात्मा प्रसिद्ध हू परन्तु मुझसे विश्वासघात का पाप हो गया है । मैं इस पाप को प्रकट करने के लिए बहुत दिनो से इच्छुक था । पर हृदय की दुर्बलता से ऐसा नही कर सका । अब आपका ढिंढोरा पिटने से मैंने अपने हृदय को दृढ किया और अपने पाप को आपके सामने प्रकट कर देने का अच्छा अवसर देखा । इसीलिए यहा हू । मैंने अपने आप को असली रूप मे प्रकट कर देने में ही कल्याण समझा । इस पाप को बाहर निकाल कर मैं स्वच्छ हो जाऊ गा ।

अभयकुमार ने कहा—महाराज । कल्याण की चाह इनकी भी है और उन लोगो की भी है। चाह मे फर्क नहीं है, मार्ग मे फर्क है । पाप को छिपाने और पाप को प्रकट करने मे से कौन-सा मार्ग ठीक है, इसका निर्णय आप कीजिए ।

तात्पर्य यह है कि काम करो काले महल मे जाने के और इच्छा रखो सफेद महल मे जाने की, यह बात नहीं चलेगी । ढोग करके अपने आप को भले ठग लो, मगर कर्म-फल से वचना सम्भव नही है ।

# २४ : जैसी मति वैसी गति

एक वार राजा श्रेणिक ने 'अमारी' का ढिढोरा पिटवाया अर्थात् किसी भी जीव की हत्या न करने की घोपणा की। यह घोषणा सुनकर कालकसुरी नामक कसाई कहने लगा—किसी भी जीव की हत्या न करने की प्रेरणा करने वाले शास्त्र झूठे है। सच्ची वात यही है कि जीवों को कत्ल करना चाहिए। उसने राजा से भी कहा—आप कत्ल करना सही न मानते हो तो यह तलवार वांधना त्याग दीजिए। फिर देखिएगा कि राज्य की क्या दशा होती है और कौन आपका कहना मानता है ?

राजा ने कसाई को समझाने का प्रयत्न किया—युद्ध करने के लिए आने वाले का सामना करना जुदी वात है और निरपराध प्राणियो की हत्या करना जुदी बात है।

कालक ने कहा—राजन्-आपका कहना यथार्थ नही है। जैसे तलवार से आपका राज्यशासन चलता है, उसी प्रकार छुरी से कत्ल द्वारा हमारी आजीविका चलती है। ऐसी स्थिति मे मैं जानवरो की हत्या करना नही छोड सकता।

राजा समझ गया कि कसाई वातो से मानने वाला

नही है । ऐसे लोग तो सजा से ही ठिकाने आ सकते है ।

राजा ने कसाई को जेल मे बन्द करा दिया । कालक जेल मे पडा-पडा भी अपने शरीर का मैल उतारकर और उसके पाडे (भैसे) वना-वनाकर, उनके ऊपर तलवार की तरह हाथ से घाव मारने लगा । वह घाव मारता और जोर-जोर से चिल्लाता—एक, दो, तीन । यह चिल्लाहट सुनकर राजा ने पूछा—यह कौन है जो एक, दो, तीन, चिल्लाया करता है ? सिपाहियो ने उत्तर दिया—महाराज ! कालक कसाई कारागार मे पड़ा-पड़ा ही अपना धन्धा चलाया करता है ।

यह कैफियत सुनकर श्रेणिक ने अपने बुद्धिशाली पुत्र और मन्त्री अभयकुमार से कहा—इस कसाई को किस प्रकार सुधारना चाहिए ? यह तो कहना मानता ही नही है ।

अभयकुमार बोले—इन सस्कारो को सुधारने का मार्ग दूसरा ही है । वह मार्ग कौनसा है, यह बात मैं वाद मे आपसे निवेदन करू गा ।

इसके वाद अभयकुमार ने कालक के लडके सुलक के साथ मित्रता की । मित्रता भी इतनी गाढी कि मानो दो देह और एक आत्मा हो । अभयकुमार की सगति से सुलक धर्मनिष्ठ वन गया ।

अभयकुमार ने एक रोज अपने पिता श्रेणिक से कहा—कालक तो अभी तक नही सुधरा, परन्तु आप उसके लडके को बुलवा कर पूछिए कि कसाई का धन्धा उसे कैसा

लगता है ? राजा ने सुलक को अपने पास बुलाया । उससे पूछा—तुम्हारा पिता जेल मे पडा है, फिर तुम्हारे घर की आजीविका जीवो को मारे विना किस प्रकार चलती है ?

सुलक—जीवो को मारने से ही आजीविका चल सकती है और विना मारे नही चल सकती, ऐसी धारणा मेरी नही रही । यह खयाल गलत है । चोर भी यही कहता है कि चोरी किये विना मेरी आजीविका नही चलती । मगर जो चोरी नही करते वे क्या सभी भूखे मरते है ? इसी प्रकार दुनिया क्या जीव मार-मारकर ही आजीविका करती है ? मैं इस निश्चय पर आया हूं कि किसी और भी तरीके से वखूवी आजीविका चला भी रहा हू ।

सुलक का विचार जानकर श्रेणिक को वहुत प्रसन्नता हुई ।

अभयकुमार ने राजा से प्रार्थना की—कालक का पुत्र सुधर गया है, अव इसके पिता को कारागार से मुक्त कर देना चाहिए ।

अभयकुमार की प्रार्थना स्वीकृत हुई । राजा ने कालक को कारागार से मुक्त कर दिया । कालक अपने लडके से मिला और जव उसने लडके के विचार सुने और रगढग देखे तो वह कहने लगा—मैं जेल मे रहा तो मेरा छोकरा ही विगड गया ।

कुछ दिनो वाद कालक वीमार हुआ और मरने लगा । मगर सरलता से उसके प्राण नही निकलते थे । सुलक ने

उससे पूछा पिताजी, आपको किस बात की चिन्ता ? आपका जी किस बात मे अटका है ?

कालक—चिन्ता यही है कि मेरे मरने के बाद तू मेरा धन्धा नही चलाएगा । इसी सोच-विचार से मैं छटपटा रहा हू ।

सुलक—आप चिन्ता न करे । आपके बाद मै धधा अवश्य करूगा ।

कालक—पक्का वचन दे ।

सुलक ने वचन दिया और कालक ने प्राण त्यागे । सुलक सोचने लगा–अभयकुमार का कहना एकदम सत्य था कि मनुष्य के हृदय मे जो सस्कार जड पकड जाते है, वे अन्तिम समय तक भी नही छूटते और इस कारण जैसी मति होती है, वैसी ही गति होती है ।

आयु बधने से पहले जैसी मति होती है, वैसी गति होती है और आयु बधने के बाद जैसी गति होनी होती है वैसी मति हो जाती है ।

कालक मर गया । सुलक के कुटुम्बियो ने उससे कहा- अब अपना कसाई का धन्धा करो, तुमने पिता को वचन दिया था ।

सुलक ने कहा—मैंने धन्धा करने का वचन दिया है सो करूगा । जीवो की हत्या करना कोई धन्धा नही है ।

कुटुम्बी बोले - तुम पाप से क्यो डरते हो ? तुम्हे जो पाप होगा, उसका फल हम भोग लेंगे ।

सुलक ने कहा—ठीक है और उसने एक छुरा मगवाकर अपने हाथ मे मार लिया। फिर कुटुम्बी जनो से कहा—मुझे वडी वेदना हो रही है, थोड़ी-थोडी सब बांट लो।

कुटुम्वी कहने लगे—पागल तो नही हो गया है! अपने हाथ से छुरा मार लिया और दर्द बाट लेने के लिए हम से कहता है। दर्द किस तरह बाटा जा सकता है।

सुलक—जब आपके पास ही मै बैठा हू तब भी आप मेरा दर्द नही बाट सकते तो परलोक मे दूर हो जाने पर मेरा पाप आप किस प्रकार ले सकेंगे?

कुटुम्वी जन चुप हो गये। क्या उत्तर देते? फिर भी एक बोला—तो फिर पिता को दिये वचन का पालन किस प्रकार करोगे?

सुलक—मैंने धन्धा करने का वचन दिया है और धन्धा करके अपने वचन का पालन करूंगा। पहले आप लोगो को भोजन कराऊंगा, उसके बाद मैं भोजन करूंगा।

अभयकुमार ने सुलक के साथ मैत्री करके उसे सुधार लिया। घृणा पाप से करनी चाहिए, पापी से नही। पापी के पाप सीखने के लिए नही, किन्तु उसके पाप छुडाने के लिए उसे मित्र बनाना चाहिए।

# २५ : सत्य की महिमा

मनुष्य को जब तक अनुभव नही हो जाता, तब तक उसकी समझ मे सत्य का महत्त्व नही आता। जब उसके सिर पर कोई ऐसी आपत्ति आ पडती है—जो सत्य का आश्रय लेने से उत्पन्न हुई हो तो तत्काल ही वह समझ जाता है कि सत्य का क्या महत्त्व है। इसके लिए एक प्राचीन कथा का उदाहरण दिया जाता है—

एक श्रावक ने अपने पुत्र को नाना प्रकार की शिक्षाए देने का प्रयत्न किया, अनेक प्रकार ने उसे समझाने की चेष्टा की किन्तु उसके दिमाग में एक भी न जची और वह कुसगति छोडने को तैयार न हुआ। कुसगति का जो फल हो सकता है, वही हुआ। धीरे धीरे थोड ही दिनो मे वह लडका चोरी करने लगा। पिता ने फिर भी अनेक प्रकार के प्रयत्न किए, किन्तु सब निष्फल। वह लडका न सुधर सका और दिन-दिन अपने विषय मे नैपुण्य प्राप्त करने लगा। पिता से तिरस्कृत होकर भी उसने अपना व्यवसाय बन्द न किया और एक दिन राजा के भण्डार पर छापा मारा। किन्तु राजा की निपुणता से चोरी का पता लग गया तथा चोर भी पकड़ा गया। पकड लिए जाने पर उस लडके ने यह जाल रचा कि जिस दिन राज्य-भडार मे चोरी हुई,

उस दिन मैं इस नगर मे था ही नही। इस बात को उसने अपने मित्रो को गवाही दिलाकर प्रमाणित कर दिया। चालाकी पूरी चली, यह देखकर राजा दग रह गया। उसने अपने मन मे सोचा कि यद्यपि चोरी इसीने की है तथापि जब तक इसकी चोरी नियमानुसार प्रमाणित न हो जाय, तब तक इसे चोर कैसे ठहराया जा सकता है? इतने मे ही राजा को एक युक्ति याद आई। इस लड़के का पिता सत्य भाषण के लिए प्रख्यात था। राजा ने उसी की साक्षी पर मुकदमे का दार-मदार छोड दिया। लड़के ने जब यह जाना कि मेरे पिता कि साक्षी पर ही मुकदमे का दार-मदार है, तो वह दौडा हुआ अपने पिता के पास गया वहा जाकर उसने पिता के पैरो पर गिर कर प्रार्थना की कि—यद्यपि चोरी मैंने ही की है, तथापि यदि आप राजा के सन्मुख यह कह देंगे कि उस दिन मेरा लड़का नगर मे नही था तो मैं बच जाऊंगा। राजा आपका कहना मानेंगे, अतः आप मेरी बात को—जो लगभग प्रमाणित हो चुकी है, थोडी और पुष्ट कर देगे तो मैं साफ बच जाऊगा।

लडके ने यद्यपि नम्रता-पूर्वक उक्त प्रार्थना की किन्तु वह श्रावक ऐसा न था। उसे सत्य की अपेक्षा अपना अन्यायी पुत्र कदापि प्रिय नही हो सकता था। वह एक विद्वान के निम्न कथन का कट्टर समर्थक था—

**आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वापि मानवाः।**
**अनृतं ये न भाषन्ते ते बुधाः स्वर्गगामिनः॥**

जो अपने, पराये या अपने पुत्र के लिये भी असत्य

नही बोलते, वे ही बुद्धिमान देवलोक को जाते हैं ।

उसने उत्तर दिया कि यद्यपि पिता होने के कारण तेरी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है, लेकिन 'सत्य' मेरा सर्वस्व है । सत्य ही मेरा परम-मित्र है, सत्य से मेरी रक्षा होती है । अत उस परम-प्रिय सत्य को छोड कर मै तेरे अन्याय का समर्थन करने के लिए झूठ बोलू, यह कदापि सम्भव नही है । यदि सत्य से तू बचता हो तो मैं, तू कहे वैसा कर सकता हू ।

अन्यायी मनुष्य मे क्रोध-बहुत होता है । पिता का यह उत्तर सुनकर इस लडके का क्रोध उमड पड़ा । उसने कहा—तुम मेरे बाप क्यो हुए ? पुत्र पर दया नही आती और उसकी जान लिवाने को तैयार हो ? क्या तुम्ही अनोखे बाप हो या दुनिया मे और किसी के भी बाप है ? अच्छी सत्य की पूछ पकड रखी है कि लडका चाहे बचे या मर जाय किन्तु आप अपने सत्य को ही लिये चाटा करेंगे ।

पिता—पुत्र ! तुझ पर मेरी अत्यन्त दया है, लेकिन तेरे सिर पर इस समय क्रोध का भूत सवार है । इसी से मेरा अच्छा स्वरूप भी तुझे उल्टा दीख रहा है और तू ऐसा बोल रहा है । यदि ऐसा न होता तो तू स्वय ही समझता कि मैं तुझे बचाने के लिए ऐसा असत्य भाषण कर दू कि यह उस दिन यहा नही था, मेरा 'सत्य-व्रत' भग हो जाय ।

पुत्र - तुम्ही मेरी जान ले रहे हो ।

पिता—मैं तेरी जान नही ले रहा हू, किन्तु तेरा पाप

तेरी जान ले रहा है। मैं तो तेरी रक्षा करना चाहता हूं। इसलिए मैं बचपन से ही बुरे कर्म से बचने का उपदेश देता रहा, लेकिन तू मेरी शिक्षा की उपेक्षा करता रहा। अब भी मैं तुझे यही उपदेश देता हू की सत्य की शरण जा, सत्य ही तेरी रक्षा करेगा। यदि असत्य से प्राण बच भी गये, तब भी मृतक के ही समान है और सत्य से प्राण गये, तब भी जीवन से श्रेष्ठ है।

निश्चित समय पर श्रावक को राजा ने बुलाया और गवाह के कठघरे मे खडा करके पूछा—कहिये सेठजी, जिस दिन राज्य-भडार मे चोरी हुई, उस दिन क्या तुम्हारा लडका यहा नही था ? और उसने चोरी नही की है ?

सेठ—उस दिन वह नगर मे ही था और चोरी उसने ही की है।

धन्य है इस श्रावक को, जिसने अपने पुत्र के लिए झूठ बोलना उचित न समझा। यदि वह चाहता तो झूठ बोलकर अपने लडके को निरपराध सिद्ध कर सकता था, लेकिन उसने अपने लडके से सत्य को कही विशेष उच्च समझा। यह श्रावक तो अपने लडके के लिये भी झूठ नही बोला, लेकिन आज के लोग कौडी-कौडी के लिये झूठ बोलने मे नही हिचकिचाते। इतना ही नही, बलिक अ-कारण ही हसी-मजाक और अपनी या दूसरे की प्रशसा तथा निन्दा के लिये भी झूठ को ही महत्त्व देते है। कहा तो यह श्रावक, जिसने प्राण-प्रिय सन्तान को भी सत्य से तुच्छ समझा और कहा आज के लोग जो सत्य को कौडियो से भी तुच्छ समझते है। अस्तु।

यदि श्रावक चाहता तो झूठ बोल सकता था, लेकिन वह इस बात को जानता था कि पुत्र की रक्षा वास्तव मे सत्यावादी ही कर सकता है, मिथ्यावादी नही।

सेठ का उत्तर सुनकर राजा धन्यवाद देता हुआ सेठ से कहने लगा—तुम्हारे जैसे सत्यपात्र सेठ मेरे नगर मे मौजूद हैं, यह जानकर मेरे आनन्द की सीमा नही रही। मेरे नगर मे जैसे चोर हैं, वैसे ही सर्वथा सत्य बोलने वाले मनुष्य भी मौजूद है, यह कितने आनन्द की बात है। मैं तुम पर प्रसन्न हूं, अत तुम इच्छानुसार याञ्चा कर सकते हो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने की प्राणपण मे चेष्टा करूंगा।

सेठ प्रतीक्षा कर रहा था कि देखे लडके को उसके अन्याय का क्या दण्ड मिलता है, किन्तु राजा के मुख से यह सान्त्वनापूर्ण वचन सुनकर वह एकान्त मे जा बैठा और अपने लडके को बुलाकर उससे बात-चीत करने लगा।

पिता—तुझ पर चोरी का अपराध प्रमाणित हो गया है, अब तुझे जीने की इच्छा है या मरने की ? तू मुझे कहता था कि झूठ बोल कर बचाओ, किन्तु अब देख कि सत्य बोल कर भी मैं तुझे बचा सकता हू। धर्म रहे तो जीवित रहना उत्तम है किन्तु यदि धर्म जाने की स्थिति उत्पन्न हो जाय, तो धर्म जाने के पूर्व मृत्यु श्रेष्ठ है। यदि तुझे जीवित रहने की इच्छा हो तो पापकर्मों को छोड़कर सत्यमार्ग ग्रहण कर। यदि तू मेरे धर्म का अधिकारी बनना चाहे तो मैं राजा से तुझे छोड देने की प्रार्थना करू। इसके पश्चात् यदि मै तेरा आचरण अच्छा देखूंगा तो तुझे अपना उत्तराधिकारी बनाऊंगा, अन्यथा नही।

पुत्र—आपने पहले भी मुझे यही उपदेश दिया था, किन्तु मैं बराबर कुमार्ग पर चलता रहा। यदि अब मैं जीवित बच जाऊंगा, तो सदैव अच्छा आचरण रखूंगा। पिताजी! थोडी देर पहले आप मुझे पिशाच के समान मालूम होते थे, किन्तु अब आपके वचन सुनकर मेरी दृष्टि ऐसी स्वच्छ हो गई है कि आप मुझे ईश्वर के समान पवित्र मालूम होते है। जहां सत्य है वही ईश्वर है, यह बात मैं आज समझ सका। आप धन्य है जो सत्य-व्रत के सम्मुख पुत्र—प्रेम को हेय समझते हैं। मैं आपको प्रणाम करता हू और प्रतिज्ञा करता हूं कि भविष्य मे मैं सत्य का पालन करूंगा। यदि मै अपने इस व्रत का पालन ठीक तरह से न कर सकूंगा तो प्राण त्याग दूंगा। अब आपकी इच्छा पर निर्भर है—चाहे जिलावे या मारे।

हृदय की साक्षी हृदय भरता है। जब सामने वाले का हृदय स्वच्छ होगा तो तुम्हारा भी हृदय स्वच्छ ही रहेगा।

लड़के की स्वच्छ हृदय से कही हुई यह बात सुनकर सेठ राजा के पास गया और प्रार्थना की कि मेरा लडका भविष्य मे सत्यमार्ग पर चलने का सच्चे हृदय से प्रण करता है, अत: मै आप से यही चाहता हू कि आप उसे छोड दे। मुझे और किसी बात की आवश्यकता नही है।

राजा ने कहा—हम अपराधी को इसीलिए दण्ड देते है कि वह भविष्य मे अपराध न करे। किन्तु यदि कोई अपराधी सच्चे दिल से अपने अपराध पर पश्चात्ताप कर ले, तो हमे उसके छोड देने पर कोई आपत्ति नही हो सकती। मै तुम्हारे विश्वास दिलाने पर इसे छोड़ता हू कि यह अब

तुम्हारे आदर्श से पवित्र बन जायगा ।

पहले के राजा लोग अपराधी को कुमार्ग से सन्मार्ग पर लाने के लिये दड दिया करते थे, आजकल की तरह जेलो में ठूंसकर केवल बन्दियो की सख्या बढाना उन्हे अभीष्ट न था । वे राज्य मे शान्ति और प्रजा को सुखी बनाने के इच्छुक रहा करते थे । यदि अपराधी सच्चे हृदय से अपने अपराध का पश्चात्ताप करके भविष्य मे फिर अपराध न करने की प्रतिज्ञा करता तो उसे क्षमा कर दिया जाता था । ऐसी उदारता का प्रभाव मनुष्य के मन पर पडा करता है और भविष्य मे वह कुमार्ग पर चलने की इच्छा नही करता । इसके विरूद्ध, आधुनिक समय के लिए सुना जाता है कि प्रमाणाभाव से अपराधी को अपराध करते हुए भी चाहे छोड दिया जाय किन्तु अपराधियो के पश्चात्ताप और भविष्य मे अपराध न करने की प्रतिज्ञा का कोई परिणाम नही होता बल्कि उन्हे जेल भेजकर या शारीरिक और आर्थिक दंड देकर निर्लज्ज वना दिया जाता है । निर्लज्ज हो जाने पर अपराध करने से भय नही होता और प्राय. अपराधी की आयु अपराध करने मे ही व्यतीत होती है । साराश यह है कि ऐसा होने पर न तो राजा को ही शान्ति मिलती है, न प्रजा को ही और जिस अभिप्राय से अपराधी को दण्ड दिया जाता है, फल उसके विपरीत होता है । अस्तु ।

राजा ने उस सेठ को नगर-सेठ बनाया । राजा को यह विश्वास था कि आवश्यकता पडने पर यह सेठ मुझे सच्ची-सम्मति ही देगा, झूठी नही ।

पूर्वकाल मे राजा लोग सत्यवादी की ही प्रतिष्ठा

करते थे, झूठे की नही। लेकिन आजकल तो विशेपत. वे ही लोग राजा के प्रतिष्ठा-पात्र हो सकते है जो झूठ वोलने मे निपुण हो, झूठी प्रशसा करना, हा-मे-हा मिलाना और दूसरे की निन्दा करना जिन्हे अच्छी तरह आता हो। इस विपरीतता का परिणाम भी स्पष्ट है। इन जी-हुजूरो के ही कारण प्राय राजा लोगो को हानि पहुचा करती है और प्रजा से वैमनस्य रहता है। ऐसे अनेक लोगो की जगह यदि राजा को एक भी सच्ची सम्मति देने वाला हो और राजा उसकी सम्मति की अवहेलना न करे तो अशान्ति का कोई कारण न रह जाय। राजा और प्रजा मे प्रेम भी रहे तथा सुख–समृद्धि की वृद्धि हो।

सत्य के प्रताप से सेठ ने नगर-सेठ का पद प्राप्त किया, दण्ड पाते हुए पुत्र को वचा लिया और अपने दुराचारी पुत्र को सदाचारी भी वना लिया।

सत्य मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान कठिन भी है और फूलो के विछौने पर सोने के समान सरल भी। इसमे प्रकृति की भिन्नता का अन्तर है। ऐसे मनुष्य भी है जो अकारण ही असत्य वोलते हैं और सत्य-व्यवहार को तलवार की धार पर चलने के समान कठिन मानते है। उनका विश्वास है कि सत्य व्यवहार करने वाला मनुष्य संसार मे जीवित ही नही रह सकता। दूसरे ऐसे भी मनुष्य हो चुके है और हैं जो असत्य व्यवहार करने की अपेक्षा मृत्यु को श्रेष्ठ मानते हैं। सत्य-व्यवहार उनके लिये फूलो की सेज है। फिर उस मार्ग मे उन्हे चाहे कितने ही कष्ट हो, किन्तु उनकी परवाह किये विना ही प्रसन्नता–पूर्वक अपने मार्ग पर चलते रहते हैं। ❀❀

# २६ : सत्यवादी का प्रभाव

सत्यवादी के ससर्ग से असत्यवादी के हृदय का परिवर्तन शीघ्र हो जाता है। सत्यव्रत के पालने वाले मनुष्यो मे ऐसी ही शक्ति होती है। उनके एक बार के सम्पर्क से ही पतित-से पतित व्यक्ति भी अपना कल्याण-मार्ग देख लेता है। जिसने सत्य-व्रत का एकदेश ग्रहण कर लिया, वह भविष्य मे पूर्ण सत्यव्रती बन जाता है। सत्य के प्रभाव से परिस्थितिया ही ऐसी उपस्थित होती हैं कि वे उस मनुष्य को उत्थान की ओर ले जाती है। इसके लिये जैन ग्रथो मे वर्णित जिनदास नाम के एक श्रावक की कथा दी जाती है —

राजगृह नगर मे एक बडे व्यापारी के यहा जिनदास नाम के श्रावक कार्यवश गये। जिनदास उस समय के बडे आदमियो मे गिने जाते थे। व्यापारी ने उन्हे अपना स्वजातीय अतिथि समझकर उनके लिये भोजन का विशेष प्रबन्ध किया। जिनदास ने व्यापारी से कहा—आप मेरे लिए इतना कष्ट न कीजिए। मेरा यह नियम है कि जिसकी आय सत्य द्वारा होती है, मैं उसी के यहा भोजन करता हू। जिसकी आय असत्य से होती है, उसके यहा भोजन नही करता। यदि आप मुझे अपने यहा भोजन कराना चाहते हैं तो अपना आय-व्यय का लेखा मुझे बतलाइये। उससे यदि

विश्वास हो गया कि आपकी आय सत्य से होती है तो मुझे भोजन करने मे किसी प्रकार की आना-कानी न होगी।

जिनदास श्रावक का व्यापारी से यह कहना कि—मैं उस मनुष्य के यहां भोजन नही करता, जो असत्य से जीविकोपार्जन करता है, यथार्थ है। यह वात अनुभव—सिद्ध है कि जो मनुष्य जिस प्रकार का उपार्जित भोजन करता है, उसकी बुद्धि वैसी ही हो जाया करती है। श्रीकृष्ण ने इसी सिद्धान्त को सामने रखकर दुर्योधन के यहां भोजन करने से इनकार कर दिया था और विदुर के यहां भोजन किया था।

कई लोग कहते है कि सामायिक करते समय न मालूम क्यो हमारा चित्त स्थिर नही रहता। लेकिन ऐसा कहने वाले लोग यह विचार नही करते कि अनीति से पैदा किया हुआ अन्न पेट में होने पर मन स्थिर कैसे रह सकता है?

जिनदास इस बात का विश्वास पहले ही कर लिया करते थे कि इसका भोजन कैसा है। इसलिए उन्होने व्यापारी से अपना आयव्यय का लेखा बताने को कहा। व्यापारी ने उत्तर मे कहा कि—आप तो स्वय नीतिज्ञ हैं और भली-भांति जानते हैं कि अपनी आय का भेद दूसरे को नहीं बताया जाता। ऐसा होते हुए भी मुझे आयव्यय का लेखा बताने के लिये बाध्य करना उचित कैसे कहा जा सकता है?

जिनदास—यदि ऐसा है और आप अपना लेखा नही बताना चाहते हैं तो आपकी इच्छा। लेकिन मैं अपने निश्चयानुसार विना विश्वास भोजन करने मे असमर्थ हू।

व्यापारी दृढ-प्रतिज्ञ जिनदास के शब्दो को सुनकर विचारने लगा कि इनकी प्रतिज्ञा तो ऐसी है और ऐसे सत्पुरुष को बिना भोजन कराये घर से जाने देना भी अपने भाग्य को बुरा बनाना है। ऐसी अवस्था मे क्या करना चाहिए ? क्योकि अतिथि को निराश लौटाना उचित नही है।

व्यापारी विचारता है कि सामान्य-अतिथि के लिए भी यह बात है तो फिर ये तो महापुरुष हैं। इसके सिवाय इनकी वातों और आकृति से भी जान पडता है कि ये मेरा लेखा मेरी अप्रतिष्ठा के लिए नही देखना चाहते किन्तु अपनी प्रतिज्ञानुसार जानना चाहते है कि मेरा आय-व्यय किस प्रकार से होता है। ऐसी दशा मे मेरा कर्तव्य है कि सच्ची बात कह दू और इन्हे भोजन किये बिना न जाने दू।

इस प्रकार सोच-विचारकर व्यापारी ने जिनदास से कहा कि—आप लेखा देखकर क्या करेगे, सच्ची बात मैं जवान से ही बताये देता हू। वास्तव मे तो मैं रात को चोरी करके धन कमाता हू और दिन को व्यापार का ढोग रचकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता हू।

व्यापारी की वात सुनकर जिनदास ने कहा—ऐसी दशा मे मैं आपके यहा भोजन नही कर सकता।

व्यापारी—यह तो आपका अन्याय है। दूसरो की अप्रतिष्ठा भी करना और भोजन भी न करना, यह कैसे उचित है ?

जिनदास—यद्यपि मैंने आपकी कोई अप्रतिष्ठा तो नही

की है, फिर भी यदि आप मेरी एक वात को स्वीकार कर लें तो मैं भोजन कर सकता हूं ।

व्यापारी के पूछने पर जिनदास ने कहा—आप चाहे अपने चोरी के कार्य को वन्द न करें, परन्तु सदा सत्य वोलने की प्रतिज्ञा करले । यदि आपने यह प्रतिज्ञा धारण करली, तो मैं भोजन कर लूंगा ।

व्यापारी के ऊपर प्रतिभाशाली जिनदास के शव्दो का वहुत प्रभाव पडा । उसने जिनदास की वात स्वीकार करके असत्य न वोलने की प्रतिज्ञा ली । व्यापारी के प्रतिज्ञा करने पर जिनदास भोजन करके व्यापारी के यहां से विदा हो गये ।

सदा की भांति व्यापारी रात के समय चोरी करने निकला । परन्तु आज राजा श्रेणिक और अभयकुमार प्रजा का सुख-दुःख जानने के लिए नगर मे चक्कर लगा रहे थे ।

पहले के राजा लोग प्रजा की रक्षा का भार कर्म-चारियो पर ही न छोडकर, उसका सुख–दुःख जानने के लिए स्वयं वेश वदलकर नगर और राज्य मे भ्रमण किया करते थे । ऐसा करने से प्रजा की वास्तविक परिस्थिति की उन्हे जानकारी हो जाती थी और उसके फलस्वरूप प्रजा कर्मचारियो के अत्याचारो से सुरक्षित रहकर शान्तिपूर्वक अपने दिन व्यतीत करती थी । लेकिन आज के राजा लोगों को यह पता शायद ही होगा कि हमारा राज्य कैसा है, कितना है और प्रजा की दशा क्या है । पता हो भी कहां से ? उन्हे तो प्रजा की गाढी कमाई वहाने और आनन्द-विलास करने से ही फुरसत न मिलती होगी । ऐसी दशा

मे प्रजा तो केवल कर्मचारियो के ही सहारे रही, चाहे वे उस पर अत्याचार करें या सुखी रखे। किन्तु राजा श्रेणिक आज के राजाओ की तरह विलास-प्रिय और प्रजा के धन को अकारण उड़ाने वाला न था। स्वय प्रजा के सुख-दु.ख का वृत्तान्त जानकर प्रबन्ध किया करता था।

आधी रात के समय अकेले जाते देख अभयकुमार ने व्यापारी को रोककर पूछा कि कौन है? व्यापारी इस प्रश्न को सुनकर भयभीत अवश्य हुआ, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा याद आते ही उसने निर्भय हो उत्तर दिया—चोर! व्यापारी का उत्तर सुनकर राजा और कुमार विचारने लगे कि—कहीं चोर भी अपने आपको चोर कहता है? यह झूठा है। उन्होने व्यापारी से प्रश्न किया, कहा जाता है? व्यापारी ने फिर निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया—चोरी करने।

व्यापारी के इस उत्तर को सुनकर राजा और कुमार ने सोचा कि यह कोई विक्षिप्त है। विनोद के लिए उन्होने फिर प्रश्न किया—चोरी कहा करेगा? व्यापारी ने उत्तर दिया—राजा के महल में।

व्यापारी के इस उत्तर से राजा और कुमार का अनुमान और पुष्ट हो गया कि वास्तव मे यह विक्षिप्त ही है। उन्होने व्यापारी को अच्छा जाओ, कहकर जाने दिया। इस प्रकार चोर कहते हुए भी न पकडे जाने से व्यापारी बडा ही प्रसन्न हुआ। वह जिनदास की प्रशसा करने लगा कि मैं अपने आपको चोर वतलाता हू, परन्तु मुझे कोई पकडता नही है। यदि उस समय में भागता या झूठ बोलता तो

अवश्य ही पकड लिया जाता, परन्तु सत्य वोलने से वच गया ।

व्यापारी इसी विचार-धारा मे मग्न राजमहल के पास जा पहुचा । योग ऐसा मिला कि व्यापारी जिस समय राजमहल को पहुंचा, उस समय राजमहल के पहरेदार नीद मे भूल रहे थे । ऐसा समय पाकर व्यापारी निधडक महल मे जा घुसा और कोप से रत्नों के भरे हुए दो डिब्बे चुराकर चलता वना ।

लौटते समय व्यापारी को राजा और अभयकुमार फिर मिले । उनके प्रश्न करने पर व्यापारी ने अपने आपको पुन: चोर वताया । राजा और कुमार ने पहले वाला ही विक्षिप्त समझकर हंसते हुए प्रश्न किया कि कहां चोरी की और क्या चुराया ? व्यापारी ने उत्तर दिया कि—राजमहल मे चोरी करके रत्नो के दो डिब्बे चुरा लाया हू । राजा ने व्यापारी को पहले ही विक्षिप्त समझ रखा था, इसलिए उसके उत्तर पर भी उन्हे कुछ सन्देह न हुआ और उसे जाने दिया ।

व्यापारी अपने घर की ओर चलता जाता था और हृदय मे जिनदास को धन्यवाद देता जाता था कि उन्होंने अच्छी प्रतिज्ञा कराई जिससे वच गया अन्यथा मेरे वचने का कोई कारण न था । अव मुझे भी उचित है कि कभी झूठ न वोलकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूं । इस प्रकार विचारता हुआ व्यापारी अपने घर को आया ।

प्रात काल कोपाध्यक्ष को कोष चोरी होने की खवर हुई । कोपाध्यक्ष कोष को देखकर और यह जानकर कि

चोरी मे रत्नो के दो ही डिब्बे गये हैं, सोचने लगा कि चोरी तो निश्चय ही हुई है, फिर ऐसे समय मे मैं भी अपना स्वार्थ-साधन क्यों न कर लू ? राजा को तो मैं सूचना दू गा तभी उन्हे मालूम होगा कि चोरी हुई है और चोरी मे अमुक वस्तु इतनी गई है ।

इस प्रकार विचार कर कोषाध्यक्ष ने कोष मे से रत्नो के आठ डिब्बे अपने घर रख लिये और राजा को सूचना दी कि कोष मे से रात को रत्नो से भरे हुए दस डिब्बो चोरी चले गये ।

इस सूचना को पाते ही राजा को रात की बात का स्मरण हुआ । वह विचारने लगा कि रात को जिसने अपने आपको चोर बताया था, सम्भवत वही रत्नो के डिब्बो ले गया है । लेकिन उसने तो रत्नो के दो ही डिब्बो चुराकर लाने को कहा था, फिर दस डिब्बो कैसे चले गये ? जान पडता है कि आठ डिब्बो बीच ही मे गायब हो गए है । इस तरह सोच-विचारकर राजा ने अभयकुमार को रात वाले चोर का पता लगाने की आज्ञा दी ।

नगर में घूमते-घूमते अभयकुमार उसी व्यापारी की दुकान पर पहुचा और उसके स्वर को पहचानकर अनुमान किया कि रात को इसी ने अपने आपको चोर बतलाया था । अभयकुमार ने व्यापारी से पूछा कि क्या आपने रात को राजमहल मे चोरी की थी ? यदि हा तो क्या चुराया था और चोरी की वस्तु मुझे बतलाइये । व्यापारी ने चोरी करना स्वीकार करके दोनो डिब्बो को अभयकुमार के सामने

रख दिया । वह सत्य का महत्त्व समझ चुका था, इसलिये उसे ऐसा करने मे किंचित् भी हिचकिचाहट न हुई ।

रत्नो के डिब्बो को देखकर विश्वास करने के लिए अभयकुमार ने व्यापारी से फिर प्रश्न किया कि क्या यही थे ?

व्यापारी ने इस प्रश्न का उत्तर भी 'हा' कहकर दिया । कुमार ने डिब्बो सहित व्यापारी को साथ लेकर राजा के सम्मुख उपस्थित किया। राजा कुमार की चातुरी पर प्रसन्न होकर कहने लगा कि इसने तो दो ही डिब्बे चुराये थे जो मिल गये, शेष आठ डिब्बो का पता और लगाओ ।

अभयकुमार ने अनुमान किया कि डिब्बो मे कोषाध्यक्ष की ही चालाकी होगी । उसने कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा कि चोरी गये हुए दस डिब्बो मे से दो डिब्बे तो मिल गये, शेष आठ डिब्बे कहा है ? कोषाध्यक्ष घबरा उठा और कहने लगा कि चोरी हुई तब मैं तो अपने घर था, ऐसी अवस्था मे मुझे यह क्या मालूम कि शेष डिब्बे कहा है ।

अभयकुमार कोषाध्यक्ष की घबराई दशा देख और उसका अस्थिर उत्तर सुनकर ताड गया कि आठ डिब्बो के जाने मे इसी की बेईमानी है । उसने कोषाध्यक्ष को भय दिखाते हुए कहा कि—सत्य कहो, अन्यथा बडी दुर्दशा को प्राप्त होओगे ।

झूठ कहा तक चल सकता है ? कोषाध्यक्ष के होठ भय के मारे चिपक से गये और वह कहने लगा—आठ

डिब्बो मैंने अपने ही घर मे रख लिये हैं। मैं अपने कर्तव्य और सत्य से च्युत हो गया, इसके लिये क्षमाप्रार्थी हू।

अभयकुमार ने कोषाध्यक्ष को भी आठ डिब्बो सहित राजा के सामने उपस्थित किया। कोषाध्यक्ष की धूर्तता और व्यापारी की सत्यपरायणता देख राजा ने कोषाध्यक्ष को तो बन्दीगृह भेजा और व्यापारी को कोषाध्यक्ष नियत किया।

राजा ने व्यापारी को अपराधी होते हुए भी सत्य बोलने के कारण अपराध का कोई दण्ड न देकर कोषाध्यक्ष नियुक्त किया। इसका प्रभाव लोगो पर क्या पडा होगा, यह विचारणीय बात है। अपराध तो व्यापारी और कोषाध्यक्ष के समान ही थे। लेकिन व्यापारी सत्य बोला था और कोषाध्यक्ष झूठ। झूठ के कारण ही कोषाध्यक्ष अपने पद से हटाया जाकर जेल भेजा गया और व्यापारी को सत्य के कारण ही अपराध का दण्ड मिलने की जगह कोषाध्यक्ष पद प्राप्त हुआ। राजा के ऐसा करने से लोगो के हृदय मे सत्य के प्रति कितनी श्रद्धा और झूठ से कितनी घृणा हुई होगी, यह आप स्वय अनुमान कर सकते है।

व्यापारी ने चोरी जैसा अपराध करके उसके दण्ड से बचने के लिये भी अपनी प्रतिज्ञा को तोडकर झूठ का आश्रय लेना उचित नही समझा, लेकिन आज-कल के लोग साहूकारी मे भी अपने व्रत का ध्यान न रख, प्राय असत्य का ही आश्रय लेते हैं। इसका कारण है कि इन्हे सत्य पर विश्वास नही है और व्यापारी को सत्य पर विश्वास हो

गया था । लेकिन सत्य पर विश्वास करने और न करने का परिणाम भी इस कथा से स्पष्ट है ।

व्यापारी जब कोषाध्यक्ष पद पर पहुच गया, तब उसने अपने दूसरे दुर्गुण भी निकाल दिये और धर्मात्मा बन गया । अब उसकी भावना ऐसी हो गई कि उसने पहले जिस-जिसके यहां चोरी की थी, वह सब वापिस लौटाने लगा ।

इस कथा से प्रकट है कि जिनदास का केवल एक ही उपदेश मान लेने से व्यापारी पूरा धर्मात्मा बन गया और उसीके प्रताप से राज्य के कोषाध्यक्ष का पद प्राप्त किया ।

साराश यह है कि सत्य बडा ही महत्त्वपूर्ण और कल्याणकारक सिद्धान्त है । इसके पालन करने वाले को तो सदैव आनन्द है ही, किन्तु जो व्यक्ति सत्य का पालन करने वाले व्यक्ति के सम्पर्क मे एक वार भी आ जाता है और उसकी एक भी शिक्षा ग्रहण कर लेता है तो वह भी भविष्य में अपना कल्याण-मार्ग पा जाता है ।

# २७ : पुरुषार्थ

यह ससार-समुद्र प्रलय काल के तूफान से क्षुब्ध समुद्र के समान है । ससार-समुद्र मे कर्म रूपी प्रलयकालीन पवन से तूफान उठ रहा है और कुटुम्ब-परिवार रूपी मच्छ-कच्छ जीव हैं । इस ससार समुद्र को अपनी भुजाओ से पार करना कठिन हैं । फिर भी कोशिश करना कर्त्तव्य है ।

हिम्मत करने वाले ही कठिन से कठिन कायो मे भी सफलता पाते है । जो कायर पुरुष पहले से ही हिम्मत हार कर वैठा रहता है और कहता है कि भई, यह काम तो मुझ से नही हो सकेगा, वह साध्य कार्य मे भी सफलता नही पा सकता ।

किसी सेठ का एक लडका जहाज की मुसाफिरी के लिए तैयार हुआ । उसके पिता ने उसे बहुत समझाया और कहा—वेटा ! अपने घर मे वहुत धन है । जहाज मे मुसाफिरी करना खतरनाक है । तू क्यो व्यर्थ कष्ट सहन करता है । मगर लडका वड़ा उद्योगशील था । उसने पिता को उत्तर दिया—पिताजी, आपका कथन सत्य है, किन्तु इस धन को उपार्जन करने मे आपने भी तो कष्ट सहन किये होगे ? फिर क्या मेरे लिए यह उचित होगा कि मैं स्वयं

परिश्रम किये बिना ही इसका भोग करूं ? अगर मैं इस धन को बिना परिश्रम किये ही खाने लगा और गुलछर्रे उडाने लगा तो किसी दिन आप ही मुझे कपूत कहने लगेगे। कदाचित् पितृप्रेम के कारण आप न कहेगे तो भी दुनिया का मु ह कौन बद करेगा ? फिर इस धन का उपार्जन करके आपने जो ख्याति प्राप्त की है वह ख्याति मैं कभी नही पा सकू गा। बिना कमाये खाने से मैं मिट्टी के पुतले के समान बन जाऊ गा। जब मैं उद्योग कर सकता हूं तो फिर बिना कमाये खाना-पहनना मुझे उचित नही मालूम होता। अतः आप कृपा करके आज्ञा दीजिए और आशीर्वाद दीजिए।

अपने पुत्र की कार्यनिष्ठा और साहस देखकर पिता को सन्तोष हुआ। उसने कहा—ठीक है। सुपुत्र का यही कर्त्तव्य है कि वह अपने पिता के यश और वैभव में वृद्धि करे। उद्योगशील होना मनुष्य का कर्त्तव्य है। तुम्हारी प्रबल इच्छा है तो मै रोकना नही चाहता।

साहूकार के लड़के ने जहाज तैयार करवाया। समुद्र मे जहाज किस प्रकार तूफान से घिर जाता है और उस समय किन-किन वस्तुओ की आवश्यकता होती है, इसका विचार करके उसने सब आवश्यक वस्तुए जहाज मे रख ली और यात्रा के लिए प्रस्थान कर दिया। चलते-चलते जहाज बीच समुद्र मे पहुचा तो अचानक तूफान घिर आया। जहाज के डूब जाने की स्थिति आ पहुची। मल्लाहो ने तन-तोड़ परिश्रम किया मगर जहाज की रक्षा करने मे सफल नहीं हो सके। अन्त मे वे भी हार गये। उन्होने कह दिया—अब हमारा वश नही चलता। जहाज थोडी देर मे डूब

जायगा जिसे बचने का जो उपाय करना हो करे।

ऐसे विकट प्रसग पर कायर पुरुष को रोने के सिवाय और कुछ नही सूझता। कायर नही सोचता कि रोना व्यर्थ है, रोने से कोई लाभ नही होगा। अगर बचाव का कोई रास्ता निकल सकता है तो सिर्फ उद्योग करने से ही।

मल्लाहो का उत्तर सुनकर साहूकार का लडका पहले शौचादि से निवृत्त हुआ। उसने अपना पेट साफ किया। फिर उसने ऐसे पदार्थ खाये जो वजन मे हल्के किन्तु शक्ति अधिक समय तक देने वाले थे। इसके बाद उसने अपने सारे शरीर मे तेल की मालिश की, जिससे समुद्र के पानी का चमडी पर असर न पडे। फिर उसने शरीर से सटा हुआ चमडे का वस्त्र पहना, जिससे मच्छ-कच्छ हानि न पहुचा सके। इतना करने के बाद एक तख्ता लेकर समुद्र मे कूद पडा। उस तख्ते के सहारे वह किनारे लगने के उद्देश्य से तैरने लगा।

साहूकार के लड़के ने सोचा—ऐसे समय मे जहाज बडा नही, आत्मा बडी है। इसलिए जहाज को छोड देना ही ठीक है। जहाज छोड़ देने पर भी मृत्यु का भय तो है ही, लेकिन उद्योग करना आवश्यक है।

मनुष्य के जीवन मे कई बार ऐसे संकटमय अवसर आ जाते है, जब उसकी बुद्धि थक जाती है। किसी प्रकार का निर्णय करना कठिन हो जाता है। एक ओर कुआ और दूसरी ओर खाई दिखाई देती है। ऐसे प्रसग पर अपनी बुद्धि को ठिकाने रखना ही बुद्धिमत्ता है। 'परिच्छेदो हि पाण्डित्यम्

अर्थात् जो दो मार्गों मे से एक मार्ग अपने लिए चुन लेता है, क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य है, यह निर्णय कर लेता है; वही वास्तव मे पण्डित पुरुप है। जो विपत्ति के समय अपनी बुद्धि खो वैठेगा और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्णय न कर सकेगा, वह विपत्ति को और अधिक वढा लेगा और बुरी तरह चक्कर मे पड जायगा।

यह बात केवल लोकव्यवहार के लिए ही नही है, वरन् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष--सभी पुरुपार्थो के विषय मे लागू होती है। 'संशयात्मा विनश्यति' सदेह मे पडे रहना और निर्णय न करना अपना नाश करना है। निर्णय किये विना सिद्धि प्राप्त नही होती।

साहूकार के लडके के सामने इस समय दो बाते उपस्थित थी। एक तो जहाज को वचाने की और दूसरी अपने आप को वचाने की। जब जहाज का वचना सभव न रहा तो उसने बिना किसी दुविधा के आत्मरक्षा करने का निर्णय कर लिया। उसने विचार किया—जब जहाज मे रहने पर भी मैं मर जाऊगा तो कायरो की तरह क्यो मरू? मरना ही होगा तो मर्दानगी के साथ मरूंगा। यद्यपि इस विशाल समुद्र से तैरकर पार होना अशक्य है। लेकिन प्राण छूटने तक हाथ-पैर हिलाते हुए मरूगा। कायर की मौत मरना उचित नही। सफलता मिले या न मिले, मैं अपना उद्योग नही छोडूगा।

कार्य मे जो सफलता की ही आशा रखता है, वल्कि

सफलता की खातिरी करके ही जो कार्य करना चाहता है, वह कार्य नही कर सकता। वह भूल-चूक से कार्य को आरम्भ कर देता है और जब सफलता नही पाता तो उसके पश्चात्ताप का पार नही रहता। वह निराशा के गहरे कूप मे गिर पडता है। इसलिए कहा है—

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**

अर्थात् तुझे कार्य करने का अधिकार है, फल की लालसा करने का अधिकार नही है। तू निष्कामभाव से अपना कर्तव्य पाल। फल तुझे खोजता फिरेगा। तू फल की आशा की भारी गठरी सिर पर लादकर चलेगा तो चार कदम भी नही चल सकेगा।

साहूकार का लडका पटिया के सहारे हाथ-पैर मारता हुआ समुद्र मे वह रहा था। उस समय समुद्र का देव उसके उद्योग को देखकर सोचने लगा—इससे पूछना तो चाहिए कि जब मौत सामने मुंह फाड खडी है, तब यह समुद्र को पार करने की निष्फल चेष्टा क्यो कर रहा है? देव ने आकर पूछा - ओ पुरुष! निरर्थक श्रम करने वाला मूर्ख होता है। समुद्र को तैरकर पार करना सम्भव नही है और फिर तूफान के समय की तो बात ही क्या है? मृत्यु के समय अनावश्यक परिश्रम क्यो कर रहा है? अब हाथ-पैर हिलाना छोड दे और इच्छा हो तो भगवान का नाम जप।

महाजातक हाथ–पैर हिला रहा था। देव की सलाह

सुनकर भी वह निराश नही हुआ। उसने देव से पूछा—आप कौन हैं ? देव ने कहा—मैं समुद्र का देव हूं।

महाजातक—आप देव होकर भी क्या हम मनुष्यो से गये-वीते हैं ? आपका काम तो उद्योग करने के लिए उपदेश देने का है, लेकिन आप तो उद्योग छोडकर डूब मरने का उपदेश देते है ! आप अपना काम करिये और किसी का भला हो सकता हो तो वह कीजिये। मुझे भुलावे मे मत डालिये मैं अपने उद्योग मे लगा हूं। रही भगवान के नाम जपने की वात, सो मौत से बचने और मृत्यु से दुःख न पहुंचने देने हेतु परमात्मा का स्मरण अवश्य करूंगा।

महाजातक ने देव से दूसरो का भला करने के लिए तो कहा, मगर अपने लिए सहायता न मांगी।

महाजातक का उत्तर प्रभावित करने वाला था। उसने सोचा यह मनुष्य ऐसे विकट समय मे भी उद्योग-शील और मृत्यु की ओर से निर्भय है ! इसके विचार कितने उच्च हैं।

देव ने फिर कहा—भाई, उद्योग करना तो अच्छा है, मगर उसके फल का भी तो विचार कर लेना चाहिए। फल की प्राप्ति की सम्भावना न हो तो फिर उद्योग करना वृथा है।

महाजातक—मैं फल देखकर ही उद्योग कर रहा हू। उद्योग का पहला फल तो यही है कि मुझे जो शक्ति मिली है, उसका उपयोग कर रहा हू। दूसरा फल आपका मिलना है। अगर मैं जहाज के साथ ही डूब मरता तो आपके

दर्शन कैसे होते ? मैंने साहस किया, उद्योग किया तो आप मिले ऐसी दशा मे मेरा श्रम क्या वृथा है ?

महाजातक का उत्तर सुनकर देव बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—तुमने मुझसे बचा लेने की प्रार्थना क्यो नही की।

महाजातक—मैं जानता हूं कि देवता कभी प्रार्थना करवाने की गरज नही रखते। उद्योग मे लगे रहने से मेरा मन प्रसन्न है और यही देवता की प्रार्थना है। जिसका मन प्रसन्न और निर्विकार होगा, उस पर देवता स्वय प्रसन्न होगे। इसके अतिरिक्त मेरे प्रार्थना करने पर अगर आपमुझे बचाएगे तो आपके कर्त्तव्य का गौरव कम हो जायगा। बिना प्रार्थना के आप मेरा उपकार करेंगे तो उस उपकार का मूल्य बढ जायगा मैं आपके कर्त्तव्य की महत्ता को कम नही करना चाहता और न यही चाहता हू कि आपके उपकार का मूल्य कम हो जाय।
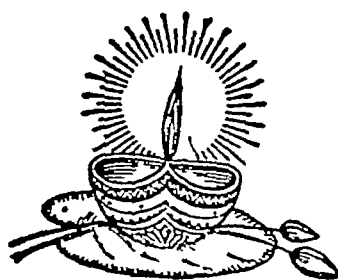
# २८ : सच्चा मित्र

एक राजा का प्रधान था। राजा उसका खूब आदर-सत्कार करता था। प्रधान विवेकवान था। उसने विचार किया—

**राजा जोगी अगिन जल, इनकी उल्टी रीति।**
**बचते रहियो परसराम, थोड़ी पाले प्रीति॥**

अतएव सिर्फ राजा के प्रेम पर निर्भर न रहकर किसी दूसरे को भी अपना मित्र बनाये रखना उचित है। मित्र होगा तो समय पर काम आएगा।

इस प्रकार विचार कर प्रधान ने एक नित्य-मित्र बनाया। प्रधान अपने इस मित्र के संग खाता, पीता और रहता था। वह समझता था कि नित्य-मित्र भी मेरा आत्मा है इस प्रकार प्रधान अपने मित्र को बड़े प्रेम से रखने लगा।

एक मित्र पर्याप्त नही है, यह विचारकर प्रधान ने दूसरा मित्र भी बनाया। यह मित्र पर्व-मित्र था। किसी पर्व या त्यौहार के दिन प्रधान उसे बुलाता-खिलाता-पिलाता और गपशप करता था। प्रधान ने एक तीसरा मित्र और बनाया जो सैन-जुहारी-मित्र था। जब कभी अचानक मिल

गया तो जुहार उससे कर लिया करता था। इस प्रकार प्रधान ने तीन मित्र बनाये।

समय ने पलटा खाया। राजा प्रधान पर कुपित हो गया। कुछ चुगलखोरो ने राजा के कान भर दिये कि प्रधान ने अपना घर भर लिया है, राज्य को अमुक हानि पहुंचाई है, वह गया है, वह किया है, आदि-आदि। राजा कान के कच्चे होते हैं। उसने एक दिन पुलिस को हुक्म दे दिया कि प्रधान के घर पहरा लगा दो और प्रात काल होते ही उसे दरबार मे हाजिर करो।

प्रारम्भ मे राज्य-व्यवस्था प्रजा के उद्देश्य से की गई थी। लोगो ने अपनी रक्षा के लोभ से राजा की शरण ली थी। मगर धीरे-धीरे राजा लोग स्वार्थी बन गये। पहले राजा और प्रजा के स्वार्थो मे विरोध नही था। राजाओ का हित प्रजा का और प्रजा हित राजा का हित था। मगर राजाओ मे विलासिता और स्वार्थभावना ने प्रवेश किया। तब प्रजा के हित का घात करके भी राजा अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे। तभी से राजा और प्रजा के बीच सघर्ष का सूत्रपात हुआ। आज वह सघर्ष अपनी चरम सीमा को पहुच गया है और राजा के हाथो से शासन-सूत्र हट रहा है। राजतन्त्र मरणासन्न हो रहा है और प्रजातन्त्र का उदय हो रहा है।

चुगलखोरो ने झूठे-झूठे गवाह पेश करके सिद्ध कर दिया कि प्रधान दुष्ट है। राजा ने प्रधान को गिरफ्तार करने की आज्ञा दे दी। इधर राजा ने आज्ञा दी और उधर

प्रधान के किसी हितैषी ने प्रधान को राजाज्ञा सम्बन्धी सूचना देकर कहा—गिरफ्तारी मे देर नही है। इज्जत बचाना हो तो निकल भागो।

प्रधान अपनी आबरू बचाने के उद्देश्य से घर से बाहर तो निकल पडा, मगर सोच-विचार मे पड़ गया कि अब कहा जाऊ ? और किसकी शरण लूं ? अत मे उसने सोचा—मेरे तीन मित्र हैं। तीन मे से कोई तो शरण देगा ही। मगर मेरा पहला अधिकार नित्य-मित्र पर है। पहले उसके पास ही जाना योग्य है।

प्रधान आधी रात और अधेरी रात मे नित्य-मित्र के घर पहुचा। किवाड खटखटाए। मित्र ने पूछा—कौन है ?

प्रधान ने दबी आवाज मे कहा—धीरे, बोलो धीरे ! मैं तुम्हारा मित्र हू !

मित्र—मैं कौन ?

प्रधान—तुम तो मुझे स्वर से ही पहचान लेते थे। क्या इतती जल्दी भूल गये ? मैं तुम्हारा मित्र हू।

मित्र--नाम बताओ ?

प्रधान—अरे ! नाम भी भूल गये ! मैं प्रधान हू।

मित्र ने किवाड़ खोलकर आधी रात के समय आने का कारण पूछा। प्रधान ने राजा के कोप की कथा कहकर कहा—यद्यपि मैं निरपराध हू, मगर इस समय मेरी कौन सुनेगा ? इसीलिये मैं तुम्हारी शरण मे आया हू। आगे जो होगा, देखा जायगा।

मित्र—राजा के अपराधी को मेरे घर में शरण ! मैं बाल-बच्चे वाला आदमी हू । आपको मेरे हानि-लाभ का भी विचार करना चाहिए । राजा को पता चल गया तो मिट्टीपलीद होगी ! अगर आप मेरे मित्र हैं तो मेरे घर से आपको अभी-अभी चला जाना चाहिए ।

प्रधान—मित्र, क्या मित्रता ऐसे ही वक्त के लिये नही होती ? इतने दिन साथ रहे, खाया-पीया और मौज की । आज सकट के समय धोखा दोगे ? क्या आज इसी उत्तर के लिये मित्रता बाधी थी ?

मित्र—आप मेरे मित्र है, इसी कारण तो राजा को खबर नही दे रहा हू अन्यथा फौरन गिरफ्तार न करवा देता ? लेकिन अगर आप जल्दी रवाना नही होते तो फिर लाचार होकर यही करना पडेगा ।

प्रधान—निर्लज्ज ! मैंने तुझे अपनी आत्मा की तरह स्नेह किया और तू इतना स्वार्थी निकला ! विपदा का समय चला जायगा, मगर तेरी करतूत सदा याद रहेगी ।

बाहर रात्रि का घोर अन्धकार था और प्रधान के हृदय मे उससे भी घनतर निराशा का अन्धकार छाया था। उसे अपने पर्व-मित्र की याद आई । मगर दूसरे ही क्षण खयाल आया—जब नित्य-मित्र ने यह उत्तर दिया है तो पर्व-मित्र से क्या आशा की जा सकती है ? मगर चलकर देखना तो चाहिए । इस प्रकार विचार कर वह पर्व-मित्र के घर पहुचा । सारी घटना सुनने के बाद मित्र ने हाथ जोडकर कहा—मेरी इतनी शक्ति नही को राजा के विरोधी

को शरण दे सकू । आप भूखे हो तो भोजन कर लीजिए। वस्त्र या धन की आवश्यकता हो तो मै दे सकता हूं । मगर आपको स्थान देने मे असमर्थ हूं ।

प्रधान मैं नगा या भूखा नही हूं । मेरे घर धन की कमी नहीं है । मैं तो इस सकट के समय शरण चाहता हूं । जो संकट के समय सहायता न करे, वह मित्र कैसा ?

जे न मित्र-दुख होहि दुखारी ।
तिनहि विलोकत पातक भारी ॥

जो अपने मित्र के दु ख से दुखित नही होते, उन्हे देखने मे भी पाप लगता है ।

मित्र—मैं यह नीति जानता हूं, मगर राजविरोधी को अपने यहा आश्रय देने की शक्ति मुझमे नही है ।

प्रधान ने सोचा—हठ करना वृथा है । नित्य-मित्र जहां गिरफ्तार कराने को तैयार था, वहा यह नम्रतापूर्वक तो उत्तर दे रहा है ! यह विपत्ति मित्रो की कसौटी है ।

निराश होकर प्रधान सेनजुहारी मित्र की ओर रवाना हुआ । उसने सोचा—इस मित्र पर अपना कोई अधिकार तो है नही, मगर चलकर कसौटी करने मे क्या हर्ज है ? यह सोचकर वह अपने तीसरे मित्र के घर पहुंचा । राजा के कोप की कहानी सुनकर आश्रय देने की प्रार्थना की । मित्र ने दृढता के साथ कहा—खैर, यह तो राजा का ही कोप है, अगर इन्द्र का कोप होता और मैं सहायता न देता

तो आपका मित्र ही कैसा ? आप ऊपर चलिए और निश्चिन्त होकर रहिये। यह घर आपका ही है।

प्रधान अपने मित्र के साथ भीतर गया। मित्र ने उसका सत्कार करके कहा अगर आपको कोई आवश्यकता हो तो बिना सकोच कह दीजिए। प्रधान के मना करने पर उसने कहा—मनुष्य मात्र भूल का पात्र है। अगर कोई भूल हो गई हो तो मुझसे छिपाइये नही, सच-सच कह दीजिए, रोग का ठीक तरह से पता लगने पर ही सही इलाज हो सकता है।

प्रधान सोचने लगा—अपनी बात ऐसे मित्र से नही कहू गा तो किससे कहू गा ? और प्रधान ने उसके सामने दिल खोलकर रख दिया। मित्र ने उसे आश्वासन दिया।

प्रात काल प्रधान के घर की तलाशी ली गई। तभी पता चला कि प्रधान अपराधी न होता तो भागता ही क्यो ? भागना ही उसके अपराधी होने का सबसे बडा सबूत है। राजा के दिल मे बात ठस गई। उसने कहा—ठीक है। पर भागकर जायगा कहां ? जहां भी होगा, पकडवाकर मगवा लिया जायगा।

प्रधान का आश्रयदाता मित्र प्रात काल ही राजा के दरबार मे जा पहुचा था। वह चुपचाप सारी बातें सुनता रहा। सारे शहर मे हलचल मची थी।

सब बातें सुन चुकने के बाद मौका देखकर प्रधान के मित्र ने मुजरा किया। राजा ने कहा—सेठ तुम कभी आते

नही । आज आने का क्या कारण है ?

सेठ—पृथ्वीनाथ, कुछ अर्ज करना चाहता हूं ।

राजा—कहो ।

सेठ—एकान्त मे निवेदन करूंगा ।

राजा और सेठ एकान्त मे चले गये । वहां राजा के पूछने पर सेठ ने कहा—महाराज प्रधानजी ने क्या अपराध किया है ? क्या मैं जान सकता हूं ?

राजा ने कई-एक अपराध गिना दिये, जिनके विषय मे कोई प्रमाण नही था ।

सेठ—आपके कथन को मिथ्या कैसे कहा जा सकता है ? मगर प्रधान के बिना तो काम चलेगा नही । आपने इस विषय में क्या सोचा है ?

राजा—दूसरा प्रधान बुलाएंगे ।

सेठ—कदाचित् वह भी ऐसा ही निकला तो क्या होगा ?

राजा—उसकी परीक्षा कर लेगे ।

सेठ—नये प्रधान की जिस प्रकार जाच करेंगे, उसी प्रकार अगर पुराने प्रधान की ही जाच की जाय तो क्या ठीक न होगा ? वह नया आएगा तो पहले अपना घर बनाएगा । उपद्रव मचा देगा । शायद आपको फिर पश्चात्ताप करना पडेगा । पुराने प्रधान से अभियोगो के विषय मे आप स्वय पूछते और सन्तोषजनक उत्तर न मिलने पर यही कैद कर लेते तो क्या हानि थी ? मगर आपने उस खानदानी प्रधान के पीछे पुलिस लगा दी । यह कहा तक

उचित है, आप सोचे ।

सेठ की बात राजा को ठीक मालूम हुई । उसने कहा—सेठ, तुम राज्य के हितचिन्तक हो । इसी कारण तुम्हे राजा और प्रजा के बीच का पुरुष नियत किया है और सेठ की उपाधि दी गई है । मगर प्रधान न मालूम कहा चला गया है ? वह होता तो मैं उसको सब बात पूछता ।

सेठ—प्रधानजी मेरे आत्मीय मित्र हैं । मुझे उनकी सब बातो का पता है । उनके अभियोगो के विषय मे मुझसे पूछें तो सम्भव है, मैं समाधान कर सकू ।

राजा—प्रधान तुम्हारे मित्र हैं ?

सेठ—मैंने न तो कभी छदाम दी है न ली है । आपके प्रधान होने के नाते और मनुष्यता के नाते, उनसे मेरी मित्रता है । मित्रता भी ऐसी है कि उन्होने मुझसे कोई बात नही छिपाई ।

राजा—अच्छा देखो, प्रधान ने इतना हजम कर लिया ।

सेठ—ऐसा कहने वालो ने गलती की है । फला बही मगवाकर देखिए तो समाधान हो जायगा ।

बही मगवाकर देखी गई । राजा ने पाया कि वास्तव मे अभियोग निराधार है । इसी प्रकार और दो-चार बातो की जाच की गई । सब ठीक पाया गया । सेठजी बीच-बीच मे कह देते थे—हा इतनी भूल प्रधानजी से अवश्य हुई है और वे इसके लिए मेरे सामने पश्चात्ताप भी करते थे ।

आपसे भी कहना चाहते थे, मगर शायद लिहाज के कारण नही कह सके ।

राजा—प्रधान ने पश्चात्ताप भी किया था ? मगर इतने बडे काम मे भूल हो जाना सभव है । वास्तव मे मैंने प्रधान के साथ अनुचित व्यवहार किया है, किन्तु अव तो उसका मिलना कठिन है ? कौन जाने कहा चला गया होगा ?

सेठ—अगर आप उनके सम्मान का वचन दें तो मैं ला सकता हू ।

राजा—क्या प्रधान तुम्हारी जानकारी मे है ?

सेठ—जी हा । मगर बिना अपराध सिर कटाने के लिए मैं उन्हे नही ला सकता । आप न्याय करने का वचन दे तो हाजिर कर सकता हू ।

राजा—मैं वचन देता हू कि प्रधान के गौरव की रक्षा की जायगी । यही नही, वरन् चुगलखोरो का मु ह काला किया जायगा ।

सेठ—महाराज, अपराध क्षमा करे। प्रधानजी मेरे घर पर हैं ।

राजा—सारे नगर मे उनकी वदनामी हो गई है । उसका परिमार्जन करने के लिए उनका सत्कार करना चाहिए । मैं स्वयं उन्हे लिवाने चलू गा और आदर के साथ हाथी पर विठाकर ले आऊ गा । जिसने अपमान किया है, वही मान करे तो अपमान मिट जाता है ।

हाथी सजाकर राजा सेठ के घर की तरफ रवाना हुआ । सेठ ने जाकर प्रधान से कहा—प्रधानजी, आपको दरबार मे पधारना होगा ।

प्रधान—क्या गिरफ्तार कराओगे ?

सेठ—क्या मैं पापी हू ? महाराज द्वार पर आ पहुचे हैं और आदर के साथ आपको ले जाएगे ।

सेठ के साथ बाहर आकर प्रधान ने राजा को मुजरा किया । राजा ने हाथी पर बैठने का हुक्म दिया । प्रधान शर्मिन्दा हुआ । तब राजा ने कहा-जो होना था, हो चुका । शर्माने की कोई बात नही है । मूर्खों की बातो मे आकर मैंने तुम्हारा अपमान किया है । मगर अब किसी प्रकार की शका मत रखो ।

दरबार मे पहुचकर प्रधान ने निवेदन किया—मेरे विरुद्ध जो भी आरोप है उनकी कृपा कर जाच कर लीजिए । इससे मेरी निर्दोषता सिद्ध होगी और चुगलखोरो का मुंह आप ही काला हो जायगा ।

जम्बूकुमार अपनी पत्नियो से कह रहे है—कहो, मित्र कैसा होना चाहिए ? उनकी पत्नियो ने कहा—पहला मित्र तो मुह देखने योग्य भी नही है । दूसरे ने हृदय को नही पहचाना और अनावश्यक वस्तुए पेश की । तीसरे मित्र ने हृदय को पहचाना और उसी के अनुसार उपाय किया । इसलिए मित्र हो तो तीसरे मित्र के समान होना चाहिए ।

जम्बूकुमार कहने लगे—प्रधान के समान मेरे तीन

मित्र है नित्य–मित्र यह शरीर है। इसे प्रतिदिन नहलाता-धुलाता हूं, खिलाता-पिलाता हू और सजाता हूं। परन्तु कष्ट का प्रसग आने पर, जरा या रोग के आने पर सब से पहले शरीर ही धोखा देता है। इतना सत्कार–सम्मान करने पर भी यह शरीर आत्मा के बन्धन नही तोड़ सका। अतएव शरीर को आत्मा से भिन्न और अन्त मे साथ न देने वाला समझकर उस पर ममता रखना उचित नही है।

माता, पिता, पत्नी आदि कुटुम्बी जन पर्व–मित्र के समान है। पत्नी पति पर प्रीति रखती है किन्तु जब कर्म रूपी राजा का प्रकोप होता है, तब वह अपने पति को छुडा नही सकती।

> जा दिन चेतन से कर्म शत्रुता करे।
> ता दिन कुटुम्ब से कोउ गर्ज न सरे ॥

जिस दिन कर्म चेतन के साथ शत्रुता का व्यवहार करता है उस दिन कुटुम्बी जन क्या कर सकते हैं? वे व्याकुल भले ही हो जाए और सहानुभूति प्रकट करे, किन्तु कष्ट से छुडाने मे समर्थ नही होते।

जम्बूकुमार अपनी पत्नी से कहते है—मेरे तीसरे मित्र सुधर्मास्वामी हैं। उन्होने आत्मा और कर्म की भिन्न-भिन्न व्याख्या करके उसी प्रकार समझाया है जैसे सेठ ने राजा को समझाया था। इस तीसरे मित्र की बदौलत ही आत्मा दु:ख से मुक्त होता है और अपने परमपद पर प्रतिष्ठित होता है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य ।

हे आत्मा ! अगर तू चाहे तो दुःख क्षण भर भी नही ठहर सकता । मगर तू धन की कुञ्जी भी अपने हाथ मे रखना चाहता है और स्वर्ग की कुञ्जी भी अपने हाथ में रखना चाहता है । यह दोनो बाते एक साथ नही हो सकतीं वस्तुत. सच्चा मित्र वही है जो उपकार करता है, सकट से बचाता है और सन्मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न करता है । मित्र का यह स्वरूप आध्यात्मिक दृष्टि से ही समझने योग्य नही है किन्तु व्यावहारिक और नैतिक दृष्टि से भी समझने योग्य है । आचारागसूत्र मे कहा है—

पुरिसा ! तुममेव तुम मित्त किं वहिया मित्तमिच्छसि ।

अर्थात्—हे पुरुष ! तू अपना मित्र आप ही है । दूसरे मित्र की अभिलाषा क्यो करता है ?

# २९ : यज्ञ

किसी जमाने नरमेध भी किया जाता था और पशुमेध तो साधारण वात हो गई थी। नरमेध मे मनुष्य की और पशुमेध मे पशुओ की वलि दी जाती थी। नरमेघ की वात जाने दीजिए। वह तो घृणित है ही पर पशुमेघ भी कम घृणित नही है। निर्दयता के साथ पशुओ को आग मे झोक देना शाति प्राप्त करने का कैसा ढोग है, यह वात एक आख्यान द्वारा समझना ठीक होगा।

एक राजा पशु का यज्ञ करने लगा। राजा का मंत्री न्यायशील, दयालु और पक्षपातरहित था। उसने विचार किया—शान्ति के नाम पर वध करना कौन-सी शाति है? क्या दूसरो को घोर अशाति पहुचाना ही शाति प्राप्त करना है? अपनी शाति की आशा से दूसरो के प्राण लेना जघन्यतम स्वार्थ है। क्या इसी निष्कृट स्वार्थ मे शाति विराजमान रहती है? शाति देवी की सौम्य मूर्ति इस विकराल और अधम कृत्य मे नही रह सकती। उसने यज्ञ कराने वाले पुरोहित से पूछा—आप इन मूक पशुओ को शाति पहुचाकर शाति किस प्रकार चाहते है।

पुरोहित ने कहा—इन वकरो का परमात्मा के नाम

पर बलिदान किया जायगा। इस बलिदान के प्रताप से सबको शांति मिलेगी ।

मन्त्री—ईश्वर अगर सब का स्वामी है तो इन बकरो का भी स्वामी है या नही ? और जैसे सब लोग शांति चाहते हैं उसी प्रकार ये शांति चाहते है या नही ? अगर यह भी शांति चाहते है तो इन्हे क्यो मारा जा रहा है ?

पुरोहित मन्त्री के प्रश्न का उत्तर नही दे सका । अतएव उसने क्रोध मे आकर कर्कश स्वर मे कहा—आप नास्तिक मालूम होते है । यहा से दूर चले जाइए, अन्यथा यज्ञ अपवित्र हो जायेगा ।

मन्त्री—मै नास्तिक नही, आस्तिक हू । परन्तु यह जानना चाहता हू कि जिन जीवो के लिए तुम शान्ति चाह रहे हो, उनमे यह बकरे भी है या नही ?

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति, जीविउ न मरिज्जिउ ।

अर्थात्—सभी जीव जीवित रहना पसन्द करते हैं । मरना कोई नही चाहता ।

जब सभी जीव जीना चाहते है और मरना नही चाहते है तो इन्हे अशांति पहुचा कर, मारकर, शान्ति चाहना कहा का न्याय है ? तुम भी शांति चाहते हो, यह बकरे भी शांति चाहते है, फिर इन्हे क्यो मारते हो ?

पुरोहित के पास इस सरल प्रश्न का कोई उत्तर नही था । वह ऊटपटांग बात करके मन्त्री को टालने का उपाय करने लगा ।

मन्त्री ने विचार किया कि यह यज्ञ राजा की आज्ञा से हो रहा है। पुरोहित लोग यो कहने से नही मानेंगे। अतएव उसने प्रधान पुरोहित से कहा—मैं लौट कर आता हू, तब तक इन पशुओ को मारने का काम बन्द रखा जाय। यह मेरी अधिकृत आज्ञा है ?

मन्त्री सीधा राजा के पास पहुचा। उसने राजा से कहा—महाराज ! नगर मे बड़ा अत्याचार हो रहा है।

राजा—तो आप किस काम के लिए है ? अत्याचार को रोकत क्यो नही ?

मन्त्री—अत्याचार करने वाले तो स्वय राजगुरु है। उनके सम्बन्ध मै जब तक आप विशेष आज्ञा न दे, मै क्या कर सकता हू ?

राजा—राजगुरु क्या अत्याचार कर रहे है ?

मन्त्री—लोगो के बच्चो को जबर्दस्ती मूंडकर साधु बना रहे है। सब बच्चे और उनके मा-बाप रो रहे है। आप जैसी आज्ञा दे, वैसा ही किया जाय।

राजा को राज गुरु की जबर्दस्ती अच्छी नही लगी। उसने मन्त्री से कहा—इस अत्याचार को जल्दी रोको। न माने तो कानून के अनुसार उचित कार्यवाही करो।

राजा की आज्ञा प्राप्त कर मन्त्री फिर यज्ञ स्थल पर आया। उसने यज्ञ करने वाले पुरोहितो से कहा—इन पशुओं को छोड दो। इनका हवन नही किया जायगा।

प्र० पुरोहित—क्यो ?

मन्त्री—इनकी आत्मा नही चाहती ।

प्र० पुरोहित—आप शास्त्र की बात नही समझते । हम लोग इन पशुओ की कुछ भी हानि नही कर रहे है । हम तो इन्हे सीधे स्वर्ग भेज रहे है। स्वर्ग मे पहुच कर इन्हे दिव्य सुख प्राप्त होगा । न आप यह जानते हैं और न बकरे ही जानते हैं । हम ज्ञानी हैं । हमने शास्त्र पढे है । अतएव इन बकरो की भलाई मे बाधा मत डालिए ।

मन्त्री—आपका ज्ञान तो आपके कामो से और आपकी बातो से प्रकट ही है । परन्तु जब यह पशु स्वर्ग चाहते हो, तब तो स्वर्ग भेजना उचित कह सकते थे। मगर यह स्वर्ग नही चाहते । जबर्दस्ती इन्हे क्यो भेज रहे हो ?

आखिर बकरे बचा लिए गये । पुरोहित घबराया । उसकी दुकानदारी जो उठ रही थी ! फिर उन्हे पूछता ही कौन ? वे भी राजा के पास पहुचे । कहने लगे—अन्नदाता ! शाति के लिए यज्ञ प्रारम्भ किया गया। परन्तु यज्ञ मे बलि दिये जाने वाले बकरो को मन्त्री ने छुडा लिया और यज्ञ रोक दिया ।

राजा असमजस मे पड गया । सोचने लगा—मामला क्या है ? आखिर उसने मन्त्री को बुलवाया। बकरे छुडवाने के विषय मे प्रश्न करने पर मन्त्री ने उत्तर दिया—महाराज ! मैंने आपकी आज्ञा से पशुओ को मरने से बचाया है ।

राजा—मैंने यह आज्ञा कब दी ?

मन्त्री—आपने आज्ञा दी थी की जबर्दस्ती साधु न

वनाया जाय ।

राजा—वह तो साधु बनाने के विपय मे थी । वकरों के विषय मे तो कोई आज्ञा नही दी गई ।

मत्री—जैसे दूसरे लोग कहते है कि हम साधु बनाकर स्वर्ग भेजते हैं, उसी प्रकार इनका कहना है कि हम वकरो को मार कर स्वर्ग भेजते है । जब जबर्दस्ती साधु नही वनाने दिया जाता तो फिर जवर्दस्ती वकरो को कैसे स्वर्ग भेजा जा सकता है ।

राजा विवेकवान था उसने मत्री की वात पर विचार किया । विचार करने पर उसे जचा कि मत्री की वात सही है ।

राजा ने फिर पुरोहित को वुलवाया । पुरोहित के आने पर राजा ने पूछा—उन पशुओ को मारने का उद्देश्य क्या है ? उन्हे अमर क्यो न रखा जाय ? उन्हे अमर रखने से क्या ईश्वर प्रसन्न नही होगा ?

प्रधान पुरोहित ने कहा—महाराज, आप भी भ्रम मे पड गये है । हम पशुओ को मारते नही, स्वर्ग भेजते है ।

मत्री ने कहा—महाराज, मै पशुओ की ओर से कुछ निवेदन करना चाहता हू । उन पशुओ ने बडी दीनता के साथ प्रार्थना की है । वह प्रार्थना यह है—

कहे पशु दीन सुन यज्ञ के करैया मोहि,
होमत हुताम्न मे कौनसी वडाई है ।
स्वर्गसुख मैं न चहू देहु मुझे यो न कहू,
घास खाय रहू मेरे दिल यही भाई है ।

जो तू यह जानत है वेद यो बखानत है,
जज्ञ-जरौ जीव पाये स्वर्ग-सुखदाई है ।
डारो क्यो न वीर ! यामे अपने कुटुम्बी ही को,
मोहि जिन जारै जगदीस की दुहाई है ।।

पशुओ की यह प्रार्थना है । वे दीन-से-दीन स्वर में यज्ञ करने वाले से कहते हैं—क्या तुम ईश्वर के भक्त हो ? जिस वेद के नाम पर तुम हमे होमते हो, उसमे कहे हुए अहिसा धर्म को छिपा कर हमे होमने मे तुम्हारी कौन-सी वडाई है ? मैं स्वर्ग का सुख नही चाहता । मैं तो घास खाकर जीवित रहना चाहता हू । हे याज्ञिक ! अगर तू सच्चे दिल से समझता है कि यज्ञ मे होमा हुआ जीवधारी स्वर्ग मे जाता है तो अपने कुटुम्ब को ही स्वर्ग मे भेजने के लिए क्यो नही होम देता ? हम मूक पशुओ से क्यो रूठा है !

एक आदमी अपने हाथ मे हरी-हरी घास लेकर खडा हो और दूसरा स्वर्ग मे भेजने के लिए तलवार लिए खडा हो तो इन दोनो मे से पशु किसे पसन्द करेगा ? वह किस की ओर मुह लटकाएगा ?

घास वाले ले की ओर !

इससे प्रकट है कि पशु स्वर्ग जाने के लिए मरना नही चाहता और घास खाकर जीवित रहना चाहता है । मत्री कहता हैं—अगर यज्ञ करने वाले कहते है कि पशुओ को अज्ञान है और हम ज्ञानी है, इसलिए उन्हे स्वर्ग भेजते हैं, तो इसके उत्तर मे पशुओ का कहना है कि हमे तो इस बात पर विश्वास है नही, अगर इन्हे विश्वास है तो ये लोग

अपने कुटुम्ब को स्वर्ग भेजे। अगर इन्होने अपने बेटे को इस प्रकार मारकर स्वर्ग भेजा होता तो हमे विश्वास हो जाता कि ये दिल से ऐसा मानते हैं। मगर जब यज्ञ करने वाले अपने माता, पिता और पुत्र आदि को स्वर्गसुख से वञ्चित रखकर हमे स्वर्ग भेजने की बात कहते है तो हमे इनकी बात पर विश्वास नही होता। इसलिए हमे मारने वालो को परमात्मा की दुहाई है।

मत्री कहता है—उन पशुओ की तरफ से यह फरियाद है और वे इसका उत्तर मागते है ?

राजा ने यज्ञ करने वाले पुरोहितो से पूछा—क्या आप लोग अपने परिवार को यज्ञ मे होम सकते हैं ?

पुरोहित—शास्त्र मे पशुओ को होमने का विधान है, कुटुम्ब को होमने का कही विधान नही है।

राजा—तब तो कहना पडेगा कि आपका शास्त्र भी पक्षपात से भरा है। बस, अब रहने दीजिये। क्षमा कीजिये, मैं ऐसी शान्ति नही चाहता। मेरा उद्देश्य किसी को अशाति पहुचा कर शाति प्राप्त करना नही है। मेरा कर्त्तव्य मुझे सब को शाति पहुचाने के लिए प्रेरित करता है।

मतलब यह है कि किसी भी जीव का हनन करने से शाति प्राप्त नही हो सकती। किसी भी प्राणी को दुःख न पहुंचा ने से ही वास्तविक शान्ति प्राप्त हो सकती है।

## ३० : श्रद्धा

एक विद्याधर ने किसी मनुष्य को अकाशगामिनी विद्या सिखाई । उसने विद्या की परीक्षा तो कर ली, मगर ऐसा अवसर उसे हाथ न लगा कि वह उससे विशेप काम लेता । अन्त मे मरते समय उसने अपने लडके को वह विद्या सिखलाई और कहा वेटा, यह विद्या मैं सिद्ध कर चुका हू । इसमे सन्देह न करना । पिता का देहान्त हो गया ।

जब कुछ समय बीत गया तो लडके ने सिद्ध की हुई विद्या की परीक्षा करने का विचार किया । वह पिता के कथनानुसार सव सामग्री लेकर जगल मे गया । वहा बड के पेड के नीचे एक भट्टी खोदी । उस पर तेल की कढाई जमाई और चौरासी तारो का एक छीका वनाकर सूत के धागे मे वाधकर पेड की डालियो पर लटका दिया ।

भट्टी मे आग जलाकर, जव तेल खौलने लगे तव मत्र को पढते-पढते छीके मे वैठना था और एक-एक वार मत्र वोलकर एक-एक तार काटते जाना था । यद्यपि यह विद्या उसके पिता की आजमाई हुई थी और किसी प्रकार के सशय का कोई कारण न था- फिर भी लडका वहुत डरा । वह सोचने लगा—मैं छीके पर चढू और छीका टूटकर

गिर जाय तो मैं सीधा कढाई मे आ गिरूंगा—जल मरूंगा।

इधर लडका इस पशोपेश मे पडा था, उधर नगर मे, राजमहल मे चोरी हुई। बहुत-सा जवाहरात आदि चोरी चला गया। सिपाही चोर के पीछे पडे। ढूंढते-ढूंढते आखिर चोर दिखाई दिया। अब चोर आगे-आगे भागता जाता था और सिपाही उसका पीछा कर रहे थे। चोर जगल मे पहुंचा। उसे वह लडका दिखाई दिया। सिपाही जगल को चारो ओर से घेर खडे हो गये।

चोर ने लडके से पूछा—भाई क्या कर रहे हो? लडके ने उत्तर दिया—मुझे धन चाहिए। धन प्राप्त करने के लिए अपने पिताजी द्वारा सिद्ध की हुई विद्या से आकाश मे उडकर धन लेने जाऊंगा। पर भय लगता है—कही कडाई मे न गिर पडू?

चोर ने कहा—तुम्हे धन चाहिए तो लो, मेरे पास वहुत-सा धन है। मुझे अपना मन्त्र सिखा दो।

लडका धन लेकर फूला न समाया। उसने चोर को मन्त्र सिखा दिया। चोर वेखटके छीके पर जा बैठा। वह एक वार मन्त्र वोलता और एक तार काट देता। जव सभी तार कट गये तो सर्र-से आकाश मे उड गया। लडके ने सोचा—पिताजी का वताया मन्त्र सच्चा था। मगर मुझे धन की आवश्यकता थी और वह मिल गया। तव जान जोखिम मे डालने की क्या आवश्यकता है?

अरुणोदय हुआ। पूर्व दिशा मे लालिमा छा गई। कुछ-कुछ प्रकाश फैलने लगा। सिपाही झाडी मे दाखिल हुए। उन्होने चोरी के माल के साथ लडके को पकड लिया

लडका हैरान था। उसकी समझ मे नही आ रहा था। उसने कहा—मुझे आप क्यो पकडते है? मैंने अपराध क्या किया है?

सिपाही—चोरी का माल पास मे रख छोडा है और पूछता है—क्यो पकडते हो?

लडका—चोरी का माल? यह चोरी का है? मुझे एक आदमी ने दिया है और वह आकाश मे उड गया है।

सिपाही - चल, रहने भी दे। अब भी हमे उल्लू बनाना चाहता है! आदमी कही आकाश मे उडते हैं! चालाक कही का!

लडके के होश। उड़ गये वह पश्चात्ताप करने लगा कि अगर मैंने पिताजी के वचनो पर विश्वास किया होता तो यह दिन नही देखना पड़ता।

# ३१ : दृष्टि-भेद

किसी गाव मे एक हाथी आया । उसे देखने के लिए गांव के सभी लोग जमा हो गए । उस गाव मे कुछ अन्धे भी रहते थे । वे भी हाथी देखने चले । रास्ते मे किसी ने उनसे कहा—तुम्हारे आखे नही है, हाथी कैसे देखोगे ? अन्धो ने कहा—हम हाथ फेरकर हाथी देख लेगे ।

अन्धे हाथी के पास पहुचे और देखने लगे । एक अन्धे के हाथ मे हाथी का दात आया । वह कहने लगा—मैं समझ गया, हाथी कैसा होता है । हाथी मूसल जैसा होता है ।

दूसरे अन्धे के हाथ मे हाथी की सूड आई । वह पहले अन्धे से कहने लगा—तेरा कहना गलत है । हाथी मूसल जैसा नही, कोट की बाह सरीखा होता है ।

तीसरे अन्धे के हाथ मे हाथी का पैर आया । उसने कहा—तुम दोनो झूठे हो । हाथी खम्भे सरीखा है ।

चौथे के हाथ हाथी का पेट लगा । वह बोला-तुम तीनो झूठ कहते हो । हाथी तो कोठी सरीखा होता है ।

पाचवे अन्धे के हाथ मे हाथी के कान आये । वह बोला-तुम सभी झूठे हो । हाथी तो सूप (छाजला) सरीखा है ।

इस प्रकार और भी अन्धे एक-दूसरे को झूठा कहने

लगे और आपस मे झगडने लगे। इतने मे वहा एक आख वाला मनुष्य आ पहुचा। आख वाले ने उन अन्धो से कहा—तुम लोग आपस मे लडते क्यो हो ? तुम सब एक-एक अश मे सही कहते हो। पर जव सबकी मान्यताओ का समन्वय करोगे तभी हाथी का परिपूर्ण स्वरूप समझ मे आएगा।

आखिरकार उस आख वाले पुरुष ने उन अन्धो को हाथी के एक ही अ ग को हाथी मान लेने से कैसी भ्रमणा उत्पन्न होती है, यह बात समझाई और यह भी समझाया कि किस प्रकार सव के मन्तव्य का समन्वय करने से पूर्ण वस्तु का पता चलता है।

इस दृष्टान्त का सार यह है कि जो व्यक्ति अन्धो की तरह वस्तु के एक अ श को स्वीकार करके अन्य अ शो का सर्वथा खण्डन करता है और एक ही अ श को पकड रखने का आग्रह करता है, वह मिथ्यात्व मे पड जाता है। दूसरे नयो का निषेध करने वाला व्यक्ति स्वयं जिस नय का अव-लम्बन करता है, उसका वह नय दुर्नय वन जाता है। अत-एव अपनी वात का हठ न पकडकर दूसरो के कथन पर भी सम्यक् प्रकार से विचार करना चाहिए और विवेक के साथ पूर्वापर विचार करके सत्य वस्तु पर श्रद्धा रखनी चाहिए। यही सम्यक्त्व है। पुण्योदय होने पर ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। स्याद्वाद-सिद्धान्त किसी किस्म का दुराग्रह न करके यह मानने का उपदेश देता है कि जो सच्चा है सो मेरा, यह नही कि मेरा सो सच्चा। अतएव सम्यक्त्व प्राप्त करके मोक्ष की सिद्धि के लिए पुरुषार्थ करो। सम्यक्त्व मे पराक्रम करना ही मोक्ष-प्राप्ति का राजमार्ग है।

# ३२ : अर्हन्नक की धर्मवीरता

जैसे आप धन चाहते है उसी प्रकार अरणक भी चाहता था। आप व्यापार करते है, अरणक भी व्यापार करता था। एक वार अरणक का जहाज देवता ने दो उंगलियो से उठाकर रोक दिया। तमाम लोग घवरा उठे। बोले—ऐ अरणकजी! तुम क्यो जिद करते हो! तुम्हारी जिद हमे ले बैठेगी।

अरणक ने विश्वस्त भाव से उत्तर दिया—भाइयो! घबराते क्यो हो? तुम्हे डुबाने वाला कौन है?

लोग कहने लगे—वाह भाई, जहाज दो उंगलियों से उठाया हुआ है। पल भर मे उलट सकता है। फिर पूछते हो कौन उलट सकता है?

अरणक ने कहा—मुझसे अधर्म को धर्म मानने के लिए कहा जा रहा है। मै अधर्म को धर्म कैसे मानू? जहाज को डुबाता कौन है? अधर्म ही डुबाता है। धर्म तो तारने वाला है। अगर जहाज डूब भी गया तो चिन्ता क्या है? अधर्म ही तो डूबेगा!

आखिर हार मानकर देवता ने कहा—धन्य है तुझे! तू परीक्षा मे उत्तीर्ण हुआ। तेरा धर्म दृढ है।

मित्रो! जिद करो तो ऐसी करो। सत्य की जिद करने वाले का कल्याण हो जाता है।

# ३३ : परमात्मा की विभुता

परमात्मा को अविनाशी और विभु जानने का प्रमाण है—पाप में प्रवृत्ति न करना । जिसे परमात्मा की नित्यता और व्यापकता पर विश्वास होगा, उससे पापकर्म कदापि न होगा । आपके साथ राजा का सिपाही हो, तब आप क्या चोरी करेंगे ? आपको भय रहेगा कि सिपाही है, चोरी कैसे करे ? इसी प्रकार जिसने परमात्मा को व्यापक जान लिया, वह किसी के साथ कपट कैसे कर सकता है ? जब कभी उसके हृदय मे विकार उत्पन्न होगा, और कपट करने की इच्छा का उदय होगा, तभी वह सोचेगा—ईश्वर व्यापक है, उसमे भी है, मुझमे भी है। मैं कैसे कपट करूं ? मैं जो ठगाई की बुराई करना चाहता हू, उसे परमात्मा देख रहा है। ऐसी स्थिति मे मैं कैसे इस पाप मे प्रवृत्त होऊ ?

परमात्मा की सच्ची प्रार्थना करके हमे इस उच्च स्थिति तक पहुचना है । एक उदाहरण के द्वारा यह बात सरलता से समझ मे आयेगी ।

एक गुरु के पास दो व्यक्ति शिष्य बनने के लिए गये । गुरु के पास पहुचकर उन्होंने निवेदन किया-महाराज ! हम आपकी विद्या, बुद्धि और शक्ति की प्रशसा सुनकर आकर्षित

हुए हैं और आपके शिष्य बनकर सब विद्याएं प्राप्त करना चाहते हैं। कृपा करके आप हमें अपना शिष्य बनाइये।

गुरु को शिष्य का लोभ नहीं था। अतएव उसने कहा—आपको चेला बनना सरल मालूम होता है पर मुझे गुरु बनना कठिन जान पड़ता है। इसलिए पहले परीक्षा कर लूंगा।

आप लोग रुपये बजा-बजाकर लेते हैं और बहिनें हंडियां ठोक-बजाकर लेती हैं। ऐसा न करने से बाद में कभी-कभी पछताना पड़ता है और उपालम्भ सहना पड़ता है। इसी प्रकार चेले खराब निकले तो गुरु को उपालम्भ मिलता है। यों तो भगवान का शिष्य जमाली भी खराब निकला, परन्तु पहले जांच-पड़ताल कर लेना आवश्यक है।

ऐसा विचार कर गुरु ने उन दोनों से कहा—पहले परीक्षा कर लूंगा, फिर शिष्य बनाऊंगा।

शिष्य—जी, ठीक है। परीक्षा कर देखिये।

गुरु ने कोठरी में जाकर एक मायामय कबूतर बनाया और बाहर आकर चेले से कहा—इसे ले जाओ और ऐसी जगह मार लाओ, जहां कोई देखता न हो।

पहले चेले ने कबूतर हाथ में लिया और सोचा—यह कौन कठिन काम है। ऐसी जगह बहुत हैं, जहां एकान्त है—कोई देखता नहीं और मारना तो कबूतर ही है, कोई शेर तो मारना है नहीं। यह सोचकर वह कबूतर को ले गया और किसी गली में जाकर, उसने कबूतर की गर्दन मरोड़ डाली। मरा हुआ कबूतर लेकर वह गुरु के पास

आया। बोला—लीजिये, गुरुजी यह मार लाया। किसी ने देखा नही।

गुरु ने कहा—तुम शिष्य होने योग्य नही। अपने घर का रास्ता पकडो।

चेला—क्यो, मैं अयोग्य कैसे? मैंने ठीक तरह आपकी आज्ञा का पालन किया है।

गुरु—नही तुने मेरी आज्ञा का पालन नही, उल्लंघन किया है।

चेला—मगर आज्ञा तो कबूतर को मारने की ही दी थी आपने। और मैंने उसका पूरी तरह पालन किया है।

गुरु—लेकिन मैंने यह भी तो कहा था कि ऐसी जगह मारना जहा कोई देखता न हो। 'कोई देखता न हो' यहां 'कोई' मे तो सभी शामिल हो जाते हैं। मारने वाला तू, मरने वाला कबूतर और परमात्मा—जो विभु है—वह भी 'कोई' मे शामिल है। जब तुमने कबूतर मारा तो तुम स्वय देखते थे, कबूतर देखता था और ईश्वर भी देखता था। इन सबके देखते कबूतर को मारने पर भी किस प्रकार तुमने मेरी आज्ञा का पालन किया।

चेला अविनीत था। कहने लगा—ऐसा ही था तो आपको पहले ही साफ-साफ बता देना चाहिए था। पहले मारने की आज्ञा दी और जब मार लाया तो कहने लगे कि आज्ञा का उल्लघन किया है। आप कैसे गुरु है, मै अब समझ गया।

गुरु मैने स्पष्ट नही किया था, फिर भी तुम्हे तो समझना चाहिए था। यह सुनकर चेला और ज्यादा भड़का। गुरु ने अन्त मे कहा—भैया, तुम जाओ। मै तुम्हारा गुरु बनने योग्य नही हू।

गुरु ने दोनो नवागन्तुक शिष्यो को अलग-अलग जगह विठला दिया था। एक से निपटकर वह दूसरे शिष्य के पास पहुचे। उसे भी वही कबूतर दिया और पहले की तरह मार लाने की आज्ञा दी।

शिष्य कबूतर लेकर चला। वह बहुत जगह फिरा—खेतो मे गया, पहाड़ो मे घूमा और अन्त में एक गुफा मे घुसा। गुफा मे बैठकर वह सोचने लगा—यह जगह एकान्त तो है, मगर गुरुजी का अभिप्राय क्या है? उनकी आज्ञा यह है कि जहा कोई न देखे, वहा मारना। मगर यहा भी मैं देख रहा हू, कबूतर देख रहा है और सर्वदर्शी परमात्मा भी देख रहा है। गुरुजी दयालु हैं। मालूम होता है, उन्होने अपने आदेश मे कबूतर की रक्षा करने का आशय प्रकट किया है, मारने का नही। चाहे उनके शब्द कुछ भी हो, मगर उन शब्दो से अखण्ड दया का ही भाव निकलता है, मारने का नही।

जिसमे इतनी सहज बुद्धि हो, वही शास्त्र का गम्भीर अर्थ समझने मे समर्थ होता है। वासना से मलिन हृदय शास्त्र का पवित्र अर्थ नही समझ सकता।

शिष्य सोचने लगा—गुरुजी ने कबूतर की रक्षा की शिक्षा देने के साथ ही यह भी जता दिया है कि एकान्त मे

ही गम्भीर विषय समझ आता है। गुरुजी ने जो कुछ कहा था, उस पर मैंने एकान्त मे विचार किया तो मालूम हुआ कि ससार मे ऐसा कोई स्थान नही, जहा परमात्मा न देखता हो। जब परमात्मा सब जगह है तो हिंसा किस जगह की जा सकती है ? इस तरह गुरुजी ने मुझे परमात्मा का भी दर्शन कराया है। उन्होने अपने आदेश द्वारा परमात्मा की विभुता का भान कराया है। दयालु गुरुजी ने प्रारम्भ मे ही कितनी सुन्दर शिक्षाए दी है !

शिष्य प्रसन्न-चित्त और कबूतर को सुरक्षित लिए गुरु के पास लौट आया। गुरुजी भीतर-ही-भीतर अत्यन्त प्रसन्न हुए लेकिन ऊपर से बनावटी क्रोध प्रदर्शित करते हुए कहने लगे—'प्रथमग्रासे मक्षिकापात।' तुमने तो मगलाचरण ही बिगाड दिया। मेरी पहली आज्ञा का पालन नही किया तो आगे चलकर क्या निहाल करोगे ? तुम शिष्य होने के अयोग्य हो, अपना रास्ता नापो।

शिष्य—आप जो कहेगे, वही होगा। लेकिन मुझे मेरी आयोग्यता समझा देगे तो कृपा होगी। अयोग्य तो हू, इसी कारण आपको गुरु बनाना चाहता हू।

गुरु—मैंने यह कबूतर मार लाने के लिए कहा था या नही ?

शिष्य—जी हा, मगर साथ ही यह भी तो कहा था कि जहा कोई न देखे, वहां मारना। मैं जगह-जगह भटका—खेतो मे गया, पहाडो मे गया और गुफा मे गया। किन्तु

ऐसा कोई स्थान नही मिला, जहा कोई देखता न हो। लाचार हो वापस लौट आया।

गुरु—गुफा मे कौन देखता था ?

शिष्य—प्रथम तो मैं ही देख रहा था, दूसरा कबूतर स्वय देख रहा था और तीसरा परमात्मा देख रहा था। गुफा मे जाकर मेने विचार किया तो मालूम हुआ—आपकी आज्ञा मारने के लिए नही, रक्षा करने के लिए है। आपने मुझे ईश्वरीय ज्ञान दिया है। अगर आप मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार करेगे तो आपकी असीम कृपा होगी। मैं तो आपको गुरु बना चुका हू। आपने पहली आज्ञा द्वारा जो तत्त्व समझाया है, वह अकेला ही जीवनशुद्धि के लिए पर्याप्त हो सकता है। लेकिन थोड़ा-सा ज्ञान मिल जाता तो मेरा आचार चमकने लगता।

गुरु ने उसे छाती से लगाकर कहा—बेटा। तू ईश्वर को समझने वाला जिज्ञासु शिष्य है। मै तुझे ज्ञान दूंगा। अगर तूने ईश्वर को सब जगह न माना होता तो गुरु तेरे साथ कहा-कहां फिरता ? तूने ईश्वर को साक्षी स्वीकार कर लिया है। अब तेरे मन मे पाप का प्रवेश न होगा।

# २२ : भील कन्या

एक भील कन्या थी। वह अपने मा–बाप के घर रहती थी। वह जब जङ्गल मे घूमती तो प्रकृति की शोभा देखकर विचार करती यह वृक्ष और यह पहाड तो मुझे कुछ निराला ही पाठ सिखाते है ! प्रकृति की रचना पर विचार करते-करते उसके दिल मे दयाभाव उत्पन्न हुआ। वह उत्तरोत्तर वढता ही गया। धीरे-धीरे उसे ईश्वर के नाम की भी धुन लग गई। जिसके दिल मे दया होती है, उसे परमात्मा के प्रति प्रीति भी जल्दी हो जाती है। यो तो सभी किसी-न-किसी प्रकार से परमात्मा का नाम लेते हैं, लेकिन प्रयोजन मे वडा अन्तर होता है। कहा है—

राम नाम सब कोई कहे, ठग ठाकुर अरु चोर।
विना नाम रीझो नही, तुलसी नन्दकिशोर ॥

ठग भगवान का नाम लेकर ठगाई करने निकलता है और ठाकुर ठगाई से वचने के लिए उसका नाम लेता है। दोनो का प्रयोजन कितना भिन्न है ? दया के साथ परमात्मा को जपना और वात है तथा लोभ-लालच से जपना और वात है !

शवरी मे दया थी। इसलिए उसे परमात्मा के नाम की

लौ लग गई और उसकी परमात्मा-प्रीति वढती गई। यह सब दया का ही प्रताप था।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट मे प्राण ॥

अगर घट में दया है तो जो भी कार्य किया जायगा, अच्छा ही होगा। दया के अभाव मे धर्म की जड़ ही कट जाती है।

पाच और पांच दस होते हैं। कोई गणित का प्रोफे-सर किसी से कहने लगे—तुम मूर्ख हो कि पाच और पाच दस मानते हो। हम पढे-लिखे विद्वान् है। हम कहते है—ग्यारह होते हैं। ऐसा कहने वाले प्रोफेसर से आप यही कहेगे कि हम विना पढे-लिखे ही भले, जो पांच और पाच के योग को ग्यारह तो नही कहते! ज्ञानी कहते है कि दया का धर्म भी 'पाच और पांच दस' की तरह सरल है। उसे सभी सहज ही समझ सकते हैं। वह सब के अनुभव की चीज है। कोई न्यायशास्त्र और व्याकरण का पण्डित आकर आपसे कहने लगे कि धर्म अहिंसामय नही, हिंसामय है, तो आप उसे मान लेंगे? नही आप यही कहेगे कि तुम पण्डित होकर के भी असत्य कहते हो। भारत का भाग्य अच्छा है कि सव लोग अहिंसा को ही धर्म मानते हैं। किन्तु स्वार्थी लोग भुलावे मे डालने की कोशिश करते हैं। अगर कोई भुलावे मे डालने की कोशिश करे तो आप यही कहिए कि तुम वृथा कहते हो। धर्म तो अहिंसा मे ही है।

दयाधर्म के प्रताप से शवरी का ईश्वर-प्रेम वढता ही

गया । वह बड़ी हुई । मा-बाप ने उसका विवाह निश्चित किया । शवरी मन मे सोचने लगी—मा-बाप मेरा विवाह अव किसके साथ करना चाहते है ? जिसके साथ विवाह होना था, उसके साथ मै हृदय से विवाहित हो चुकी हू । लेकिन मेरी बात वे मानेगे कैसे ? इस प्रकार के विचार से वह शवरी-कन्या चिन्ता मे पड़ गई । उसने परमात्मा से प्रार्थना की—प्रभो ! मेरी लाज रखो ।

मीरां ने भी ईश्वर को अपना पति बनाया था । उसने कहा था—

ससारी नो सुख कावो,
परणीने रडावूं पाछो ।
तेने घेर शिद जइए,
रे मोहन प्यारा, मुखडा नी प्रीत लागी रे ।।
परणूं तो प्रीतम प्यारूं,
अखण्ड अहिवात म्हारू ।
राडवा नो भय टालो,
रे मोहन प्यारा,
मुखडा नी प्रीति लागी रे ।। मोहन ।।

शबरी भी सोचती थी—क्या कोई ऐसा पति मिल सकता है जो मुझे कभी राड न बनावे ? पहले सुहागिन बनू और फिर रांड होऊ, यह ठीक नही है । मैं विवाह करूंगी तो ऐसे के साथ करूंगी की अहिवात अखण्ड रहे ।

शबरी के पिता ने उसकी सगाई कर दी । फिर भी

शवरी घबराई नही । वह सोचती थी कि मेरे हृदय मे भगवान है तो सब ठीक ही होगा । अगर पिता ने व्याह भी कर दिया तो भी क्या है ? मेरे हृदय मे तो परमात्मा बस रहा है । मैं उसी की हूं ।

विवाह का समय आया । बरात आ पहुची । शवरीकन्या के पिता ने बरातियो को जिमाने के लिए मुर्गी, तीतर आदि पक्षी इकट्ठे कर रखे थे । उन सब को एक पींजरे मे डाल रखा था ।

रात का समय था । शवरी सोई हुई थी । किसी कारण से सब पक्षी चू-चा करने लगे । प्रकृति न मालूम किस तरीके से क्या काम करती है ? शवरी की नींद खुल गई । पक्षियो का कोलाहल सुनकर शवरी सोचने लगी—पक्षी क्यो चिल्ला रहे है ? यह क्या कहते हैं ? अचानक उसे ध्यान आया—पक्षी शायद कह रहे है कि तू विवाह करती है और हम मारे जायेगे ! शवरी उठी और उसने पींजरा खोल दिया । पक्षी अब स्वतन्त्र थे । अपनी जान लेकर भागे । इधर शवरी ने सोचा—मेरे विवाह करने से पहले इतने जीव बन्धन मे पडे गे । अगर विवाह कर लूंगी तो न जाने कितने बन्धन मे पडेंगे ! मैंने इन्हे स्वतन्त्र कर दिया है । मेरे ऊपर जो बीतेगी, भुगत लूगी । पर इन्हे स्वतन्त्र करने वाली स्वय बन्धन मे क्यो पडे ?

इस प्रकार विचार कर शवरी-कन्या रात्रि मे ही घर से निकल पडी । वह सोचने लगी—लेकिन मैं जाऊंगी कहा ? जहा जाऊंगी, वहीं से पिता पकड़ लाएंगे । मगर—

समझ सोच रे मित्र सयाने,
आशिक हो फिर रोना क्या रे ।
जिन अंखियन मे निद्रा गहरी,
तकिया और बिछौना क्या रे !
रूखा-सूखा गम का टुकडा,
फीका और सलौना क्या रे !
पाया है तो दे ले प्यारे,
पाय पाय फिर खोना क्या रे !

शबरी-कन्या सोचती है मेरा भगवान पर आशिक हुआ है तो डर किसका ? वे जानवर मौत के नजदीक थे। मैंने उनकी पुकार सुनी और उन्हे स्वतन्त्र कर दिया है तो मैं भी कुछ पुण्य लेकर जनमी होऊंगी ! नही तो उन पक्षियो को खोल देने की भावना मुझ मे कहा से आई ? इसलिए चलना चाहिए ।

कहत कबीर सुनो भई साधो,
शीश दिया फिर रोना क्या रे !

सिर दिया है तब सोच कैसा ? चल, निकल चल। रात है, अंधेरा है, यही भाग निकलने का उपयुक्त अवसर है। शबरी निकल चली। उसने निश्चय किया—इन पक्षियो की रक्षा हुई तो मेरी भी रक्षा होगी ।

सवेरा हुआ। घर के लोग जागे। देखा, पीजरा खाली पडा है। सोचा—हाय, अनर्थ हो गया ! किस पापी ने यह कुकर्म कर डाला ! अब मेहमानो का सत्कार कैसे होगा ? ऐन वक्त पर सारी बात बिगड गई ।

जब किसी के स्वार्थ मे बाधा पड़ती है तो वह दूसरो को पापी कहने लगता है। पाप–पुण्य की कसौटी उसका स्वार्थ ही होता है।

थोडी देर बाद पता चला कि कन्या भी गायब है। अब घर वाले बड़े चिंतित हुए। बारात वालो को कैसे मुख दिखलाएंगे। क्या कहकर उनसे क्षमा मागेगे? सब इधर-उधर भागे। सब जगह खोज की। कन्या का पता न चला। शबरी जंगल मे स्वतन्त्रता के साथ रहने लगी। वह सोचने लगी—मैंने घर त्याग दिया है। सत्सग करने की मेरी तीव्र लालसा है। लेकिन मै भील के घर जनमी हू! ऋषि मुझे पास भी नही फटकने देंगे। ऐसी दशा मे मुझे क्या करना चाहिए? ऋषि कुछ भी करे, मुझे सत्संग करना ही है। वह भले मुझे न छूने दे, मैं उनकी सेवा दूर से ही करूंगी। यह विचार कर वह सेवा करने के उद्देश्य से ऋषियो के पास गई। मगर उन्होने पापिनी कहकर उसे दुत्कारा। ऐसे समय मे क्रोध आना स्वाभाविक था, मगर सच्चा भक्त कभी क्रोध नही करता। वह शान्त रही।

मन मस्त भयो फिर क्या बोले,<br>
हीरा पाया गाठ गठियाया<br>
बार—बार याको क्यो खोले?<br>
ओछी थी जब चढी तराजू,<br>
पूरी हुई अब क्या तोले?<br>
हसा पाया मान—सरोवर,<br>
डाबर—डाबर क्यो डोले?

तेरा साहिव तेरे घट मे,
वाहर नयना क्यों खोले ?
मन.................. . बोले ॥

शबरी सोचने लगी–मेरी समीपता से ऋषियो का धर्म जाता है तो मैं दूर ही रहूगी। मैं क्यो उनका धर्म विगाड़ू ? मैंने भक्ति करने की ठानी है। वह तो कही भी हो सकती है ? वह पिछली रात मे जल्दी ही उठ बैठती और जिस रास्ते ऋषि आते-जाते थे, उसे साफ कर देती थी। वह सोचती, यही उनकी भक्ति है कि उन्हे काटे न लगें।

ऋषियो ने पहले दिन सवेरे उठकर देखा कि मार्ग एकदम साफ है। किसी ने झाड-बुहार दिया है। तब आपस मे कहने लगे—यह हमारी तपस्या का प्रताप है। हमारी तपस्या के प्रताप से देव आकर मार्ग साफ कर गये है। इस प्रकार सभी ऋषि अपनी-अपनी तपस्या का फल बतलाकर आपस मे वाद—विवाद करने लगे। शवरी यह जानकर हसी। उसने सोचा—चलो, ठीक है। मुझे देव की पदवी मिली। जब ऋषि लोग आपस मे विवाद करने लगे तो एक वृद्ध ऋषि ने कहा—हम कल निर्णय कर लेगे कि किसके तप के प्रताप से कौन देव आकर मार्ग साफ करता है! अभी आप लोग अपना-अपना काम कीजिए।

दूसरे दिन शवरी फिर मार्ग साफ करने लगी। शृगी ऋषि रखवाली कर रहे थे। उन्होने दूसरे ऋषियो से कहा—देख लो, यह देवता मार्ग साफ कर रहा है।

आप सब इसे प्रणाम कीजिए। यह हम लोगों से भी ऊंची है।

शृंगी ऋषि की बात सुनकर बहुत-से ऋषि कुपित हो गए। कहां एक शबरी और कहां हम ऋषि ! हमसे कहते है—शवरी को प्रणाम करो ! यह तो कहते नहीं कि उसने मार्ग अपवित्र कर दिया, उलटी उसकी प्रशसा करते है। शृंगी प्रायश्चित्त करे, अन्यथा उन्हे अलग कर दिया जाय।

शृंगी ऋषि ने शांतिपूर्वक कहा—तुम झूठे तपस्वी हो। सच्ची तपस्विनी तो यही है।

ऋषिगण—ऋषियो की निन्दा करने वाला हमारे आश्रम मे नही रह सकता। तुम आश्रम से वाहर निकल जाओ।

शृंगी—मिथ्या अभिमान रखने वालो के साथ रहने से कोई लाभ भी नही है। लो, मैं जाता हू।

शृंगी ऋषि आश्रम से वाहर निकल पडे। उन्होने शवरी से कहा—माता, आओ। अगर तुम मुझे अपना पिता समझती हो तो तुम मेरी पुत्री हो।

दोनो कुटी वनाकर रहने लगे। शृंगी ऋषि शवरी को ज्ञान सुनाने लगे। शवरी कहती—पिता न मालूम किसके साथ मेरा विवाह कर रहे है। अव आपकी दया से ज्ञान के साथ मेरा विवाह हो गया।

इसी तरह कुछ दिन वीत गये। ऋषि का अन्तिम

समय आ गया। शबरी ने कहा—अब कौन मुझे ज्ञान देगा !

ऋषि ने धीमे स्वर मे कहा—अब तुझे ज्ञान सुनाने की आवश्यकता नही। दशरथपुत्र राम वन मे आएगे और तेरे अतिथि बनेगे। इस तरह तेरा कल्याण होगा।

ऋषि का देहान्त हो गया। शबरी को पूर्ण विश्वास था कि ऋषि की बात अवश्य सत्य होगी। वह सोचने लगी—राम मेरे अतिथि होगे तो मैं उनका क्या सत्कार करूगी ? यहा बेर के सिवाय और क्या है ? बेरो से ही राम का सत्कार करूगी। उसे ध्यान आया—अगर बेर खट्टे हुए तो ? खट्टे बेर राम को नही देने चाहिए। फिर खट्टे-मीठे का निर्णय कैसे हो ? अन्त में उसने कहा—यह निर्णय करने के लिए मेरी जीभ है ही, फिर चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ? जीभ से बेर चखती जाऊगी। मीठे-मीठे राम के लिए बचाती जाऊंगी और खट्टे-खट्टे मैं खाती जाऊंगी।

शबरी ने सोचा—ऋषि के कथनानुसार राम, सीता और लक्ष्मण के साथ आएगे। उनके लिए अभी से बेर तोडकर रख लूं। कौन जाने, किस समय आ जाएगे ? वक्त पर कहां से लाऊगी ? इस प्रकार विचार कर वह मीठे-मीठे बेर सग्रह करने लगी।

आप एक भीलनी की कथा सुन रहे है। यह उदा-हरण अपनी सद्बुद्धि जगाने के लिए है। इससे स्पष्ट होता है कि इन नीच कहलाने वालो मे भी कैसी उज्ज्वल भाव-नाए भरी रहती हैं। भील-भीलनी मे प्राय. दया नही होती।

उन्हे मार-काट की शिक्षा मिलती है। लेकिन इस भीलनी मे कैसी दया थी कि उसने पक्षियो को स्वतन्त्र कर दिया और बारात आ जाने पर भी विवाह न करके घर से निकल आई ! जब एक भीलनी भी इतना त्याग कर सकती है तो आपको कितना त्याग करना चाहिए ? अपनी आत्मा से पूछो—हे आत्मन् ! तू क्या कर रही है ? उस भीलनी ने विवाह करना त्याग दिया तो तुम क्या लडकी के बदले मे पैसा लेना भी नही त्याग सकते ?

शबरी राम के लिए बेर बीन-बीनकर इकट्ठे कर रही थी। उसे अगर दुःख था तो यही की शृंगी ऋषि ने मुझ पर इतना उपकार किया लेकिन उनके साथी ऋषियों ने उन्हे लाछन लगाया। मेरे और उन ऋषि के पवित्र प्रेम का साक्षी राम के सिवाय और कौन हो सकता है ? राम आएगे तो पता चलेगा।

शबरी जिस वन मे रहती थी, राम, सीता और लक्ष्मण उसी वन मे पहुचे। ऋषियो को राम का आगमन मालूम हुआ। सब ऋषि यह सोचकर प्रसन्न हुए कि राम का सत्सग होगा और उनसे तत्त्वज्ञान की बाते होगी। उन्होने ससार के राज्य आदि सुखो को त्याग दिया है, इस लिये वे महापुरुष हैं। सभी ऋषि सोचने लगे कि राम हमारे आश्रम मे टिकेंगे, क्योकि हमारी तपस्या बहुत है।

मगर राम वहां पहुचे तो सीधे शबरी की कुटिया पर गये। शबरी मे सत्य का बल था। ऋषि कहने लगे—राम भी भूल गये जो हमारे यहा न आकर भीलनी के यहा

गये हैं। आखिर वह भी तो मनुष्य ही ठहरे।

राम शबरी के पास पहुचे। राम को शबरी का हाल कैसे मालूम हुआ, यह कौन कह सकता है? मगर सत्य छिपा नही रहता। सत्य मे अद्भुत आकर्षण होता है, उसी आकर्षण से राम शबरी के पास खिचे चले गये। राम के पहुचते ही शबरी हर्ष-विभोर हो गई। जैसे अन्धे को आख मिलने पर हर्ष होता है, उसी तरह राम के मिलने पर शबरी को हर्ष हुआ। वह भक्ति से विह्वल होकर राम के पैरो मे गिर पडी।

राम ने कहा—शबरी; तेरा हृदय मुझसे पहले ही मिल चुका है। अब कुछ बिछाने को ला तो बैठे।

शबरी के पास बिछाने को क्या था? उसने कुश की एक चटाई बना रखी थी। वह उठा लाई और बिछा दी। राम उस पर बैठ गये। वह लक्ष्मण से कहने लगे-लक्ष्मण! यह कुशासन कितना नम्र है? हम लोग उत्तम-से-उत्तम बिछौनो पर सोये हैं, मगर जो आनन्द इसमे है, वह उनमें कहा?

लक्ष्मण—इस चटाई के आनन्द के आगे मैं तो अवध का आनन्द भी भूल गया हूं!

सीता—जिसके दिये बिछौने से आपने और देवर ने इतना आनन्द माना उस शबरी का भाग्य मेरे भाग्य से भी बडा है! मैं महल मे कितनी तैयारी किया करती थी, लेकिन कभी आपने ऐसी सराहना नही की। वास्तव मे शबरी मेरे लिए ईर्ष्या का कारण बन गई है।

शबरी—प्रभो ! कुछ खाने को लाऊ ?

राम—हा, मुझे ऐसी भूख लगी है कि तेरे हाथ के भोजन के बिना मिट ही नही सकती ।

शवरी अपने वल्कल वस्त्र में बेर भर लाई । शवरी के झूठे बेर कौन खाता ? मगर वह राम थे ? वास्तविकता को समझने वाले और भावना के भूखे थे । बेर खाकर राम कहने लगे—बडे मीठे बेर है शवरी ! तवीयत प्रसन्न हो गई । वडा आनन्द हुआ ।

शवरी के वेरो मे क्या विशेषता थी ? औरो ने राम को मीठा खिलाया होगा और स्वय भी मीठा खाया होगा । लेकिन शवरी ने खट्टे बेर खाये और राम के लिए मीठे रखे । इसके सिवाय शबरी का प्रेम नि.स्वार्थ था । किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर उसने राम का सत्कार नही किया था ।

चन्दनवाला के उड़द के बाकले भी ऐसे ही थे । भगवान महावीर पाच महीने पच्चीस दिन से उपवासी थे । फिर भी उन्होने वाकलों मे आनन्द माना । देवो ने उस कार्य की सराहना की थी ।

लक्ष्मण कहने लगे—आपने वेरो की प्रशंसा कह वताई, लेकिन मैं तो इनकी तारीफ ही नही कर सकता ! इतना कहकर लक्ष्मण ने शवरी से कहा—माता, और बेर ले आ । सीताजी ने भी वेर खाये । उन्हे भी मालूम हुआ, जैसे भीलनी ने वेरो मे अमृत भर दिया है ।

राम ने कहा—सीता, तुमने उत्तमोत्तम भोजन कराये हैं, मगर पति-पत्नी के सम्बन्ध से। शबरी ने किस सम्बन्ध से वेर खिलाये हैं ?

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब ही ते करि राखत राम सनेह सगाई,
घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे भई सब जह पहु नाई।
तब तह कहि शबरी के फलन की रुचिमाधुरी बताई।
जानत ........ . .. ........रघुराई।

राम की पहुनाई कहा न हुई होगी ? आज राम नही है फिर भी उनकी पहु नाई के नाम पर लाखो खर्च हो जाते हैं तो उस समय कैसी न हुई होगी ? मगर जब और जहा उनकी पहु नाई हुई तब वहा उन्होने शबरी के फलों की ही सराहना की।

आज लोग राम को रिझाने के लिए चतुराई से काम लेते हैं। वे सरलता का त्याग कर देते है। किन्तु—

चतुराई रीझे नही,
महाविचक्षण राम।

राम हृदय की सरलता पर रीझते थे। कपट उन्हे रिझा नही सकता था।

ऋषि आलोचना करने लगे—शृंगी ऋषि भूला ही था, राम भी भूल गये ! कलियुग आ रहा है न ? राम को ऋषियो का आश्रम प्यारा नही लगा और भीलनी की

कुटिया अच्छी लगी । खैर, राम गये तो जाने दो । चलो, हम लोग स्नान-भोजन करे ।

ऋषि स्नान करने सरोवर पर गये । सरोवर पर नजर पडी तो चकित रह गए । सरोवर का पानी रक्त की तरह लाल-लाल हो गया और उसमे कीडे विलबिला रहे थे ।

काठियावाड के इतिहास की एक बात स्मरण हो आती है । काठियावाड के एक चारण की दो भैसे चोर चुराकर ले जा रहे थे । एक काठी सरदार ने चोरो से वे भैसे छुडा ली और अपनी भैसो के साथ रख ली । चारण को मालूम हुआ कि हमारी भैसे अमुक सरदार के पास हैं । वह कुछ लोगो को साथ लेकर सरदार के पास पहुचा । उसने कहा—हमारी दो भैसे आपके यहा हैं, वे हमें दे दीजिए ।

भैसे दोनो अच्छी थी । सरदार लालच मे फस गया । उसने कहा—हमारे यहा तुम्हारी कोई भैस नही है ।

चारणो ने कहा—है, आपके यहा हैं । आप अपनी भैसे हमे देखने दे ।

सरदार ने सोचा—इन्हे भैसे दिखलाई तो पोल खुल जायगी । मैं झूठा ठहरूगा । वदनामी होगी । उसने इधर चारणो को वातो मे लगा रखा और उधर दोनो भैसै कटवा डाली और जमीन मे गड़वा दी । इसके वाद चारणो को अपनी भैसे दिखला दी ।

चारणों को विश्वास नही हुआ । अन्त मे शाप देकर

वे वहा से चले गये । चरणो के शाप से या किसी अज्ञात कारण से, सरदार जब दूध खाने बैठता तो दूध मे कीड़े बिलबिलाने लगते !

शृंगी ऋषि जैसे तपस्वी को लाछन लगाने वाले, शवरी जैसी सरल और भक्त महिला की अवहेलना करने वाले और अन्तत राम के विरुद्ध विचार करने वाले उन ऋषियो के लिये सरोवर का जल अगर रक्तवत् हो गया और उसमे कीडे बिलबिलाने लगे तो क्या आश्चर्य है ?

सरोवर के स्वच्छ जल की यह दशा देखकर एक ऋषि ने कहा—हमने पहले ही कहा था कि शृगी और शवरी को दोष मत लगाओ । मगर तुम लोग नही माने । यह उसी का परिणाम है ।

दूसरो ने कहा—जो हुआ, सो हुआ । बीती बात की आलोचना करना वृथा है । अव वर्तमान कर्त्तव्य का विचार करना चाहिये ।

अन्त मे ऋषियो ने स्थिर किया कि राम को यहा लाना चाहिए । ऋषि मिलकर राम के पास पहुचे और निवेदन किया—महाराज, पधारो । सरोवर का जल बिगड़ गया है । उसमे कीडे बुलबुला रहे है, हमारा सब काम रुका हुआ है । आप वहा पधारो और जल को शुद्ध करो ।

राम ने कहा—मेरे चलने से कोई लाभ नही होगा । आप लोग इस शवरी के स्नान का जल ले जाइए और सरोवर मे छिटक दीजिए । जल शुद्ध हो जायगा ।

ऋषि दंग रह गये। सोचने लगे हम शवरी को पतिता समझते हैं और राम ऐसा कह रहे हैं।

शवरी ने कहा—महाराज ! आप मेरे ऊपर बहुत बड़ा बोझा डाल रहे हैं। मैं पतिता अपने स्नान का जल इन ऋषियो के हाथ मे कैसे दे सकती हू ? आप ही पधारिये।

राम—माया मे फसे लोग वास्तविक बात नही समझ सकते। मुझे तुम्हारे बीने बेर खाने मे जो आनन्द अनुभव हुआ है, वह दुर्लभ है। यह सब तुम्हारी पवित्र भावना का प्रताप है। तुम पवित्र हो। अपने स्नान का जल इन ऋषियो को देकर सरोवर का जल शुद्ध कर दो।

शवरी—वैसे तो मैं आपकी आज्ञा नही लाघ सकती, आप जो कहे वह मुझे शिरोधार्य है परन्तु मुझे अपने स्नान का जल ऋषियो के हाथ मे देना उचित मालूम नही होता। अगर आपका आदेश हो तो मै स्वय चली जाऊ ?

राम ने अनुमति दे दी। शवरी ऋषियो के साथ सरोवर पहुंची। जैसे ही सरोवर मे उसने अपना पाव रखा कि जल निर्मल हो गया। यह चमत्कार देखकर ऋषियो की आखें खुली। अपने किये पर पछताने लगे—ओह ! हमने वृथा ही इस सती की अवहेलना की।

शवरी लौटकर राम के पास आई। उसने कहा—महाराज ! मैं अब समझ गई। मुझे इस विचार से बहुत कष्ट होता था कि मेरे कारण शृंगी ऋषि को कलंक सहना पड़ा। आपने मेरा यह दुःख आज दूर कर दिया है। शृंगी

ऋषि मुझे सिखा गए हैं—

ग्रंथ पंथ सब जगत के, बात बतावत तीन ।
राब हृदय, मन मे दया, तन सेवा मे लीन ।।

अर्थात् हृदय मे राम, मन मे दया और तन सेवा मे लगा रहे । बस, इतनी ही बात मैं जानती हूं । इससे अधिक कुछ नही जानती । मेरा विवाह होने वाला था । विवाह के भोज के लिए पिता ने पक्षी पकडे थे । वे तड़फडा रहे थे । मुझसे नही रहा गया और उन्हे मैंने मुक्त कर दिया । मैंने सोचा—बेचारे पक्षी बिना किसी अपराध के मारे जाएगे और मैं इनकी हत्या मे निमित्त बनूंगी ।

भगवान अरिष्टनेमी के विवाह के अवसर पर भी मारे जाने के लिए बहुत से पशु एकत्रित किए गए थे । उन्हे देखकर भगवान ने कहा था—मेरे निमित्त से इतने जीवो की हिंसा हो, यह बात मेरे लिए परलोक मे शान्तिदायक नहीं हो सकती । क्या हिंसा होने से परमात्मा का भी परलोक बिगड़ता था ? नही, लेकिन उन्होने जगत के जीवो को समझाने के लिए ऐसा कहा है ।

शबरी के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लोग क्रोध, ईर्ष्या या अभिमान के कारण चाहे जिसे कलक लगा देते हैं, परन्तु सत्य अन्त मे सत्य ही ठहरता है । झूठ अधिक समय तक नही ठहर सकता ।

जब शबरी ने तालाब का जल निर्मल कर दिया तो उसका सत्य स्थूल रूप मे चमक उठा। उसकी झोपड़ी तीर्थस्थान के समान बन गई। सब ऋषि आश्रम मे आकर कहने लगे—हमने आज ही राम का मर्म समझ पाया है। हम लोग जप-तप करते थे पर यह नही जानते थे कि राम किस बात से प्रसन्न होते हैं? आज यह बात समझ गए।

# ३५ : आत्म-बल :

पुराण में लिखा है कि एक हाथी परमात्मा का भक्त था। वह भगवान का नाम लिया करता था। उसे मालूम था कि आपत्ति आने पर भगवान सहायता देता है, अतएव उससे भगवान की खुशामद करके भगवान को राजी रखना उचित समझा। जिस प्रकार लोक-व्यवहार में अपना मतलव निकालने के लिए दूसरो को प्रसन्न रखना पडता है, उसी भाव से हाथी भगवान को खुश रखने लगा।

जैसे लोग अच्छे-से बडे मकान मे दिखावट के लिये थोडा-सा फर्नीचर रख छोडते हैं, उसी प्रकार कई लोग अच्छा दिखने के लिये, समाज मे अपना मान-सम्मान बढाने के लिये 'धर्म' करते हैं। ऐसे लोग सोचते हैं—संसार के सभी काम हम करते हैं, पर यदि धर्म न करेंगे तो अच्छे न दिखेंगे। लोग हृदय से हमारा आदर नही करेंगे। इस प्रकार के विचार से प्रेरित होकर वे धर्म कर लिया करते हैं, जैसे मकान को अच्छा दिखाने के लिये थोडा-सा-फर्नीचर रख लिया जाता है। मगर सच्चा धर्मिष्ठ पुरुप ऐसा विचार नही करता। उसका विचार इससे भिन्न होता है। उसकी दृष्टि मे धर्म फर्नीचर नही है, वरन् धर्म मकान के समान होता है और अन्याय सांसारिक व्यवहार फर्नीचर

के समान होते हैं। अर्थात् वह धर्म को मुख्य और अन्य व्यवहारो को गौण समझता है। हाथी, सजावट के लिये फर्नीचर रखने वालो के समान धर्म करने वालो मे से एक था। एक दिन हाथी पानी पीने गया। वहा एक मगर ने उसका पाव पकड़ लिया। मगर उसे गहरे पानी की ओर खीच ले चला। यद्यपि हाथी भी बलवान था, उसने अपना पाव छुडाने के लिये पूरा जोर लगाया, लेकिन जिसका जोर जहा के लिये होता है उसका जोर वही चलता है। हाथी स्थलचर प्राणी है, इसलिए उसका जोर जितना स्थल पर काम आ सकता है, उतना जल में काम नही आ सकता। दोनो की खीचातानी हुई, लेकिन मगर जल का जीव था, उसका बल जल मे सफल हो रहा था। उसके आगे हाथी की एक न चली और वह उसे खीच ले चला। हाथी जब खिचने लगा और अपनी सारी शक्ति लगाकर निराश हो गया तो उसने इतने दिनो तक भगवान की खुशामद की थी। वह पुकारने लगा—प्रभो ! मुझे बचाओ। मगर मुझे लिये जाता है। वह मुझे मार डालेगा। त्राहि ! त्राहि ! माम् त्राहि !

हाथी ने इस प्रकार आर्त्तनाद करके भगवान को बहुत पुकारा, पर भगवान तक या तो उसकी पुकार पहुचो नही या भगवान ने उस पर ध्यान नही दिया। तब वह मन मे सोचने लगा—मैंने सुना था, भगवान भीड पडने पर भक्त का भय हटाने के लिये भागे-भागे आते हैं, पर यहां तो उनके आने का कुछ भी चिन्ह नही दिखाई देता। मैं बराबर परमात्मा की पुकार कर रहा हू, फिर भी मगर मुझे खीचे ही चला जा रहा है। इस समय भगवान न

जाने सो गये है या कही चले गये है । जान पडता है, मैं धोखे मे रहा । मैंने भगवान पर भरोसा करके वृथा उनकी खुशामद की ।

इस प्रकार फर्नीचर के समान जो भक्ति हाथी ने की थी, वह बिगड गई । मगर ज्ञानीजनो का कथन है कि आस्तिकता से किसी-न-किसी प्रकार उत्थान अवश्य होता है । हाथी के अन्तर की आस्तिकता जागृत हुई । अन्त मे उसने सोचा—मैं भगवान भगवान रट तो रहा हूं, पर भगवान मेरी जिह्वा पर ही हैं या हृदय मे भी हैं ? अगर मेरे अन्तरग मे ईश्वर का स्थान होता तो मैं मगर के साथ क्यो खीचातानी करता ? मैं मगर के साथ खीचातानी भी कर रहा हूं और भगवान को पुकार भी रहा हूं । यही क्या इस बात का प्रमाण नही है कि मैं भगवान पर पूर्ण रूप से निर्भर नही हूं ? क्या मैं अपने शरीर–बल को ईश्वर-बल से अधिक महत्त्व नही दे रहा हूं ? अगर मैं ईश्वर की शरण मे जाता और अपनी समस्त शक्तिया उन्ही के पावन चरणो मे सर्मापत कर देता तो ईश्वर अवश्य आता। मैं तो अपने शरीर के बल पर भरोसा करता हू । मल-मूत्र से बने हुए इस शरीर पर मेरा जितना विश्वास है उतना परमात्मा पर भी नही है । इसके अतिरिक्त जिस शरीर को मैं अपना समझता हूं, उसी को मगर अपना आहार समझता है । मैं कितने भारी भ्रम मे हू कि मगर के आहार को मैं अपना मान रहा हूं—उस पर मुझे ममत्व हो रहा है ।

इस प्रकार की विचारधारा प्रवाहित होते ही हाथी कहने लगा—अरे मगर ! मैं तुझे धिक्कार रहा था; मगर

अव मैं समझा कि तुझे धिक्कार देने की आवश्यकता नहीं है। अभी तक मैं तुझे इसलिए भला-बुरा कह रहा था कि मुझे शरीर पर ममता थी और इसी कारण मैं ईश्वर को भूला हुआ था और शरीर-बल पर ही भरोसा लगाये बैठा था। अब मैं समझ चुका हूं। तेरे द्वारा जो खाया जा सकता है वह मेरा नही हो सकता। और जो मेरा है उसे तू खा नही सकता। इसलिए भाई, मैं तुझ से क्षमा-याचना करता हूं। तू मेरी कुछ भी हानि नही कर रहा है।

अभी मैंने कहा था—

चाहे फांसी पर लटका दे, भले तोप के मुंह उडवा दे।
आत्म-वली सव को ही दुआ दे, कभी न दे धिक्कार॥

तोप से उडाना क्या कोई भलाई करना है? फिर भी आत्म-वली तोप से उडाने वाले को क्यो दुआ देता है? लेकिन अगर तोप से उडाने वाले की भावना समान ही हो जाय तो फिर आत्म-वली मे और तोप से उडाने वाले मे अन्तर ही क्या रह जाता है?

गजसुकुमार मुनि के सिर पर सोमल ब्राह्मण ने जलते अंगारे रख दिये, फिर भी गजसुकुमार मुनि ने सोमल को उपकारी माना या अपकारी?

उपकारी।

मित्रो! तुम जो धर्म-क्रिया करते हो, वह लोक को दिखाने के लिए मत करो। अपनी आत्मा को साक्षी वना-कर करो। निष्काम कर्तव्य की भावना से प्रेरित होकर

करो। अपनी अमूल्य धर्म-क्रिया को लौकिक लाभ के लघु-तर मूल्य पर न बेच दो। चिन्तामणि रत्न को लोहे के बदले मत दे डालो।

'चाहे फासी पर लटका दो' यह पद चाहे आधुनिक वातावरण को लक्ष्य करके कहा गया हो, पर हमारे लिए तो हमारे ही शास्त्रो मे इसके प्रमाण मौजूद है। गजसुकुमार के सिर पर अंगारे रखे गये, अनेक मुनियो को कोल्हू मे पेरा गया, फिर फासी लटकाने मे क्या कसर रह गई ? इतने उज्ज्वल उदाहरण विद्यमान होने पर भी आप धर्म मे बनियाई चला रहे है !

हाथी ने मगर से कहा—मुझ मे भक्ति है या नही, इसकी परीक्षा तू ही कर रहा है। तू ही है जिससे मेरी भक्ति की परीक्षा होगी। जा, ले जा, और खा। मैं अब अपना बल न लगाऊगा।

हाथी ने अपना बल लगाना छोड दिया। खीचातानी बन्द हो गई। हाथी ने कहा—प्रभो! भले ही मेरा शरीर चला जाय, पर तू न जाने पाये। मैं यह शरीर देता हू और इसके बदले तुझे लेता हू।

इस प्रकार विचार कर हाथी ने भगवान के नाम का उच्चारण आरम्भ किया कि उसी समय हाथी मे एक प्रकार का अनिर्वचनीय बल प्रकट हुआ। उस बल प्रभाव से हाथी अनयास ही छूट गया और विपत्ति से छूटकर आनन्द में खडा हो गया। अपने यहा भी कहा है कि पाच ह्रस्व अक्षरो का उच्चारण करने मे जितना समय लगता है, उतना ही समय आत्मा को मोक्ष प्राप्त करने मे लगता है।

हाथी मगर के फन्दे से छूटकर अलग जा खडा हुआ। वह सोचने लगा—कैसी अद्‌भुत घटना है। मैं मगर से कहता हू—खा और वह मुझे छोड़ गया।

सासारिक बल का अभिमान त्याग देने पर आत्म-बल प्रकट होता है। वही भगवद् बल है। उसकी शक्ति अचिन्त्य है।

# ३६ : शूकरी-इन्द्राणी

एक ऋषि थे। उनसे कोई चूक हो गई। चूक के प्रताप से वह मर कर शूकरी हुए। कर्म की गति बडी विचित्र है। जैन शास्त्र के अनुसार भी मुनि को चण्डकौशिक सांप होना पडा था।

तो वह मर कर शूकरी हुए। उनके तप का कुछ पुण्य तो था ही, मगर चूक के कारण उन्हें इस निकृष्ट योनि में जन्म लेना पड़ा। शूकरी बड़ी हुई। इधर-उधर कूड़ा-कचरा खाने लगी और उसी मे प्रसन्न रहने लगी। इस अवस्था में वह ऐसा आनन्द मानने लगी कि मानो इन्द्राणी हो। थोड़े दिनो बाद उसे मस्ती चढी। सूअर के साथ क्रीडा करने लगी। गर्भवती हुई। बच्चे हुए। वह उन बच्चो पर बहुत प्रेम करने लगी।

इतने में उसका चूक के कर्म का भोग पूरा हो गया। धर्मराज के घर से विमान आया। धर्मराज के दूतो ने उससे कहा—चल, अब स्वर्ग मे चल, तेरा यह कर्मभोग पूरा हो गया है।

सूअरी यह सुनकर रोने लगी। रोती-रोती बोली—अभी मुझे मत ले चलो। मेरे बच्चे अभी छोटे हैं। देखो,

वह मैला पडा है, मुझे वह खाना है। थोडे दिन और दया करो । मुझे बचाओ ।

सूअरी की बात सुनकर देवदूत हसने लगे । उन्होंने सोचा—इसकी दृष्टि मे स्वर्ग के सुख इन सुखो से भी तुच्छ हैं।

फिर देवदूतो ने कहा-नही, तुझे अभी चलना पड़ेगा। साथ लिये बिना हम मानने वाले नही ।

अन्तत सूअरी रोती रही और देवदूत उसे ले चले। स्वर्ग पहुचने पर उसका हृदय पलट गया। उन देवदूतों नें उससे कहा—चल, तुझे वापिस लौटा आते है। अपने अधूरे काम पूरे कर ले मगर वह अब लौटने को तैयार नही थी । स्वर्ग मे पहुचने के बाद कौन अभागा ऐसा होगा, जो सूअर का काम करने के लिए स्वर्ग छोडकर आयेगा।

इस कथा के आधार पर प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्थिति पर विचार करना चाहिए कि हमारी स्थिति भी कही इस कथन की 'नायिका' जैसी ही तो नही है ?

दो छोरा दो छोकरी, सो करती ममता माया,
लाख लाख बेटा हुआ, पछै काम नही आया ।

परतख देख लो, दुख पडे सारा, बिललावे जावे चेतन एकलो ।
गाफिल मत रह रे, मुश्किल यह अवसर फिर पावणो ।।

देवदूत की पालकी सामने खड़ी है । जिसे उसमें सवार होना हो, हो सकता है । लेकिन, सवार होने की

इच्छा रखने वाले को आसुरी प्रकृति की बाते छोड़कर दैवी प्रकृति की बाते आचरण मे लानी पड़ेगी। अगर कोई कहता है कि आसुरी प्रकृति के बिना काम नही चलता तो यह तो सूअरी की जैसी ही बात हुई या नही ? इस गन्दे जीवन के लिए उच्च जीवन को भूलते हो ? ससार बड़ा विषम है। यहा बडी-बडी स्थिति वाले भी नही रहे तो तुम्हारी हैसियत ही क्या है ? इस बात को भूलकर अगर ऐसी ही स्थिति मे पडे रहे तो समय बीत जाने पर पछताने से भी क्या लाभ होगा ?

# ३७ : मम्मन सेठ

जव तक कोई वस्तु प्राप्त नही है, तव तक मनुष्य को उसकी इच्छा होती है, लेकिन जव वह प्राप्त हो जाती है, तव उससे भी आगे की अप्राप्त वस्तु की इच्छा होती है। जैसे-जैसे पदार्थ प्राप्त होते जाते हैं, वैसे-ही-वैसे इच्छा वढती जाती है। इस तरह ससार की सामग्रियों का अन्त तो आ सकता है, लेकिन इच्छा का अन्त नहीं आता। यह वतलाने के लिए ग्रन्थो मे एक कथा आई है।

मम्मन नाम के एक सेठ के पास ९९ क्रोड सोनैया की सम्पत्ति थी। उसने सोचा—मेरी यह विशाल सम्पत्ति मेरे लड़के खर्च कर देगे, इसलिए कोई ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, जिससे लडके इस सम्पत्ति को खर्च न कर सके, किन्तु इसकी वृद्धि करते रहे। मम्मन सेठ ऐसा ही उपाय सोचा करता। अन्त मे उसने उपाय सोच लिया। उसने अपने घर के भूमिगृह मे एक सोने का वैल वनवाया, जिसके चारो ओर मणि-माणक आदि मूल्यवान् रत्न लगे हुए थे। मम्मन सेठ ने प्रायः अपनी समस्त सम्पत्ति लगाकर वह वैल तैयार कराया। जब वैल वनकर तैयार हो गया, तव मम्मन सेठ वहुत ही प्रसन्न हुआ; लेकिन साथ ही उसे यह विचार हुआ कि अकेला होने के कारण यह वैल शोभाहीन है।

इसलिए ऐसा ही एक बैल और बनवा कर इस बैल की जोडी मिला देनी चाहिए।

स्वर्ण-रत्न से बने हुए बैल की जोडी मिलाने के विचार से प्रेरित होकर मम्मन सेठ फिर धन कमाने लगा। वह धन के लिए न्याय-अन्याय झूठ-सत्य आदि किसी भी बात की परवाह न करता। उसका एक मात्र उद्देश्य पुनः उतनी ही सम्पत्ति प्राप्त करना था, जितनी सम्पत्ति लगाकर उसने भूमिगृह मे स्वर्ण-रत्न का बैल बनवाया था। दिन-रात वह इसी चिन्ता मे रहता कि मेरा उद्देश्य कैसे पूरा हो? उसे रात के समय पूरी तरह नीद भी न आती। यद्यपि वह धन के लिए अन्य समस्त बातो की उपेक्षा करता था, फिर भी ६६ करोड के लगभग सम्पत्ति एकत्रित करना कोई सरल बात न थी, जो चटपट एकत्रित कर लेता।

वर्षा के दिन थे। रात के समय विस्तर पर पडा हुआ मम्मन सेठ यही सोच रहा था कि किस प्रकार बैल की जोडी का दूसरा बैल बने! सहसा उसे ध्यान हुआ कि वर्षा हो रही है और नदी मे पूर है। नदी में लकड़िया आती होगी। मैं पड़ा-पडा क्या करता हू! नदी से लकडियां ही क्यो न निकाल लाऊ! दस पाच रुपये की भी लकड़ियां मिल गई, तो क्या कम होगी!

जिसकी इच्छा बडी हुई है, वह चाहे जैसा बड़ा हो और स्वय को चाहे जैसा प्रतिष्ठित मानता हो, लेकिन उसे मम्मन सेठ की तरह किसी कार्य के करने मे विचार या सकोच न होगा। फिर चाहे वह कार्य उसकी प्रतिष्ठा के अयोग्य ही

क्यों न हो ।

मम्मन सेठ नदी पर गया । वह नदी के बहाव में आने वाली लकड़ियों को पकड़-पकड़कर निकालने और एकत्रित करने लगा । जब लकड़िया बोझ भर हो गई, तब मम्मन सेठ बोझ को सिर पर रखकर घर की ओर चला । चलते-चलते वह राजा के महल के पास आया । उस समय रानी झरोखे की ओर से वर्षा की बहार देख रही थी । सयोगवश उसी समय बिजली चमक उठी । बिजली के प्रकाश मे रानी ने देखा कि एक आदमी सिर पर लकड़ियों का बोझ लिये नदी की ओर से चला आ रहा है । यह देख रानी ने राजा से कहा—महाराज, आपके नगर मे कैसे-कैसे दु खी हैं, यह तो देखिए ! अन्धेरी रात का समय है, बादल गरज रहे है और वर्षा हो रही है, फिर भी यह आदमी लकडी का बोझ लिये जा रहा है। यदि यह दु खी न होता तो इस समय घर से बाहर क्यो निकलता और कष्ट क्यो उठाता । आपको अपनी प्रजा का कष्ट मिटाना चाहिए ।

रानी के कहने से राजा ने भी मम्मन सेठ को देखा । वास्तव मे यह दु खी है और इसका दुःख अवश्य मिटाना चाहिए, इस विचार से राजा ने एक सिपाही को बुलाकर उससे कहा कि महल के नीचे जो आदमी जा रहा है, उससे कहदो कि वह सवेरे दरबार मे हाजिर हो ।

सिपाही गया । उसने मम्मन सेठ को राजा की आज्ञा सुनाई । मम्मन सेठ ने कहा—मैं महाराज की आज्ञानुसार सवेरे हाजिर होऊगा ।

दूसरे दिन सवेरे, अच्छे कपडे-लत्ते पहनकर मम्मन सेठ दरबार मे पहुंचा। राजा ने उससे आने का कारण पूछा। मम्मन सेठ ने कहा—आपने रात के समय सिपाही द्वारा मुझे दरबार मे हाजिर होने की आज्ञा दी थी। मैं हाजिर हुआ हू। राजा ने कहा कि— मैने तो उस आदमी को हाजिर होने की आज्ञा दी थी जो रात के समय लकडी का बोझ लिये नदी की ओर से आ रहा था। तुम्हारे लिए हाजिर होने की आज्ञा नही दी थी। मम्मन सेठ ने उत्तर मे कहा—वह व्यक्ति मैं ही हू। राजा ने साश्चर्य पूछा—भयकर रात मे सिर पर लकड़ी का गट्ठा रखे हुए नदी की ओर से क्या तुम्ही चले आ रहे थे ?

मम्मन—हा महाराज।

राजा—तुम्हें ऐसा क्या कष्ट हैं, जो उस समय नदी मे से लकड़ी निकालने गये थे ? यदि कोई जानवर काट खाता अथवा नदी के प्रवाह मे बह जाते तो ?

मम्मन—महाराज, मुझे एक बैल की जोडी मिलानी है। उसके लिए धन की आवश्यकता है। इसीलिए मैं रात को नदी के बहाव से लकडिया निकालने के लिए गया था।

मम्मन सेठ के कथन से राजा ने समझा-बनिये लोग स्वभावत· कृपण हुआ करते हैं इसलिए कृपणत के कारण यह सेठ अपने पास से पैसे लगाकर बैल नही लाना चाहता, किन्तु इधर-उधर से पैसे एकत्रित करके उनसे बैल लाना चाहता है। यह विचार कर राजा ने मम्मन सेठ से कहा—बस इसीलिए अपने प्राणो को इस प्रकार आपत्ति मे डाला

था ? तुम्हें जैसा भी चाहिए, वैसा एक वैल मेरी पशुशाला से ले जाओ।

मम्मन - मेरे यहां जो वैल है, उसकी जोड का वैल आपके यहा नही हो सकता।

राजा — मेरे यहा वैसा वैल नही है, तो खजाने से रुपये लेकर वैसा वैल खरीद लाओ !

मम्मन — महाराज, वैसा वैल मोल भी नही मिल सकता।

राजा—तुम्हारा वैल कैसा है, जिसकी जोड़ का वैल मेरी पशुशाला मे भी नही मिल सकता और मोल भी नहीं मिल सकता ! तुम्हारे उस वैल को यहां मगवाओ मैं देखूंगा।

मम्मन—वह वैल यहां नही आ सकता। हां यदि आप मेरे घर पधारें, तो उस वैल को अवश्य देख सकते हैं।

राजा ने मम्मन सेठ के यहा जाना स्वीकार किया। राजा को साथ लेकर मम्मन सेठ अपने घर गया। वह राजा को तहखाने मे ले गया और स्वर्ण-रत्न का वैल वताकर कहा - महाराज, मैं इस वैल की जोड़ी मिलाना चाहता हू। उस रत्नजटित स्वर्ण-वैल को देखकर राजा दग रह गया। वह सोचने लगा कि—इस वैल को वनवाने मे जितनी सम्पत्ति लगी है, उतनी सम्पत्ति से जब इसको सन्तोष नहीं हुआ, तव ऐसा दूसरा वैल पाकर इसे कव सन्तोष होगा !

अव इस प्रकार विचार कर राजा लौट आया। उसने रानी से कहा कि—रानी, रात के समय तुमने जिस आदमी को सिर पर लकड़ी का गट्ठा लेकर जाते देखा था, वह

आदमी यहां का एक धनिक सेठ है । उसको और किसी कारण दुःख नही है, किन्तु तृष्णा के कारण दुःख है। उसे मिटाने मे मैं सर्वथा असमर्थ हूं । उसने ९९ करोड़ सोनैया की लागत का एक बैल बनाया है, जो सोने का है और जिस पर रत्न जड़े हुए है। इतनी सम्पत्ति होने पर भी उसकी तृष्णा शान्त नही हुई और वह वैसा ही दूसरा बैल बनवाना चाहता है । कौन कह सकता है कि वैसा ही दूसरा बैल बनवा लेने पर उसकी तृष्णा शान्त हो जावेगी और वह सुखी हो जावेगा ? ऐसा आदमी, जब तक उसकी तृष्णा बढी हुई है, कदापि सुखी नही हो सकता ।

# ३८ : पूणिया श्रावक

एक समय मगधाधिप महाराज श्रेणिक ने श्रमण भगवान महावीर से अपने भावी भव के सम्वन्ध मे पूछा। वीतराग भगवान महावीर को राजा श्रेणिक की प्रसन्नता अप्रसन्नता की कोई अपेक्षा न थी। इसलिए राजा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर मे कहा कि—राजन् ! यहा का आयुष्य पूर्ण करके तुम रत्नप्रभा पृथ्वी यानि नरक मे उत्पन्न होओगे। राजा श्रेणिक ने भगवान से फिर प्रश्न किया—प्रभो ! क्या कोई ऐसा उपाय भी है जिससे मै नरक की यातना से वच सकूं ? भगवान ने उत्तर दिया—उपाय तो अवश्य है, लेकिन यह उपाय तुम कर न सकोगे। जव श्रेणिक ने भगवान से उपाय वताने के लिए आग्रह किया तव भगवान ने ऐसे चार उपाय वताये, जिनमे से किसी भी एक उपाय के करने पर वह नरक जाने से वच सकता था। उन चार उपायो मे से एक उपाय पूनिया श्रावक की समायिक लेना था।

महाराज श्रेणिक ने पूनिया श्रावक के पास जाकर कहा—भाई पूनिया ! तुम मुझसे इच्छानुसार धन ले लो और उसके वदले मे मुझे अपनी सामायिक दे दो। राजा के इस कथन के उत्तर मे पूनिया श्रावक ने कहा—सामायिक

का क्या मूल्य हो सकता है, यह मैं नही जानता हू । इसलिए जिनने आपको मेरी सामायिक लेना बताया है, आप उन्हीं से सामायिक का मूल्य जान लीजिये ।

राजा श्रेणिक फिर भगवान महावीर की सेवा में उपस्थित हुए उन्होने भगवान को पूनिया श्रावक का कथन सुनाकर पूछा—पूनिया श्रावक की सामायिक का क्या मूल्य हो सकता है ? भगवान ने राजा श्रेणिक से पूछा—तुम्हारे पास इतना सोना है कि जिसकी छप्पन पहाडियां (डुंगरिया) वन जावे, परन्तु इतना धन तो सामायिक की दलाली के लिए भी पर्याप्त नही है । फिर सामायिक का मूल्य कहा से दोगे ? भगवान का यह कथन सुनकर राजा श्रेणिक चुप हो गया ।

यह घटना इसी रूप में घटी हो या दूसरे रूप मे या कथानक की कल्पना मात्र ही हो, किन्तु बताना यह हैं कि सामायिक के फल के सामने सासारिक सम्पदा तुच्छ है, फिर वह कितनी भी और कैसी भी क्यो न हो !

# ३९ : राजा-जनक

इच्छा परिमित करके भी, यथाशक्ति उन पदार्थों में आसक्त नही होना चाहिए जो पदार्थ मर्यादा मे रखे गये है। मर्यादा मे रखे गये पदार्थों में वृद्धि न होनी चाहिए। यदि मर्यादा में रहे हुए पदार्थो मे वृद्धि न की, उनके प्रति निर्मम-त्व रहा, तो पदार्थ का सर्वथा त्याग न कर सकने पर भी वह व्यक्ति एक प्रकार से अपरिग्रही के समान ही माना जायेगा और उसको वहुत अंश मे लाभ भी वैसा ही होगा।

भरत चक्रवर्ती छ. खण्ड पृथ्वी के स्वामी थे, लेकिन वे उस राज्य-सम्पदा के प्रति ममत्वहीन रहते थे। इस कारण उन्हे कांचमहल मे ही केवलज्ञान हो गया। नमीराज के पास समस्त राज्य-सम्पदा विद्यमान थी और वे राज्य भी करते थे, फिर भी 'राजर्षि' कहे जाते थे। इसका कारण यही था कि वे राज्य मे मूर्छित नही रहते थे।

नमीराज की ही तरह राजा जनक के विषय में भी प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि उनके पास शुकदेवजी ज्ञान सीखने के लिए गये। उन्होने जनक के द्वार पर जाकर अपने आने की सूचना जनक के पास भेजी। उत्तर मे राजा ने उन्हे द्वार पर ही ठहरे रहने को कहलाया। शुकदेवजी

तीन दिन तक जनक के द्वार पर ही ठहरे रहे । चौथे दिन जनक ने उन्हे अपने पास बुलवाया । राजा जनक के सन्मुख जाकर शुकदेवजी ने देखा कि राजा अच्छे सिहासन पर बैठा है और उस पर चवर-छत्र हो रहा है । शुकदेवजी सोचने लगे कि पिता ने मुझे इसके पास क्या ज्ञान सीखने भेजा है ! यह माया मे फसा हुआ है, मुझको क्या ज्ञान देगा ?

शुकदेवजी इस प्रकार सोच ही रहे थे कि इतने ही में राजा के पास खबर आई कि नगर मे आग लग गई है और नगर जल रहा है । फिर खबर आई कि आग महल तक आ गई है । तीसरी बार खबर आई—आग ने महल का द्वार घेर लिया है । राजा जनक इन सब खबरो को सुनकर किंचित् भी नही घबराये, किन्तु वैसे ही प्रसन्न बने रहे, लेकिन शुकदेवजी चिन्तित हो गये । राजा ने उनसे पूछा—नगर या महल मे आग लगने से आपको चिन्ता क्यों हो गई ?

शुकदेवजी ने उत्तर दिया—मेरा दण्ड और कमण्डलु द्वार पर ही रखा है । मुझे उन्ही कि चिन्ता है, कही वे न जल जाये ।

राजा ने उत्तर दिया मुझको नगर या महल के जलने की भी चिन्ता नही है, न दुःख ही है, और आपको दण्ड कमण्डलु की ही चिन्ता हो गई ! इस अन्तर का क्या कारण है ? यही कि मैं राज्य करता हुआ और नगर तथा महल मे रहता हुआ भी इनसे ममता नही रखता, इनको अपना नही मानता और आप दण्ड कमण्डलु को अपना मानते है।

आपको आपके पिता ने मेरे पास यही ज्ञान लेने के लिए भेजा है कि जिस प्रकार मैं निर्मम रहता हूं उसी प्रकार ममतारहित होकर रहो। संसार के किसी भी पदार्थ को अपना मत समझो, न किसी पदार्थ से अपना स्थायी सम्बन्ध मानो किन्तु यह मानो कि आत्मा अजर तथा अविनाशी है और संसार के समस्त पदार्थ नाशवान हैं। इसलिए आत्मा का सासारिक पदार्थों से कोई वास्तविक सम्बन्ध नही है।

शास्त्र में नमीराज विषयक वर्णन भी ऐसा ही है। नमीराज को जब संसार की असारता का ज्ञान हो गया था और वे विरक्त हो गये थे, उस समय उनकी परीक्षा करने के लिए इन्द्र ने ब्राह्मण का वेश बनाकर उनसे कहा था कि वह देखो तुम्हारी मिथिला नगरी जल रही है! तब नमीराज ने उत्तर दिया था—

सुहं वसामो जीवामो जेसि मो नत्थि किंचणं।<br>
महिलाए डज्झमाणीए न मे डज्झइ किंचणं॥

अर्थात् मैं सुख से रहता हूं और सुखपूर्वक ही जीवित हू, महल और मिथिला नगरी से मेरा कोई सम्बन्ध नही है। मिथिला नगरी के जलने से मेरा कुछ भी नही जलता।

तात्पर्य यह कि मर्यादा मे रहे हुए पदार्थों से भी ममत्व न करना, किन्तु निर्मम रहना। उनकी प्राप्ति से न प्रसन्न होना, न उनके वियोग से दु:ख करना।

# ४० : भरत और सुनार

भगवान ऋषभदेव समवसरण मे विराजमान थे। द्वादश प्रकार की परिषद् भगवान का उपदेश श्रवण कर रही थी। भगवान ने अपने उपदेश मे कहा—महारम्भी और महापरिग्रही की अपेक्षा अल्पारम्भी और अल्पपरिग्रही शीघ्र मोक्ष जाता है। भगवान का यह उपदेश एक सुनार ने भी सुना। उसने सोचा—मेरे पास बहुत थोडी सम्पत्ति है और मैं आरम्भ भी बहुत कम करता हूं। दूसरी ओर भरत चक्रवर्ती के पास छ खण्ड पृथ्वी का राज्य है, चौदह रत्न है और अनेक प्रकार की सम्पत्ति है, इसलिए वे महापरिग्रही है और राजकार्यादि मे आरम्भ भी बहुत होता है। इस प्रकार भरत चक्रवर्ती की अपेक्षा मैं अल्पारम्भी, अल्पपरिग्रही हूं तथा मेरी अपेक्षा भरत चक्रवर्ती महारम्भी, महापरिग्रही हैं। इसलिए भरत चक्रवर्ती से पहले मे मुक्त होऊंगा।

सुनार ने अपने मन मे इस प्रकार सोचा। फिर उसने विचार किया कि इस विषय में भगवान से ही क्यो न पूछू! देखे, भगवान क्या कहते हैं? इस प्रकार विचार कर सुनार ने अवसर पाकर भगवान से प्रश्न किया—प्रभो, पहले मेरा मोक्ष होगा या भरत चक्रवर्ती का? त्रिकालज्ञ भगवान ने सुनार के प्रश्न के उत्तर मे कहा—पहले भरत चक्रवर्ती को

मोक्ष होगा । भगवान का उत्तर सुनकर सुनार ने कहा—यह तो आपने पक्षपात की बात कही । आपने उपदेश मे तो यह कहा था कि अल्पारम्भी अल्पपरिग्रही को पहले मोक्ष होगा और अब आप ऐसा कह रहे हैं ? भरत चक्रवर्ती महापरिग्रही हैं, और इस प्रकार महारम्भी है तथा मैं इस-इस प्रकार अल्पारम्भी, अल्पपरिग्रही हू । फिर भी, भरत आपके पुत्र है इसलिये आपने उनका मोक्ष पहले बताया, यह पक्षपात नही तो क्या है ?

सुनार की बात के उत्तर मे भगवान ने कहा—तुम इस विषय मे स्थूलदृष्टि से जो कुछ दिखता है, उसी पर विचार कर रहे हो, लेकिन स्थूल दृष्टि से वास्तविकता को नही देख सकते । मैने जो कुछ कहा है, वह ज्ञान मे देखकर कहा है । वास्तव मे भरत महारम्भी, महापरिग्रही नही हैं, किन्तु तुम हो ।

भगवान का कथन सुनार की समझ मे नही आया । उस समय वहां भरत चक्रवर्ती भी मौजूद थे । भरत ने भगवान से प्रार्थना की—प्रभो, इसको मैं समझा दूगा । यह कहकर भरत चक्रवर्ती उस सुनार को अपने साथ ले गये । उन्होने तेल से भरा हुआ कटोरा सुनार को देकर कहा—इस तेल से भरे हुए कटोरे को लेकर सारे नगर मे घूम आओ । लेकिन याद रखो, अगर इस कटोरे में से तेल की एक बूंद भी नीचे गिरी, तो तुम्हारी गर्दन उड़ा दी जायेगी । यह कह कर और तेल का कटोरा देकर, भरत चक्रवर्ती ने सुनार को विदा किया । उन्होने सुनार के साथ एक दो सिपाही भी लगा दिये ।

तेल का कटोरा लेकर सुनार नगर के बाजारो मे घूमने लगा। उसके साथ भरत चक्रवर्ती के सिपाही लगे हुए ही थे। नगर के सब बाजारो मे घूमकर सुनार तेल का कटोरा लिए हुये भरत चक्रवर्ती के पास आया। भरत ने उससे पूछा—तुम नगर के सब बाजारो मे घूम आये ?

सुनार—हां महाराज, घूम आया।

भरत—इस कटोरे मे से तेल तो नही गिरने दिया ?

सुनार—तेल कैसे गिरने देता ? तेल गिरता तो आपके ये सिपाही वही गर्दन उड़ा देते, आप तक आने ही क्यो देते ?

भरत—अच्छा यह बताओ कि तुमने नगर के बाजारों मे क्या-क्या देखा ?

सुनार—मैने तो कुछ भी नही देखा।

भरत—सब बाजारो मे घूम कर आ रहे हो, फिर भी तुमने कुछ नही देखा ?

सुनार—हा महाराज ! मैंने तो कुछ भी नही देखा।

भरत—क्यो ?

सुनार—देखता कैसे ? मेरी दृष्टि तो इस कटोरे पर थी। मुझे भय था कि कही तेल गिर न जावे, नही तो साथ का सिपाही मेरी गर्दन उडा देगा। इस भय के कारण मेरी दृष्टि कटोरे पर ही रही। बाजार में क्या होता है, या क्या है, इस ओर मैंने ध्यान ही नही दिया।

भरत—बस यही बात मेरे लिए समझो। यह समस्त ऋषि-सम्पदा, जिसे तुम मेरी समझ रहे हो—एक बाजार

के समान है । मैं इस वाजार मे विचरता हूं फिर भी मैं इसको अपनी नही मानता, न इसकी ओर ध्यान ही देता हूं । जिस तरह तुमको सिपाही द्वारा गर्दन उड़ाये जाने का भय था, इसलिए तुम्हारा ध्यान कटोरे पर ही था, वाजार की ओर तुमने नही देखा, उसी प्रकार मुझे भी परलोक का भय लगा हुआ है। इसलिए मैं भी ऋद्धि-सम्पदा मे रचा-पचा नही रहता हूं, ऋद्धि-सम्पदा की ओर ध्यान नही देता हूं किन्तु जिस तरह तुम्हारा ध्यान कटोरे पर था, उसी प्रकार मेरा ध्यान मोक्ष की ओर है । इस कारण मैं चक्रवर्ती होता हुआ भी भगवान के कथनानुसार तुमसे पहले मोक्ष जाऊंगा। इसके विरुद्ध तुम्हारे पास ऐसी सम्पत्ति नही है, लेकिन तुम्हारी लालसा वढ़ी हुई है । जिसकी लालसा वढी हुई है, वही महारम्भी, महापरिग्रही है, फिर चाहे उसके पास कुछ हो अथवा न हो या थोडा हो । इसके विपरीत जिसके पास वहुत सम्पत्ति है, फिर भी यदि वह उस सम्पत्ति मे मूर्छित नही रहता है, उसकी लालसा वढ़ी हुई नही है, किन्तु सांसारिक पदार्थों मे रहता हुआ भी जल मे कमल की तरह उनसे अलग रहता है, तो वह अल्पारम्भी, अल्पपरिग्रही है । इसलिए भगवान ने तुम्हारे लिए मोक्ष न वताकर, पहले मेरे लिए मोक्ष वताया ।

भरत चक्रवर्ती के इस कथन से सुनार समझ गया । उसने जाकर भगवान से क्षमा मांगी और इस प्रकार वह पवित्र हुआ ।

मतलव यह कि मोक्ष प्राप्ति अप्राप्ति का कारण सांसारिक पदार्थो का पास होना, न होना नही है किन्तु ममत्व

का होना, न होना ही मोक्ष प्राप्त न होने या होने का कारण है। इसलिए चाहे परिग्रह का सर्वथा त्याग न हो, केवल इच्छापरिमाण व्रत ही लिया गया हो, फिर भी यदि शेष परिग्रह से जल में कमल की तरह अलिप्त रहता है, तो वह उसी भव से मोक्ष का अधिकारी हो सकता है। इसके विरुद्ध चाहे अपरिग्रह व्रत स्वीकार भी किया हो, लेकिन इच्छा-मूर्छा बढ़ी हुई हो, इच्छा-मूर्छा न मिटी हो, तो वह ससार मे पुनः जन्म-मरण करता है और नरक तिर्यंक् गति में भी जाता है।

# ४१ : दिशा-पूजन

राजगृही के वेणुवन में सिणगाल नामक एक सद्गृहस्थ रहता था। उसने अपने पुत्र को शिक्षा दी कि यदि तुम कुलधर्म की रक्षा करना चाहो तो छह दिशाओ की पूजा करते रहना।

पुत्र पितृभक्त था वह पिता की बात का मर्म तो समझा नही, मगर दिशाओ की पूजा करने लगा। वह चारों दिशाओ मे तथा ऊपर और नीचे फूल और पानी उछाल देता और समझता कि मैंने कुलधर्म का पालन किया।

एक बार उसे कोई महात्मा मिले। उन्होने फूल और पानी उछालते देखकर पूछा—यह क्या करता है? तब उसने कहा—मैं पिता के आदेशानुसार छह दिशाओ की पूजा करता हूं।

महात्मा बोले—तुझे दिशाओ की पूजा करना नहीं आता। जो पूजा तू कर रहा है, वह उन्नति का साधन नही है।

लडका सरलहृदय था। उसने कहा—मै नही समझा तो आप समझा दीजिए। जैसा आप कहेगे, वैसा मैं करूंगा।

महात्मा बोले—पहले तू छह दिशाओ को समझ ले।

माता–पिता और धर्मगुरु पूर्व दिशा है। विद्यागुरु दक्षिण दिशा हैं। स्त्री पश्चिम दिशा है। सगे सम्बन्धी उत्तर दिशा हैं। ऊर्ध्व दिशा सन्त महात्मा है और अपने से नीचे नौकर चाकर आदि अधोदिशा है। इनकी पूजा करना ही छह दिशाओं की पूजा करना कहलाता है।

थोडे शब्दो मे इस व्याख्या को याद रखे तो तेरा इस लोक और परलोक में कल्याण होगा।

माता-पिता पूर्व दिशा है और इनकी पूजा पाच प्रकार की है, क्योकि माता-पिता पुत्र पर पाच प्रकार का अनुग्रह करते हैं। इनकी पूजा का अर्थ है—इनकी सेवा-शुश्रूषा करना मान-सन्मान करना और कुलधर्म का पालन करते हुए मर्यादा मे चलना। दो भाई हो तो उनके हिस्से की सम्पत्ति आप ही न हडप जाना, उनका हिस्सा उन्हे देना। बहिन ससुराल चली गई हो तो उसके लिए भी कुछ भाग लगा देना।

सचमुच कुलीन पुत्र वही कहलाता है जो पिता की सम्पत्ति को मौज मजा मे नही उडा देता, किन्तु ऐसी व्यवस्था करता है जिससे धर्म की भी रक्षा हो। ऐसा पुत्र पिता का आशीर्वाद प्राप्त करता हैं। पिता का आशीर्वाद पिता के धर्म का पालन करने से ही मिलता है। पिता, पुत्र का पालन-पोषण करता है, शिक्षित बनाता है, विवाह-शादी करके ऐसी व्यवस्था करता है कि जिससे पुत्र बाद मे भी सुखी रह सके। अतएव पिता की पूजा न करना अनुचित है। मगर पूजा का अर्थ यह नही कि उसके सामने धूप जला

दी जाय और फूल चढा दिये जाएं । पिता के प्रति सदैव आदर का भाव रखना और कभी उनकी अवज्ञा न करना पिता की सच्ची पूजा है ।

दक्षिण दिशा विद्यागुरु है । विद्यागुरु का भी बड़ा उपकार है । वह एक तरह से पशु से मनुष्य बनाते है। हृदय मे विद्या की ज्योति जगाते है। अतएव विद्यागुरु का सम्मान-सत्कार करना, उनको अन्न-वस्त्र आदि देना, शक्ति के अनुसार धन से उनकी सहायता करना, उनकी सच्ची पूजा है। स्त्री पश्चिम दिशा है । स्त्री की पूजा का अर्थ यह नही कि उसके पैरो मे मस्तक रगड़ा जाय या उसे हाथ जोड़े जाए । स्त्री का सम्मान करना, कभी अपमान न करना ही स्त्री की पूजा है । मनु ने कहा है —

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।

जहां नारी का सम्मान किया जाता है, अपमान नहीं किया जाता है, वह स्थान देवलोक बन जाता है। शास्त्र में स्त्री को देवानुप्रिया, धर्मशीला, धर्मसहायिका कहकर सबोधन किया गया है । जो धर्म की सहायिका है, उसका अपमान करना कहा तक उचित है? स्त्री का अपमान करना मानव जाति की महत्ता का अपमान करना है । अतएव अपनी पत्नी का कदापि अपमान न करके उसकी सुख-सुविधा की चिन्ता रखना स्त्री-पूजा है ।

जो लोग अपनी पत्नी के प्रति दुर्व्यवहार करते है, उन्हें उसका बदला पत्नी की ओर से मिलता है । आप कठोर रहेगे तो क्या आपकी छाया कठोर नही रहेगी ? फिर

स्वय कड़े बने रहकर ससार को कोमल कैसे बना सकते हो ? आप स्त्री का सम्मान करेगे तो वह आपकी गृहस्थी का उत्तम प्रबन्ध करेगी ।

सगे-सम्बन्धी उत्तर दिशा है । मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने सम्बन्धी और स्नेही जनो पर सम्भाव रखता हुआ उनके सुख-दु.ख मे सम्मिलित रहे, उन्हे आपत्ति से बचावे । यही उनकी पूजा है। अपने कुटुम्बी जनो को बोझ न समझो । उनकी पूरी तरह सार-सम्भाल करे । उन्हे अपने ही समान समझो । ऐसा होने पर वे प्राणो को सकट मे डालकर भी तुम्हारी सहायता करेगे। कुटुम्बियो और सगे-सम्बन्धियो को अपनाये रहने से समय पर बडी सहायता मिलती है ।

प्राचीनकाल के समधी (व्याई) यह समझते थे कि हमने अपनी पुत्री देकर पुत्र लिया है और पुत्री लेकर पुत्र दिया है । दोनो, दोनो घरो की जिम्मेदारी समझते थे । ऐसी भावना थी तो आनन्द रहता था । मगर आज वह आनन्द कहा नजर वाता है ? लडकी वाले ने अच्छी पहरावणी दे दी, तब तो गनीमत है, नही तो लडके वाला उल्टा वैरी बन जाता है ।

नीची दिशा नौकर-चाकर आदि हैं । लोग उन्हे हल्की और अवज्ञा की दृष्टि से देखते हैं, मगर इन लोगो की सेवा पर ही बड़े कहलाने वालो की जिन्दगी निर्भर है ।

पहला नौकर भगी है । कठोर-से-कठोर सेवा भगी करता है । गन्दगी को आप फैलाते हैं और उसे साफ करता है भगी । प्रकृति से वह भी आपके समान ही है । उसके

कुल मे भी हरिकेशी जैसे महान् पुरुषो ने जन्म लिया है। वह भी आपकी ही तरह धर्म का अधिकारी है।

दूसरे नौकर-चाकर भी आपको सुख पहुचाते है। स्वय कष्ट सहते हैं, मगर आपको कष्ट से बचाते हैं। अतएव उन पर भी स्नेहदृष्टि होनी चाहिए। इस प्रकार महत्तर, पानी वाला, रसोई वाला आदि कोई भी नौकर क्यो न हो, उसका उचित सम्मान करना अधोदिशा की पूजा करना है। स्मरण रखना चाहिए कि नौकर-चाकर आदि जो नीचे समझे जाते है, उन्ही पर तुम्हारी ऊचाई टिकी है। आकाश से बातें करने वाला महल पृथ्वी के सहारे ही खडा होता है। आप नौकर के सुख-दुःख का विचार करेंगे तो वे आपका काम भी ज्यादा करेंगे और आपको अधिक प्रसन्न और सुखी रखने की चेष्टा करेंगे। आपका काम करता—करता कोई नौकर बीमार हो जाए और आप सार—सभार न करे और ऊपर से वेतन काट ले तो यह बेवफाई है। मालिक वफादार रहेगा तो नौकर भी वफादार रहेगा।

छठी ऊर्ध्व दिशा है। यह दिशा मनुष्य को ऊंचा उठाने वाली है। श्रमण, निर्ग्रन्थ, साधु, सन्यासी आदि किसी भी शब्द से कहो, परन्तु जिन्होने ससार त्याग दिया है, मोह-ममता का परित्याग कर दिया है, उनकी सेवा-पूजा करना ऊर्ध्व दिशा की पूजा है। उनकी पूजा का अर्थ यह है कि उनको यथोचित नमस्कार—वन्दन करना, उन पर श्रद्धा रखना और जब वे भिक्षा के लिए आवे तो भोजन-पानी आदि धर्म—सहायक वस्तुए देकर उनका सहायक बनना।

इस प्रकार गृहस्थो का आदर-सम्मान लेने वाले साधु

का धर्म क्या है ? साधु पर उत्तरदायित्व है कि वह अपने भक्तो को सच्चा कल्याण का मार्ग दिखलावे । उन्हे किसी प्रकार का सन्देह हो तो शास्त्र के अनुसार उसका निवारण करे । ऐसा न हो कि—

दस बोगे दस बोगले, दस बोगे के बच्चे ।
गुरुजी बैठे गप्पे मारे, चेले जाने सच्चे ॥

शिष्यो को आत्मा, परमात्मा, नीति, धर्म, ससार, मोक्ष, गृहस्थ-धर्म आदि का स्वरूप समझाना धर्मगुरु का कर्तव्य है ।

यह छह दिशाए हैं । इनकी यथाविधि पूजा करते रहने से कोई बेपरवाह नही होगा और सब अपने-अपने कर्तव्य पर दृढ रहेगे । पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी स्वामी-सेवक आदि सबका कुलधर्म अक्षत रहेगा ।

# ४२ : ज्ञान और क्रिया

उदयसेन नामक एक राजा था। उसके दो पुत्र थे—वीरसेन और सूरसेन। वीरसेन सब इन्द्रियो से परिपूर्ण था और सूरसेन अन्धा था।

विवेकवान पुरुष, जो जिस काम के योग्य होता है उसे वही काम सौपते हैं। तदनुसार उदयसेन ने अपने दोनो पुत्रो को अलग-अलग प्रकार की शिक्षा दी। अंधे मनुष्य प्राय. संगीत कला में निपुण होते हैं। भक्त कवि सूरदास के विषय मे कहा जाता है कि वे अंधकवि थे। उदयसेन ने सूरसेन को गायन-कला सिखलाई और वीरसेन को क्षत्रियोचित युद्धकला सिखलाई।

सूरसेन ने जब सुना कि वीरसेन को तो युद्धकला सिखलाई जा रही है और मुझे वह कला नही सिखलाई जा रही है तो वह विचार करने लगा—मैं कायर ही रह जाऊंगा! फिर क्षत्रिय कुल मे जन्म लेने से मुझे क्या लाभ हुआ?

इस प्रकार विचार करके वह अपने पिता के पास पहुंचा और कहने लगा—पिताजी! मैं भी यह युद्ध-कला सीखना चाहता हूं। पिता ने विचार किया कि जब इसका

हृदय युद्धकला की ओर प्रेरित हुआ है तो सिखलाने मे क्या हर्ज है ? वालक की मनोवृत्तियो को, नैसर्गिक प्रेरणाओ को दवा रखना उचित नही हैं । इस प्रकार विचार कर उदय-सेन ने उसे युद्धकला सिखलाने वाले के सुपुर्द कर दिया । युद्ध-कला सिखलाने वाला योग्य और होशियार था । अतएव उसने सूरसेन को बाणविद्या सिखला दी । मगर सूरसेन अन्धा था, अत. वह केवल शब्द के आधार पर ही बाण मार सकता था ।

धीरे-धीरे दोनो कुमार योग्य हो गए । कुछ दिनों वाद युद्ध करने का अवसर आ पहुचा । तब वीरसेन ने अपने पिता से कहा—पिताजी ! आपने हमें योग्य बनाया है और हम बन भी गए है। ऐसी स्थिति मे आपका युद्ध में जाना उचित प्रतीत नहीं होता । इस बार आप हमे ही युद्ध मे जाने की आज्ञा दीजिए ।

वीरसेन की वीरोचित बात सुनकर पिता को बहुत प्रसन्नता हुई । उसने सोचा—ऐसे अवसर पर पुत्र को घर में रखना उचित नही है । मेरे सामने युद्ध कर लेने से इसका साहस भी वढ जायगा और मेरे दिल मे भी पुत्र के विषय मे कोई खटका नही रह जायगा । यह सोचकर उदयसेन ने वीरसेन को युद्ध मे जाने की स्वीकृति दे दी ।

इसके वाद सूरसेन भी पिता के पास गया और उसने भी युद्ध मे जाने की आज्ञा मागी । पिता ने उसे समझाया—बेटा, तू आंखो से हीन है । तेरा युद्ध मे जाना उचित नहीं है । तू यही रह और अपने भाई की विजयकामना कर ।

सूरसेन मन-ही-मन सोचने लगा—मेरा भाई युद्ध में जायगा तो उसकी प्रशसा होगी और मुझे कोई टके सेर भी नही पूछेगा। इस प्रकार के विचारो से प्रेरित होकर उसने युद्ध मे जाने के लिए राजा से अनुरोध किया। उसके अनु-रोध को टाल न सकने के कारण राजा ने उसे भी जाने की आज्ञा दी।

सूरसेन युद्ध मे गया। अन्धा होने के कारण वह देख तो कुछ सकता नही था, जब शब्द सुनता तो बाण चला देता और जब शब्द न सुन पाता तब बाण भी नही चला पाता था। आखिर शत्रु समझ गए कि यह अन्धा है, शब्द सुने बिना वह बाण नही चला सकता। इस तरह समझ लेने पर शत्रुओ ने चुपचाप रहकर उसे पकड़ लेने की योजना बना ली और बिना शब्द किये उसके पास जाकर उसे पकड़ भी लिया।

इधर वीरसेन को पता चला कि मेरा भाई सूरसेन शत्रुओं द्वारा पकड़ लिया गया है। इससे वीरसेन का क्रोध और भडक उठा। उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर युद्ध किया और अन्त में सूरसेन को छुडा लाया। जब सूरसेन लौटकर पिता के पास आया तो पिता ने प्यार के साथ उससे कहा—बेटा, मैं अब समझ गया कि तू वीर है। फिर भी तू वीरसेन की बराबरी नही कर सकता।

सूरसेन ने भी अपनी स्थिति समझ ली। उसने कहा—ठीक है, पराक्रम होने पर भी नेत्रो के अभाव मे वीरसेन की बराबरी नही की जा सकती। अगर वीरसेन न आये होते तो मैं शत्रुओं के हाथो मे पड़ ही चुका था।

पिता ने कहा-अच्छा ही हुआ । यह उदाहरण ज्ञानियों के काम आएगा ।

इसी प्रकार जिनको ज्ञान-नेत्र प्राप्त नही हैं, वे त्याग भी करे, धन और भोगो से विरक्त भी रहे, तब भी मोक्ष प्राप्त नही कर सकते । अतएव क्रिया को ज्ञान की अनिवार्य आवश्यकता होती है ।

और इसी तरह ज्ञान को भी क्रिया की आवश्यकता है । वीरसेन नेत्रवान होते हुए भी अगर पराक्रम न करता और टुकुर-टुकुर देखा करता तो क्या उसे सफलता प्राप्त हो सकती थी ? नही । सिद्धि ज्ञान और क्रिया—दोनों के सहयोग से ही प्राप्त होती है ।

# ४३ : मृत्युलोक–स्वर्गलोक

कहते है—एक वार इन्द्र ने गोपियो की भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हे स्वर्ग में लाने के लिए विमान भेजा। इन्द्र ने कहलाया—तुमने नन्दलाल की वड़ी भक्ति की है इसलिए चलो। तुम्हे स्वर्ग मे रखा जायगा। इसके उत्तर में गोपियों ने भक्तों की वाणी मे कहा—

व्रज व्हालु म्हारे वैकुण्ठ नथी जावु ।
त्यां नन्द नो लाल क्याथी लावु ॥ व्रज० ॥

गोपियां वोली—हमारे सामने स्वर्ग की वात मत कहो। हमे तो व्रज ही प्रिय है। स्वर्ग मे नन्दलाल को कैसे पायेंगे ?

विमान लाने वाले देवो ने कहा—क्या तुम सव पागल हो गई ? विचार तो करो, कहां व्रज और कहा स्वर्ग ? दुष्काल पडे तो यहा तिनका भी न मिले ! यहां सिंह, वाघ आदि का भय अलग ही वना रहता है ! फिर नाना प्रकार के रोग यहा सताते है और मृत्यु सिर पर नाचती रहती है। स्वर्ग मे किसी प्रकार का भय नही हैं, सव तरह का आनन्द-ही-आनन्द है। वहा रत्नो के महल हैं और इच्छा होते ही अमृतरस से पेट भर जाता है। किसी प्रकार का परिश्रम

नही करना पड़ता और सब तरह के सुख मौजूद है। फिर स्वर्ग छोड़कर व्रज मे रहना क्यो पसन्द करती हो ?

गोपियो ने उत्तर दिया—हम पागल नही है, पागल हुए हो तो तुम ! यह तो बताओ कि तुम विमान लेकर हमे ले जाने को क्यो आये हो ? हमने नन्दलाल की भक्ति की है, इसीलिए तो लेने आये हो न ? अब तुम्ही सोचो कि जिस भक्ति के कारण तुम हमे स्वर्ग मे ले जाने को आये हो, वह भक्ति बडी या स्वर्ग बडा ? अगर भक्ति बड़ी है तो फिर भक्ति छोडकर स्वर्ग मे क्यो जाए ? हमे अपनी भक्ति बेचना पसन्द नही है।

गोपियो का उत्तर सुनकर देव चुप रह गये। बोले—तुम भाग्यशालिनी हो। वास्तव मे हमारा स्वर्ग तुम्हारे व्रज के सामने किसी विसात मे नही है। तुम्हारी भक्ति और श्रद्धा धन्य है। हमारा शरीर रूप-रग मे सुन्दर है, पर किस काम का ? इस शरीर से तुम्हारे जैसी भक्ति नही हो सकती।

मित्रो ! स्वर्ग के सुखो का वर्णन सुनकर ललचाओ मत्त। स्वर्ग की खेती मृत्युलोक मे ही होती है। धर्मसाधना के लिए यही लोक उपयुक्त है। धर्म-साधना की दृष्टि से मनुष्य, देवों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। मुसलमानो के हदीसो मे कहा है—

जब अल्लाह दुनिया को बना चुके तो उन्होने फरिस्तो को बुलाकर कहा—तुम इन्सान की बन्दगी करो। अल्लाह का हुक्म भला कैसे टाला जा सकता था ? दूसरे फरिश्तो ने तो बंदगी कर ली मगर एक फरिश्ते ने अल्लाह का हुक्म नही माना। उसने कहा—आप ऐसा हुक्म क्यो फरमाते हैं ? कहा हम फरिस्ते और कहा इन्सान। हम फरिस्ते होकर

इन्सान को वदगी क्यो करे ? हम पाक है, इन्सान नापाक है ।

इस फरिस्ते की बात सुनकर अल्लाह मियां ने उसे खूब फटकारा । तब कही उसकी अक्ल ठिकाने आई !

देवगण, उसके पैरो में अपना मस्तक झुकाते है, जिसके हृदय में निरन्तर धर्म का वास होता है ।

देवा वि तं नमंस्संति,
जस्स धम्मे सया मणो ।

# ४४ : दान की सफलता-मीठी बोली

पूज्य श्रीलालजी महाराज कहा करते थे—यदि दान देने वाला प्रियवादी न हो, प्रिय वचन बोलकर दान न दे किन्तु अप्रिय वचन बोलकर दान दे तो उसका दान मिथ्या हो जाता है। इस सम्बन्ध मे वे एक दृष्टान्त दिया करते थे। वह इस प्रकार है —

कृष्णजी ने एक बार व्यापक रूप से दान देने का विचार किया। जब विचार किया तो उसे अमल मे लाने मे क्या देर हो सकती थी ? तुरन्त दानशाला खुलवाई और दान देना प्रारम्भ कर दिया। दान देने का कार्य उन्होने अर्जुन को सौपा। अर्जुन की देखरेख मे दान का कार्य चलने लगा। जो भी ऋषि, ब्राह्मण और भिक्षुक आदि आते, सभी को दान दिया जाता। महाराज श्रीकृष्ण की दानशाला की प्रशंसा दूर-दूर तक फैल गई और बहुत से ऋषि, ब्राह्मण तथा भिक्षुक आ-आकर दान लेने लगे। धीरे-धीरे दान लेने वालों की संख्या इतनी बढ गई कि अर्जुन देते-देते थक जाता और परेशान हो जाता।

एक दिन अर्जुन ने विचार किया—इस देश मे कितने मंगते हो गये हैं ! दिन भर ताता लगा रहता है। मुझे

घड़ी भर भी चैन नही मिल पाता और उसी दिन से अर्जुन की वोली वदल गई। अब तक वह वडे मिठास के साथ, आदर भाव से दान दिया करता था, किन्तु अब वह दान लेने वालो को कटुक शब्द कहने लगा। अर्जुन का यह व्यवहार देखकर जो ऋषि या ब्राह्मण आदि आदर के साथ दान लेने वाले थे, उन्होने आना वन्द कर दिया। केवल वही लोग आते रहे, जो आदर-अनादर का कुछ भी विचार न करके दान लेते थे।

कृष्णजी को इस वात का पता चला कि मेरी दान-शाला मे सम्मानी ऋषि आदि नही आते है। पता लगाने पर उन्हे यह भी मालूम हुआ कि अर्जुन उन्हे कटु शब्द कहते थे, इस कारण उन्होने आना छोड दिया है। श्री कृष्ण ने विचार किया—अर्जुन मेरा सखा होकर भी नही समझा। उसे समझाना उचित है।

एक दिन कृष्णजी अर्जुन को साथ लेकर वन के दृश्य देखने के वहाने वन में गए चलते-चलते वे किसी पर्वत के पास जा पहुंचे। वहा पहुचकर उन्होने अपनी चाल इतनी तेज कर दी कि अर्जुन उनके वरावर न चल सका। अर्जुन ने वहुत चेष्टा की कि मैं कृष्णजी के साथ चलता रहूं, मगर वह योगेश्वर कृष्ण की वरावरी कब कर सकता था? अर्जुन हाफने लगा। उसके देखते-ही-देखते कृष्णजी इतनी दूर निकल गये कि नजर ही न आने लगे। कृष्णजी जाकर पर्वत की एक गुफा मे वैठ गए।

पर्वत पर पहुंच कर अर्जुन कृष्णजी को खोजने लगा।

उसे कृष्णजी तो मिले नही, एक गुफा मे एक ऋषि विराज-मान नजर आए। ऋपि की आकृति अद्भुत थी। उनका सारा शरीर तो सोने का था किन्तु मुख सूअर का था। अर्जुन को यह देखकर बडा आश्चर्य और कुतूहल हुआ। अर्जुन ने उनके पास जाकर प्रश्न किया—आप कौन हैं ? यहा क्यो तपस्या कर रहे हैं ? आपका सारा शरीर सोनें का और मूख सूअर का क्यो है ? आपत्ति न हो तो कृपा करके मेरा कुतुहल दूर कीजिए।

अर्जुन के प्रश्न सुनकर ऋषि हसे और कहने लगे—मेरा ख्याल था कि मेरी आकृति ही तुम्हारे प्रश्नो का उत्तर दे देगी। वह उत्तर दे तो रही है, मगर तुम उसे समझे नही। इसलिए वचन कहकर समझाता हू। सुनो—

मैंने दान देने में कुछ भी कसर नही रखी थी। मैं याचकों को इच्छानुसार दान दिया करता था। उस दान के फल से मेरा शरीर कञ्चन का हुआ। किन्तु मैंने मधुर वचन नही दिये, बल्कि दान लेने वालो को कटुक और अप्रिय शब्द कहे। फल तो इसका भी होना चाहिए न ? इसके फलस्वरूप मेरा मुख सूअर का हो गया। मैं अपनी इस विषम स्थिति का निवारण करने के लिए तप कर रहा हूं। आप समझ गये ?

ऋषि की बात सुनकर अर्जुन समझ गया—यह ऋषि और कोई नही, श्रीकृष्णजी ही है। यही ऋषि बनकर बैठे हैं।

अर्जुन ने पैरो मे पडकर कहा—दयानिधान, अब प्रकट होओ। दान आपने दिया है, मैंने तो कुछ दिया नही, अल—बत्ता कटुक वचन मैंने कहे हैं। ऐसी स्थिति मे क्या मेरा

सारा शरीर सूअर का होगा ?

अर्जुन की वात सुनकर कृष्णजी हंस पड़े। उन्होंने पूछा—अब तो समझ गये हो न ?

अर्जुन ने कहा—आप जैसे समझाने वाले हो तो कौन नही समझेगा ?

शास्त्रो मे दानधर्म का वड़ा वर्णन है। जहां दान देने का वर्णन आता है वहां 'सक्कारित्ता' 'सम्माणिता' पद भी आते हैं अर्थात् सत्कार करके और सम्मान करके दान दिया जाना चाहिए। दान के पाच भूपण हैं। पहला भूषण है हर्ष होना। दान का सुअवसर मिलने पर दाता को ऐसा हर्प हो कि हर्षाश्रु निकल पड़ें। दूसरा भूपण रोमाञ्च होना है। दाता का आनन्द से रोम-रोम विकसित हो जाना चाहिए। तीसरा भूषण वहुमान है। पात्र को वहुमान के साथ दान देना चाहिये। चौथा भूपण नम्र और प्रिय वचन हैं। पाचवा भूपण है पात्र की प्रशसा करना और अपने दान को तुच्छ दिखलाना।

जैसे आभूषणों से शरीर की शोभा अधिक वढ जाती है, उसी प्रकार इन पांच भूपणों से दान की शोभा वढ़ जाती है।

# ४५ : नम्रता

महाभारत की कथा है। युधिष्ठिर ने भीष्म से कहा— अब आपका अन्तिम समय नजदीक आ पहुंचा है। इस समय मैं आपसे एक बात और पूछना चाहता हूं आपने धर्म और राजनीति की अनेक बातें मुझे सिखलाई है, पर एक बात पूछनी रह गई है। वह अब पूछना चाहता हूं।

भीष्म ने उत्तर दिया—जो पूछना चाहो, खुशी से पूछो। तुम्हारी तिजोरी में शिक्षा की जितनी बातें भर जाऊंगा, उतनी ही सुरक्षित रहेंगी।

युधिष्ठिर—कोई बहुत प्रबल शत्रु आक्रमण कर दे तो राजनीति की दृष्टि से क्या करना चाहिए ?

भीष्म—इसके लिए मैं एक प्राचीन सवाद सुनाता हूं। उसे ध्यानपूर्वक सुनो.—

सरित्पति समुद्र सब नदियो के व्यवहार से प्रसन्न थे, मगर वेत्रवती नदी के वर्ताव से असन्तुष्ट थे। एक दिन समुद्र ने उससे कहा—तू बहुत कपटी नदी है। तू निष्कपट होकर कभी मेरी सेवा नही करती।

वेत्रवती नदी ने कहा—मेरा अपराध क्या है ?

समुद्र—तेरे किनारो पर बेत के झाड बहुत है मगर

तूने आज तक बेत का एक टुकडा भी लाकर नही दिया। और-और नदियां तो अपने-अपने किनारो की सभी वस्तुएं लाकर देती हैं, पर तू बड़ी कपटी है! तूने एक भी बेत आज तक लाकर नही दिया।

समुद्र का कथन सुनकर वेत्रवती नदी ने कहा-इसमे मेरा कोई अपराध नही है। जब मैं जोश के साथ दौड़कर आती हूं तब सारे बेत के झाड़ नीचे झुककर पृथ्वी के लग जाते हैं और जब मेरा पूर उत्तर जाता है तो फिर ज्यों-के-त्यों सिर उठाकर खड़े हो जाते हैं। इस कारण मैं एक भी बेत नही तोड पाती। अब आप ही बतलाइए कि इसमे मेरा क्या अपराध है?

समुद्र ने कहा—ठीक है, मैं यह बात जानता हूं। मगर मेरे साथ तेरा जो संवाद हुआ है, वह दूसरे लोगों के लिए हितकारी सिद्ध होगा।

यह सवाद सुनकर भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा-युधिष्ठिर अपने से अधिक बलवान शत्रु का सामना करना पड़े तो क्या करना चाहिए, इस विषय मे बेत से शिक्षा लो। प्रबल शत्रु के सामने झुक जाना ही उचित है। बेंत नदी के पूर के सामने झुक जाता है और अपनी जड नही उखडने देता और जब पूर उतर जाता है तो फिर सीधा खडा हो जाता है। इसी प्रकार अपनी जड मजबूत रखकर प्रबल शत्रु के सामने झुक जाना उचित है। जो बहुत सपाटे के साथ आता है वह बहुत देर तक नही ठहर सकता।

भीष्म ने फिर कहा—युधिष्ठिर, तुम अजातशत्रु हो। तुम्हें अपने जीवन मे ऐसा अवसर देखना ही नही पड़ेगा, लेकिन यह शिक्षा भविष्य मे दूसरो के काम आएगी। △

# ४६ : एकावधान

द्रोणाचार्य ने कौरवो और पाण्डवो को धनुर्विद्या सिखाई थी। एक दिन वे अपने शिष्यो की परीक्षा लेने लगे। उन्होने एक कड़ाह मे तेल भरवाया और अपने सब शिष्यो को एकत्र किया। उस तेल के कडाह मे एक खम्भा खडा किया गया और खम्भे पर चन्दा वाला मोर का पंख लगा दिया।

इतना सब कुछ करने के पश्चात् आचार्य ने घोषणा की—तेल भरे कडाव में प्रतिविम्बित होने वाले मोर के पख को देखकर जो शिष्य पंख के चन्दा को बाण से भेद देगा, उसी ने मेरी पूर्ण शिक्षा ग्रहण की है। वही परीक्षा मे उत्तीर्ण हुआ समझा जायगा।

दुर्योधन को अभिमान था। वह सबसे पहले चन्दा भेदने के लिए आगे आया। उसने बाण चढ़ाया। इसी समय द्रोणाचार्य ने पूछा—तुम्हे कडाह के तेल मे क्या दिखाई देता है?

दुर्योधन ने कहा—मुझे सभी कुछ दिखाई दे रहा है। खम्भा, मोर-पंख, मैं, आप और मेरे आसपास खडे हुए, मेरी हसी करते हुए यह सब दिखाई दे रहे हैं। इसके अतिरिक्त मैं उस चन्दा को भी देख रहा हूं, जो मेरे बाण का लक्ष्य है।

दुर्योधन का उत्तर सुनकर द्रोण ने कहा—चल, रहने दे। तू परिक्षा मे सफल नही होगा। पहले तू अपना विकार दूर कर।

मगर अभिमानी दुर्योधन नही माना। उसने हर्ष के साथ, मोर-पख के चन्दे को, तेल-भरे कडाह मे देखते हुए वाण मारा। किन्तु वह लक्ष्य को भेद न सका। इसी प्रकार एक-एक करके सभी कौरव इस परीक्षा मे अनुत्तीर्ण रहे।

कौरवो के पश्चात् पाडवो की बारी आई। युधिष्टिर आदि पाण्डवो ने अर्जुन को कहा—हम सब की तरफ से अकेले अर्जुन ही परीक्षा देगे। अगर अर्जुन इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए तो हम सभी उत्तीर्ण है। अगर अर्जुन उत्तीर्ण न हो सके तो हम लोग भी अनुत्तीर्ण ही है।

आचार्य द्रोण पाडवो की बात सुनकर प्रसन्न हुए। उन्होने कहा—परीक्षा मे इन्हे उत्तीर्णता मिले या न मिले, मगर इन पांचो का ऐक्य प्रशसनीय है।

आखिर अर्जुन कडाह के पास आया। द्रोणाचार्य ने स्नेह से गद्‌गद् होकर कहा—मेरी शिक्षा की इज्जत तेरे साथ है।

अर्जुन ने विनम्रता प्रकट करते हुए कहा—गुरुदेव, अगर मैंने सच्चे अन्तःकरण से आपकी सेवा की होगी, आपका स्नेह सम्पादन किया होगा, तो आपकी कृपा से मैं उत्तीर्ण होऊंगा।

इस प्रकार अर्जुन ने तेल के कड़ाह मे मोर—पंख

देखते हुए बाण साधा । द्रोणाचार्य ने पूछा—तुम्हें कडाह मे क्या दीख पडता है ?

अर्जुन बोला—मुझे मोर-पख का चन्दा और अपने बाण की नौंक ही दिखाई दे रही है । इसके सिवाय और कुछ भी नज़र नही आता ।

आचार्य ने कहा—तेरी तरफ से मुझे आशा बधी है । वाण चला ।

गुरु की आज्ञा पाकर अर्जुन ने बाण लगाया । बाण लक्ष्य पर लगा और मोर-पंख का चन्दा भिद गया ।

इसी विद्या के प्रताप से अर्जुन ने पाचाली के स्वय-वर मे राधा-वेध साधा था और पाचाली (द्रौपदी) प्राप्त की थी ।

चन्दा वेध देने से पाडवो को तो प्रसन्नता हुई ही साथ ही द्रोणाचार्य भी वहुत प्रसन्न हुए । अपने शिष्य की विशिष्ट सफलता से कौन गुरु प्रसन्न नही होता ?

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस एकाग्रता—एकनिष्ठा से या जिस ध्यान से अर्जुन ने मोर—पख का चन्दा वेधा था, उसी एकनिष्ठा के साथ ईश्वर का ध्यान करने से आत्मा को ईश्वरत्व की प्राप्ति हो सकती है । वल्कि अर्जुन का लक्ष्य स्थूल था । परमात्मा मोर—पख के चन्दा की अपेक्षा भी बहुत अधिक सूक्ष्म है । अतएव अर्जुन ने एकाग्रता को प्राप्त किया था, उससे भी अधिक एकाग्रता परमात्मा का ध्यान करने के लिये अपेक्षित है । इतनी एकाग्रता

प्राप्त करते जो ईश्वर का ध्यान करेगा उसे स्वयं ईश्वर बनने में देरी नहीं लगेगी। जब आत्मा और परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नजर नहीं आता, बल्कि आत्मा और परमात्मा की एकता मालूम होने लगती है, तब उपासना की पूर्ण सिद्धि होती है। इस प्रकार की उपासना करने वाला, फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो, परमात्म-पद का अधिकारी बन जाता है।

## ४७ : विराट शक्ति

ससार मे रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण की प्रकृति बनी रहती है। तमोगुण की वृद्धि होने पर रजोगुण और सतोगुण दब जाते हैं और आत्मा महाशक्ति की उपेक्षा करके गडबड़ मे पड़ जाता है। द्रौपदी के आख्यान से यह बात आपकी समझ मे अच्छी तरह आ जायगी।

पाडवों के राजदूत बनकर जब श्रीकृष्ण कौरवो के पास सन्धि करने के लिए जाने लगे, तब द्रौपदी ने कृष्ण से कहा—मैं नही जानती थी कि पुरुष इतने मानहीन, बुद्धि—हीन और सत्वहीन होते हैं। लोग स्त्रियो को कायर बतलाते हैं, मगर पुरुषो की कलई खुल रही है। ऐसे पुरुषों से तो स्त्रियां ही अधिक बहादुर हैं।

फिर दुष्ट दुश्शासन हुआ था मुदित जिनको खीचकर।
ले दाहिने कर में वही निज केश—लोचन सीचकर ॥
रखकर हृदय पर वाम कर शर-विद्ध हरिणि-सी हुई।
बोली विकलतर द्रौपदी वाणी महा करुणामयी—
करुणासदन ! तुम कौरवो से सन्धि जब करने लगो।
चिन्ता व्यथा सब पाडवो की शान्ति कर हरने लगो ॥
हे तात ! तव इन मलिन मेरे मुक्त केशो की कथा।
है प्रार्थना मत भूल जाना, याद रखना सर्वथा ॥

द्रौपदी उग्र रूप धारण करके कृष्ण और पाण्डवों के सामने अपने हृदय के भाव प्रकट कर रही है। द्रौपदी का करुण-कथन सुनकर कृष्ण के रथ के घोड़े और समस्त प्रकृति भी जैसे स्तब्ध रह गये। सब लोग चंकित रह गये। सोचने लगे—आज द्रौपदी अपने हृदय की सारी व्यथा शब्दों के मार्ग से कृष्ण के आगे उड़ेल रही है।

दु.शासन द्वारा खीचे हुए केशों को अपने दाहिने हाथ मे लेकर और वाया हाथ अपनी छाती पर रख कर द्रौपदी ने कृष्ण से कहा—प्रभो ! आप सन्धि करने जाते है ! और सिर्फ पाच गांव लेकर संन्धि करेंगे ! ठीक है, कौन ऐसा मूर्ख होगा जो विशाल राज्य में से केवल पांच गांव देकर सधि न कर लेगा ! फिर आप सरीखे संधि कराने वाले दूत जहां है, वहां तो कहना ही क्या है ? वहा सधि होने मे शंका ही क्या हो सकती है ? आप संधि करके पाडवों की चिन्ता और उनके कष्ट हरने चले है, लेकिन, प्रभो ! दुष्ट दु शासन का हाथ लगने के कारण मलिन बने हुए और खुले हुए मेरे केश क्या यो ही रहेगे ? क्या यह केश दु शासन के खीचने के लिए ही थे ! क्या इन केशो की कोई प्रतिष्ठा शेष रह गयी है ? जिस समय दु.शासन ने मेरे केश खीचे थे, उसी समय मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक केश खीचने वाले के हाथ वही न उखाडे जाएगे तब तक मैं इन्हे न धोऊंगी, न बाधूंगी। क्या मेरे यह केश जन्म भर खुले ही रहेगे ? क्या मेरी प्रतिज्ञा आजीवन पूर्ण न होगी ? अगर आप सत्य के पक्षपाती है तो पाडवो को युद्ध मे प्रवृत्त कीजिए। अगर आप मुझे और पाडवो को प्रतिज्ञा-भ्रष्ट करना चाहते है तो भले ही सधि करने पधारिए।

दु शासन का हाथ लगने के कारण द्रौपदी ने अपने केशो को भी मलिन माना, परन्तु आप क्या चर्बी लगे वस्त्र, हड्डी मिली शक्कर और मास–मदिरा मिली औषध को भी मलिन मानते है ? आप काडलीवर आइल—जो मछली के लीवर का तेल है, उसे भी मलिन नही मानते। अनेक आर्य और अहिंसाधर्मी कहलाने वाले लोग उसे भी पी जाते है। द्रौपदी को राज्य जाने का इतना दुःख नही था, जितना वस्त्र खीचने के समय हुआ था। वस्त्र खीचने से उसकी लज्जा जाती थी। मतलब यह हुआ कि वस्त्र लज्जा की रक्षा करने के लिए है। लेकिन लाज मोटे कपड़े से रहती है या बारीक वस्त्रो से ? मोटे कपडो से !

लेकिन आजकल तो बड़े घरानो की स्त्रिया कहती है– जाड़े (मोटे) कपड़े जाटनिया पहनती है। हम भी वैसे ही पहनने–ओढने लगेगी तो उनमे और हममे क्या अन्तर रह जायगा ?

द्रौपदी वाण से विंधी हुई हिरनी की तरह रोने लगी। कहा है –

कह कर वचन यह दु.ख से तब द्रौपदी रोने लगी।<br>
नेत्राम्वु-धारा पात से कृश अग को धोने लगी ।।<br>
हो द्रवण करके श्रवण उसकी प्रार्थना करुणाभरी।<br>
देने लगे निज कर उठाकर सान्त्वना उसको हरी।

द्रौपदी अपनी आखो के आसुओ से अपने दुवले शरीर को जैसे स्नान कराने लगी। हृदय के घोर सताप–सतप्त शरीर को मानो ठडा करने का निष्फल यत्न करने लगे।

निष्फल यत्न इसलिए कि उसके आसू भी गरम ही थे और उनसे सताप मिटने के वदले वढ ही सकता था ।

द्रौपदी की प्रार्थना सुनकर कृष्ण का हृदय भी पिघल गया । फिर भी उन्होंने अपने को सभाला और हाथ उठा कर वह द्रौपदी को सान्त्वना देने लगे ।

द्रौपदी की बातो का उत्तर देना कृष्ण को भी कठिन जान पडा । कृष्णजी द्रौपदी की कही बाते सत्य मानते है, लेकिन क्या कृष्णजी को सधि-चर्चा भग करके धर्मराज से कह देना चाहिए कि—वस, अव सधि की वात मत करो । एक वार दूत भेज ही दिया था, अब ज्यादा पचायत मे पड़ने की जरूरत नही है । दुर्योधन दुर्जन है । वह यो मानने का नही । उससे कोई भी न्याययुक्त वात कहना ऊसर मे वीज वोना है । अतएव समय न खोकर लडाई की तैयारी करो । द्रौपदी की वातो की सचाई समझते हुए भी वुद्धिमान् कृष्ण ने ऐसा नही कहा । वल्कि वह द्रौपदी को सान्त्वना देने लगे । उन्होने अपना ध्येय नही छोडा ।

एक ओर संधि द्वारा शान्ति स्थापित करने की वात है और दूसरी ओर द्रौपदी का कहना मानकर युद्ध करने की । द्रौपदी की वात प्रवल दीखती है, लेकिन कृष्णजी महापुरुष थे । द्रौपदी के भाषण मे रजोगुण झलक रहा है, लेकिन धर्मराज की वात सतोगुणी है और कृष्ण द्वारा समर्थित है ।

सुनकर कथन यह द्रौपदी का कृष्णजी कहने लगे—
धीरज वधा कर प्रेमयुत यो वचन अमृत से पगे ।
है नीति-युक्ति सुयुक्त तेरा कथन पर जचता नही,
कर्तव्यपथ पर यह सहायक हो कभी सकता नहीं ।

सतप्त होकर सधि से ही यह वचन तुमने कहे,
पर सोचती हो तुम सही क्या भेद उसमे छिप रहे ।
पट खीचने के समय मे जो कुछ प्रमाण तुम्हे मिला,
कौरवगणो पर क्रुद्ध हो उसको दिया तुमने भुला ।

पहले जो कुछ कहा है, वह एक कवि की कल्पना है। अब जो कहता हू वह मेरी कल्पना समझिए । कवि की कल्पना मे कमी यह है कि उसने रजोगुण मे ही बात समाप्त कर दी है । प्रत्येक बात और विशेषत आदर्श आख्यान सतोगुण मे लाकर समाप्त करना और सतोगुण का आदर्श स्थापित करना उचित है ।

द्रौपदी को सान्त्वना देकर कृष्णजी कहने लगे—भद्रे ! रुदन मत करो । चित्त को शान्त और स्थिर करो । तुम्हे पहले की बातें स्मरण करके सताप होता है और इसी से तुम पाण्डवो पर कुपित हो रही हो । शक्ति होने के समय ऐसा—स्वार्थ और माया द्वारा चित्त का चचल हो जाना—स्वाभाविक है । साधारण मनुष्य को ऐसा ही होता है । लेकिन मेरा जन्म मनुष्य प्रकृति की हा-मे-हा मिलाने के लिए नही है । मैं अपने आचरण द्वारा मानव-प्रकृति को शुद्ध करके सत्पथ पर लाना चाहता हू । यही मेरा जीवन-उद्देश्य है । अगर तुम्हे मुझ पर विश्वास है तो ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो ।

कृष्णजी की यह भूमिका सुनकर लोग उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगे कि देखे, द्रौपदी की बातो का कृष्णजी क्या उत्तर देते हैं । इस समय धर्मराज को बहुत

प्रसन्नता हुई । वह सोचने लगे—संधि की बात मैंने ही चलाई थी, लेकिन द्रौपदी ने अपनी बातों से मेरी योजना निर्बल बना दी थी। द्रौपदी ने मुझ पर सारा उत्तरदायित्व डालकर एक प्रकार से मुझे कायर सिद्ध किया है । भाई भी द्रौपदी की बातो से सहमत है। अभी तक वह चुप रहे मगर द्रौपदी ने अपना अधिकार नही छोडा । उसने सहन भी तो बहुत किया है ! सबसे अधिक अपमान उसी का जो हुआ है ।

द्रौपदी की बात का उत्तर देने में धर्मराज अपनी असमर्थता का अनुभव करते थे । उसने धर्मराज पर भी अभियोग लगाया था । मगर कृष्ण का सहारा मिलने से उन्हे प्रसन्नता हुई ।

कृष्णजी की बात सुनकर सब लोग आश्चर्य करने लगे कि द्रौपदी को यह प्रबल युक्तियो से परिपूर्ण बाते भी कृष्णजी को नही जची ! सब विस्मय मे डूबे है और धर्मराज प्रसन्नता का अनुभव कर रहे है ।

इस अवस्था मे कृष्णजी कहने लगे—द्रौपदी ! तुम्हारी बाते नीति और युक्तियो से भरी है, फिर भी मुझे जचती नही हैं । तुम्हारा कथन कर्तव्यमार्ग मे सहायक नही हो सकता । मेरा कर्तव्य लडाई कराना नही, शान्ति स्थापित करना है ।

लोग कुछ दिन पहले अहिंसा की शक्ति का उपहास करते थे । उनका कथन था कि अहिंसा का राजनीति से क्या सरोकार है ? अहिंसा तो मदिरो में या इतर धर्मस्थानों मे पालक करने की चीज है । राजनीति और अहिंसा तो

परस्पर विरोधी बाते हैं। मगर अन्त मे सत्य छिपा नही रहा। आज सब ने अहिंसा की प्रचण्ड शक्ति का अनुभव कर लिया है। अहिंसा की यह शक्ति तो अपूर्ण है। उसकी परिपूर्ण शक्ति का पता कभी भविष्य मे चलेगा।

कई लोग समझते है कि कृष्ण का उद्देश्य लडाई करना था। लेकिन उसके उपदेश से—गीता से-इस कथन का समर्थन नही होता। 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्' का उपदेश देने वाला हिंसा का उपदेशक कैसे माना जा सकता है ? कृष्ण ने स्पष्ट शब्दो मे कहा—सब प्राणियो को अपने समान समझो। मै सत्पुरुषो की रक्षा एव दुष्कृतो का वि-नाश करने के लिए जन्मा हूं। दुष्टो का नाश करने के लिए नही, किन्तु दुष्टो से प्रेम करने। उन पर दया करने और दुष्कृत्यो का नाश करने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है।

गीता मे इस आशय की अनेक युक्तिया विद्यमान होने पर भी लोग गीता को लडाई कराने वाली पुस्तक और कृष्ण को लडाई कराने वाला पुरुष समझते है। मर्ंज्ञ ही इन बातो की गहराई समझ पाते हैं। ऊपरी दृष्टि से वास्तविकता नजर नही आती।

तो कृष्णजी कहने लगे—द्रौपदी। लड़ाई कराना मेरे लिये उचित नही है। तुम्हे मुझ पर पूर्ण विश्वास है, इसीलिये तुमने मेरे सामने सब बातें कह दी हैं। लेकिन मुझे अपना कर्त्तव्य करने दो। तुमने जो कुछ कहा सो आवेश के वश होकर ही। तुम संधि की वार्त्ता से दुखित हुई हो। तुम सोचती हो—पाच गांवो से हमारा काम कैसे चलेगा ?

और इस प्रकार सधि कर लेने से उनकी जीत और हमारी हार समझी जायगी। द्रौपदी ! तुमने वन में रह कर भी अपना काम चलाया है, इसलिये शायद पाच गाव लेकर काम चलाने मे तुम्हे कठिनाई नही मालूम होती हो, तो भी इस प्रकार की सधि मे तुम्हे कौरवो की गुरुता और अपनी लघुता प्रतीत होती है। इन्ही कारणो से तुम सधि का विरोध कर रही हो। लेकिन तुम्हे यह नही मालूम कि साधि करने मे क्या रहस्य छिपा हुआ है। यह बात मैं जानता हूं या धर्मराज जानते है। सधि मे पाच गाव राज्य करने के लिये मैंने नही मागे है और न कौरवो से भयभीत होकर ही ऐसा किया है। कौरवो की दुष्टता का नाश करने के लिए ही यह माग उपस्थित की गई है। अगर कौरव पाच गाव दे देगे तो वह दुष्ट कहलायेंगे। ससार उन्हे घृणा की दृष्टि से देखेगा। कोई आदमी किसी के पास एक करोड़ की धरोहर रख देता है और केवल पाच रुपया देकर फैसला कर लेता है, तो पाच रुपये मे फैसला करने वाले का संसार मे यश ही होगा। पाच रुपया देने वाला सोचेगा कि एक करोड़ के वदले पाच रुपया देने से मुझे ससार क्या कहेगा? यही बात पाच ग्राम लेकर साधि करने मे है।

विशाल राज्य के वदले सिर्फ पाच ग्रामो से संतुष्ट हो जाने मे पांडवों का तो कल्याण ही है। हा इसमे कौरवों की ही लघुता है। मैं लडाई कराने के वदले इस प्रकार का उत्तम आदर्श पेश करना अच्छा समझता हूं। इस सधि से ससार पाडवो की प्रशंसा करेगा। सभी लोग मुक्त—कंठ से पाडवो की सराहना करते हुए कहेगे पाडवो ने बारह वर्ष तक वन में और एक वर्ष अज्ञात रह कर भी अपने अधिकार

का राज्य केवल शाति के लिए छोड दिया !

क्रोध से आवेश हो जाता है । मगर क्रोध का त्याग करना साधारण बात नही है ।

पट खीचने के समय मे कुछ प्रमाण तुम्हे मिला ।

दु शासन द्वारा पट खीचे जाने के समय सभा में खडी होकर तुमने भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र आदि सबसे न्याय की भिक्षा मागी थी । न्याय भी क्या ? केवल यही कि धर्म-राज, अगर जुए मे पहले अपने आप को हार गये हो तो फिर उन्हे यह अधिकार कहा रहता है कि वे मुझे हारें ? हा अगर पहले मुझे हारा हो और फिर अपने आपको, तो मुझे कोई आपत्ति नही । तुम्हारे बहुत कहने—सुनने पर भी किसी ने न्याय दिया था ? तुम उस समय की बात स्मरण करो ।

द्रौपदी ! तुम इन केशो को बता रही हो लेकिन साथ की उस समय की बात भूली जा रही हो जब तुम्हे किसी ने न्याय नही दिया और तुमने सब बल छोड दिया और जब मन-ही-मन कहा - प्रभो ! शरीर, लाज, तन, मन, धन आदि तुझे सौप चुकी हू । अब तू चिन्ता कर, मुझे चिन्ता नही हे । इस प्रकार कह कर निर्बल बन गई थी, तब तुम्हारी रक्षा हुई थी या नही ? दु शासन बडा वली था । लेकिन तुम्हारा चीर खीचते-खीचते तो वह भी थक गया । उस समय किसने तुम्हारी रक्षा की थी ?

श्रद्धा रखो उस सत्य पर जो अखिल जग का प्राण है ।
सच्चा हितैषी पाडवो का और अटल महान् है ॥

द्रौपदी-तुम्हे उस अटल सत्य पर विश्वास रखना चाहिए।

'सच्च खु भगवं'

सत्य विश्वास ही ईश्वर है, यह समझ कर सत्य पर श्रद्धा रखो। सत्य पर विश्वास होगा तो ईश्वर पर भी विश्वास होगा।

कृष्ण ने कहा—द्रौपदी! जिसने तुम्हारे वस्त्र बचाये, वही सत्य तुम्हारी बात रखेगा। तुम शात होओ। उत्ते-जना के वशीभूत होकर तुम इस सत्य को भूल रही हो।

तुम्हे भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण न होने की चिन्ता है लेकिन इससे सत्य पर अविश्वास होता है, इसकी चिन्ता है या नही? चीर खीचने के समय भीम और अर्जुन काम आये थे? जिस सत्य का अपरिमित प्रभाव तुम जान चुकी हो, उसे क्यो भुलाये देती हो? तुम साधारण स्त्री नही हो, संसार को अनुपम शिक्षा देने वाली आदर्श देवी हो। तुम पाडवो के साथ वन—वन भटकी हो, तुमने विराट के घर दासीत्व किया है, लेकिन यह सब किया है राज्य पाने की आशा से। मैं कहता हू—तुम ईश्वर बनने के लिए ईश्वर को भजो। जरा से राज्य के टुकडे पर ललचाकर सत्य पर अविश्वास मत करो।

भाइयो और बहिनो कृष्णजी का यह उपदेश केवल द्रौपदी के लिए नही है। यह वर्तमान और भावी प्रजा के लिए भी है। इतिहास और भूगोल समयानुसार पलटता रहता है, लेकिन सत्य का यह उपदेश सत्य की भाति सदैव रहेगा। जैसे सत्य ध्रुव है, उसी प्रकार यह उपदेश

भी ध्रुव है ।

कृष्णजी कहते है—सधि हो जाने पर तुम्हारा सिर न गूंथा जायगा तो क्या वह मुडित न हो सकेगा ? सिर का मुडन भी तो किया जा सकता है । लोकोत्तर धर्म की भावना से मुडन कराया हुआ सिर अनन्त सौभाग्य का सूचक है । भीम की प्रतिज्ञा भी अगर नही रही तो न रहे, लेकिन सत्य उससे भी बढकर है । उसे जाने देना, उस पर अविश्वास करना उचित नहीं है। जो मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य की रक्षा करता है, सारा ससार सगठित होकर भी उसका कुछ नही बिगाड सकता ।

द्रौपदी ! तुम कहती हो, जिन कौरवो ने पांडवो को विष दिया, उन पर दया कैसी ? लेकिन यह तो सोचो कि पाण्डवो को कैसा भयंकर विष दिया होगा ! उस उग्र विष से कोई बच सकता था ? फिर उसे विष से उस समय उन्हें किसने बचाया ? जिस सत्य ने उस भयानक विष से रक्षा की थी, वह सत्य क्या भुला देने योग्य है ? जिसने पाण्डवो की प्राणरक्षा की, उसकी पाण्डवो द्वारा हत्या करना तुम पसन्द करोगी ?

द्रौपदी ! तुम लाक्षागृह का घोर सकट बतलाकर कहती हो, उसकी याद आ जाती है । तुम उस विकराल आग की याद तो करती हो, लेकिन यह भी याद आता है कि लाक्षागृह मे से बच निकलने की आशा थी या नही ? जिस सत्य के प्रताप से वह सकट टल सका, उसी सत्य पर अब अविश्वास करने चली हो ?

कृष्ण फिर कहते है—द्रौपदी ! आवेश मे आने पर

आज तुम्हे कौरवो की बुराई दिखाई देने लगी । पाण्डवों को भटकते देखा और सर्वस्व चला गया । इसलिए आज तुम्हे चिन्ता हो गई, लेकिन आवेश को त्याग कर सत्य का चिन्तन करो । सत्य से तब भी कल्याण हुआ था, अब भी होगा । जैसे मलिन काच मे मुंह नही दीखता, उसी प्रकार लोभ और तृष्णा से भरे हुए हृदय को न्याय नही सूझता । तुम अपने कष्ट सहन की बात कहती हो, सहनशीलता का स्मरण करती हो, लेकिन सत्य ने भी तुम्हारे लिए कुछ उठा नही रखा । हृदय का मालिन्य दूर कर दो, सत्य उस पर प्रतिबिम्बित होने लगेगा ।

द्रौपदी ! ससार के तमाम आभूषणो मे विद्या बड़ा आभूषण है । मनुष्य-शरीर का शृङ्गार हार नही है, विद्या है । बिना हार-शृङ्गार के विद्वान शोभा दे सकता है, लेकिन बिना विद्या के हार-शृङ्गार शोभा नही देता । मैंने शृङ्गार नही कर रखा है, तो क्या मैं बुरा लगता हूं ? द्रौपदी ! विद्या बडी चीज है, मगर क्रोध को मार डालना उससे भी बडी बात है । इसलिए गहने और राज्य आदि जाने की चिन्ता मत करो ।

द्रौपदी ! सत्य पर अटल विश्वास रखो । सत्य की ही अन्तिम विजय होगी । सत्य से खिसकना पराजय के समीप पहुचना है ।

इस आख्यान पर बहुत कुछ कहा जा सकता है । पर इसे विस्तारपूर्वक कहने का समय नही । मनुष्य रजोगुण और तमोगुण के वशीभूत होकर किस प्रकार विराट शक्ति को भूल जाता है, यह बतलाने के लिए ही यह कहा गया है ।

# ४८ : गुरु-शिष्य

श्रीकृष्ण इतिहास मे प्रसिद्ध महापुरुषो मे से एक है । वे बहुत बडे राजा के पुत्र थे । महापुरुष होने के कारण उनमे बहुत अधिक समझ थी । फिर भी माता-पिता का आग्रह मानकर वह सान्दीपनी ऋषि के पास पढने गये । इन्ही ऋषि के पास सुदामा नामक एक गरीब ब्राह्मण विद्यार्थी भी पढता था । कृष्णजी का उससे प्रेम हो गया । दोनो गाढे मित्र बन कर रहने लगे ।

सयोगवश एक दिन गुरु कही चले गये और घर मे जलाने की लकडी नही थी । लकडी के अभाव मे गुरुपत्नी भोजन नही बना सकती थी । यह देखकर कृष्णजी अपने मित्र सुदामा को साथ लेकर लकडी लाने के उद्देश्य से जगल की ओर चल दिये । दोनो जगल मे पहुचे । वहा लकडिया तोड़कर या काटकर जब दोनो ने भारे बाधे तो बडे जोर से वर्षा होने लगी । रात भर वर्षा होती रही । वर्षा के कारण कृष्ण और सुदामा लकडिया लिए वृक्ष के नीचे खडे रहे ।

मूसलाधार पानी बरस रहा था, तेज आधी चैन नही लेती थी । मेघो की भयकर गर्जना कानो के पर्दे फाडने

को तैयार थी। बिजली कडक रही थी। घोर अंधकार चारों ओर फैला था। हाथ-को-हाथ नही दीखता था। ऐसे समय मे दो बालक पेड के नीचे खडे ठिठुर रहे थे। वर्षा और आंधी से यद्यपि उन्हे बडा कष्ट हो रहा था, तथापि उनके मन मैले नही थे। अपने कष्टो की उन्हे चिन्ता नहीं थी। उन्हे चिन्ता थी तो केवल यही कि हम लोगो के समय पर न पहुचने के कारण आज आचार्य के घर रोटी न बन सकी होगी और उन्हें भूखा रहना पडा होगा। कृष्णजी रात भर अपने साथी सुदामा से इसी प्रकार की बातें करते रहे।

प्रात काल होने पर गुरु अपने घर आये। विद्यार्थियों को न देखकर अपनी पत्नी से पूछा। पत्नी ने उत्तर दिया—कृष्ण और सुदामा लकडी लेने के लिए कल से ही जंगल में गये हैं और वर्षा तथा आंधी के कारण अब तक नही लौटे। यह सुनकर गुरु नाराज होने लगे। कहा—तुमने बच्चो को लकडी लाने भेजा ही क्यो ?

गुरुपत्नी ने कहा—मना करती रही, फिर भी वे लोग चले गये।

गुरु तत्क्षण जगल की ओर चल पडे। जगल में जाकर उन्होने देखा—कृष्ण और सुदामा दोनो पेड के नीचे खडे ठिठुर रहे हैं। उन्हे देखकर आचार्य ने कहा—वत्स ! मैं तुम लोगो को क्या पढ़ाऊं ? विद्या के अध्ययन से जो गुण उत्पन्न होने चाहिये, वह तो तुम लोगो मे मौजूद ही है। देखो न, बेचारा सुदामा इस विपत्ति से कितना घबरा

गया है तुम (कृष्ण) महापुरुष हो, इस कारण घबराये नहीं और सदा की भांति प्रसन्न दीखते हो। इतना कह कर आचार्य उन्हे घर ले गये।

विद्यार्थी को अपने गुरु के प्रति कैसी श्रद्धा—भक्ति होनी चाहिए, उसका आदर्श इस कथा मे बतलाया गया है। साथ ही यह भी प्रकट किया गया है कि अध्यापको मे और विद्यार्थियो मे आज यह बात कहा !

# ४६ : वशीकरण

जो व्यक्ति अपना काम आप करके दूसरो का काम करने मे समर्थ होता है, वही व्यक्ति प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और दूसरो पर अपना प्रभाव भी डाल सकता है। यह बात एक प्राचीन उदाहरण द्वारा समझो ।

विराट नगरी में अज्ञातवास समाप्त करके पाडव अभी प्रकट हुए थे । वे अपनी प्रसिद्धि करने के लिए अभिमन्यु का विवाह उत्तरा के साथ कर रहे थे । इस विवाहोत्सव मे भाग लेने के लिए श्रीकृष्ण की कई रानियां भी विराट नगरी मे आई हुई थी। विवाहोत्सव सानन्द सम्पन्न हो जाने के बाद जब श्रीकृष्ण की रानिया वापिस द्वारिका लौटने लगी तो द्रौपदी उन्हे विदा करने गई। श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा बहुत भोली थी । इसलिए 'भोली भामा' की कहावत प्रसिद्ध हो गई है । भोली सत्यभामा ने रास्ते मे द्रौपदी से कहा—मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूं । द्रौपदी ने उत्तर मे कहा—तुम मुझसे बडी हो और तुम्हे मुझसे प्रत्येक बात पूछने का अधिकार है । तब सत्यभामा ने द्रौपदी से पूछा—मेरे एक ही पति है, फिर भी वे मेरे वश मे नही रहते और तुम्हारे पाच पति है फिर भी वे पाचो तुम्हारे वश मे रहते है। अतएव मैं पूछना चाहती हूं कि क्या तुम्हारे पास कोई ऐसा वशीकरण मन्त्र है, जिसके

प्रभाव से तुम पांचो पतियो को अपने वश मे रख सकती हो ? अगर ऐसा वशीकरण मन्त्र जानती होओ तो मुझे भी वह मन्त्र सिखा दो न ?

द्रौपदी ने उत्तर दिया—मैं ऐसा वशीकरण मन्त्र जानती हू परन्तु जान पडता है, कोमलागी होने के कारण तुम वह मन्त्र साध नही सकोगी ।

सत्यभामा कहने लगी—मैं उस मन्त्र को अवश्य साध सकू गी । मुझे अवश्य वह मन्त्र बता दो । मुझे उसकी बड़ी आवश्यकता है ।

ऐसे वशीकरण मन्त्र की आवश्यकता किसे नही होती ? उसे तो सभी चाहते है । पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, पति पत्नी को, पत्नी पति को और इस प्रकार सभी एक दूसरे को अपने वश मे करना चाहते हैं । मगर यह मन्त्र जब साध लिया जाय तभी सब को वश मे किया जा सकता है ।

द्रौपदी ने सत्यभामा से कहा—मैं वशीकरण मन्त्र द्वारा सब को अपने वश मे रखती हू । वह मन्त्र यह है कि 'स्वय दूसरे के वश मे रहना ।' इस मन्त्र से जिसे चाहो उसे वश मे कर सकती हो । इस मन्त्र को साधने का उपाय मेरी माता ने मुझे सिखाया है । मन्त्र साधने की विधि बताते हुए मेरी माता ने कहा था—पति के उठने से पहले उठ जाना । फिर पति की आवश्यकताए अपने हाथ से पूरी करना । दास-दासियो के भरोसे न बैठी रह कर सब काम अपने हाथ से करना और दास-दासी की अपेक्षा अपने-आप को बडी दासी समझना । इस प्रकार अपने को नम्र

वनाकर सव काम करना । वडो-वूढो की मर्यादा रखना । सव की सेवा-शुश्रूषा करना और सव को भोजन कराने के वाद आप भोजन करना । इसी प्रकार सव के सो जाने पर सोना । काम करते-करते फुर्सत मिल जाय तो सव को कर्तव्य और धर्म का भान कराना । इस प्रकार कर्तव्य-परायणता का परिचय देकर अपनी चरित्रशीलता का प्रभाव डालना । यही वशीकरण मन्त्र को साधने के उपाय हैं । इस उपाय से मन्त्र की अच्छी तरह साधना की जाय तो अपने पति को तथा अन्य कुटुम्वी जनो को अपने अधीन किया जा सकता है । अगर तुम इस विधि से मंत्र की साधना करोगी तो श्रीकृष्ण अवश्य तुम्हारे वश मे हो जाएंगे ।

तुम लोग भी इस वशीकरण मन्त्र को साधने का प्रयत्न करोगे तो अवश्य उसे साध सकोगे । अगर तुमने मन्त्र-साधन का साहस ही न किया और दूसरे के भरोसे वैठे रहे तो यह तुम्हारी पराधीनता कहलायेगी । शास्त्र तुम्हे जो उपदेश देता है सो तुम्हारी परतन्त्रता दूर करने के लिए ही है । शास्त्र तो तुम्हे आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनो दृष्टियो से स्वतन्त्र करना चाहता है । इसी कारण शास्त्र आध्यात्मिक उपदेश के साथ ७२ कलाओ का शिक्षण सपादन करने का भी उपदेश देता है । मगर तुम तो पर-तन्त्रता मे और दूसरो के हाथो काम कराने में ही सुख मान वैठे हो । परतन्त्र रहने मे और दूसरो के हाथो काम कराने मे कम पाप होता है और सुख मिलता है, यह मान्यता भ्रमपूर्ण है । अपने हाथ से काम करने मे कम पाप लगता है या दूसरे से कराने मे, इस वात का अगर वुद्धिपूर्वक विचार करोगे तो तुम्हे विश्वास हो जायगा कि

स्वतन्त्रता मे सुख है और परतन्त्रता मे दु.ख है। पाप परतन्त्र दशा मे अधिक होता है और स्वतन्त्र दशा मे कम होता है।

द्रौपदी ने सत्यभामा को वशीकरण मन्त्र और उस मन्त्र को साधने के उपाय बतलाते हुए कहा—दूसरो के वश मे रहना सच्चा वशीकरण है और पति-मेवा मे सुख मानना, पति की आज्ञा मानना तथा कर्तव्यशील और धर्म-परायण होकर रहना मन्त्र सावने के उपाय है। अगर तुम इस मन्त्र की साधना करोगे तो तुम भी सब को अपने वश मे कर सकोगे। यह मन्त्र तो विश्व को त्रग में करने वाला वशीकरण मन्त्र है।

कहने का आशय यह है कि जो पुरुष स्वावलम्बी बनता है और अपना काम आप करके दूसरे का भी काम कर लेता है, वही प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है। दूसरो को गुलाम रखने वाला स्वय गुलाम बनता है।

# ५० : एक ही पत्नी

एक वार नारदजी ने श्रीकृष्ण से कहा—आप महान् पुरुप गिने जाते है, फिर इतनी पत्निया रखना आपके लिए क्या उचित है ? श्रीकृष्णजी ने उत्तर दिया—मेरे सिर्फ एक ही पत्नी है, दूसरी नही है ।

नारद—आपकी वात मेरी समझ मे नही आती । महल-के-महल रानियो से भरे पडे है और आप कहते है—मेरे सिर्फ एक ही पत्नी है ।

श्रीकृष्ण—अगर आपको विश्वास नही है तो अन्त'पुर मे जाकर देख आइये कि एक रानी के साथ एक कृष्ण है या नही ? जिस रानी के साथ मैं न होऊ, समझ लीजिए कि वह मेरी पत्नी नही है ।

नारदजी ने सोचा—देखें, कृष्णजी कहा-कहा दौडेगे । मैं एक मुहूर्त मे पैंतालीस लाख योजन चलने वाला हू । ऐसा सोच नारदजी दौडकर प्रत्येक महल मे गये । मगर उन्हे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिस महल मे वह पहुंचे, कृष्णजी वही मौजूद हैं । कृष्ण की रानियो मे उन्हे एक भी ऐसी न मिली, जो विना कृष्ण के हो । इस प्रकार नारदजी सव महल देखकर जव सभा—भवन मे लौटे तो

उन्होंने कृष्ण को सिंहासन पर बैठा देखा। नारदजी बोले—आप यहां भी मौजूद हैं? कृष्णजी मुस्कराहट के साथ बोले—कहां जाऊं, मेरे तो स्त्री ही नहीं है। आपकी लीला अपरम्पार है, कहकर नारदजी चल दिये।

आज के लोग सहज ही यह कह सकते है कि ऐसी असंभव बातों को सुनना भी वृथा है लेकिन जो लोग वैक्रियलब्धि नहीं मानते उन्हे बहुविवाह भी नहीं मानना चाहिए। जिस शास्त्र की एक बात को आप अस्वीकार करते हैं, उसी की दूसरी बात स्वीकार कैसे कर सकते है?

# ५१ : दुर्योधन-अर्जुन

महाभारत के अनुसार अर्जुन और दुर्योधन श्रीकृष्ण को अपनी—अपनी ओर से युद्ध मे सम्मिलित होने का निमन्त्रण देने गये थे। कृष्ण उस समय सो रहे थे। उन्हे जगाने का तो किसी मे साहस नही था, अतएव दोनो उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगे। अर्जुन मे कृष्ण के प्रति—सेवकभाव था, अतएव उसने उनके चरणो की ओर खडा रहना उचित समझा। वह चरणो की ओर ही खडा हो गया। दुर्योधन मे अहंकार था। वह सोचता था – मैं राजा होकर पैरो की ओर कैसे खडा रह सकता हू ? इस अभिमान के कारण वह कृष्ण के सिर की ओर खडा हुआ। कृष्ण जागे। कोई भी मनुष्य जब सोकर उठता है तो स्वाभाविक रूप से पैरो की ओर वाले मनुष्य के समीप और सिर की ओर वाले मनुष्य से दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त पहले उसी पर दृष्टि पडती है, जो पैरो की ओर खड़ा होता है इस नियम के अनुसार अर्जुन, कृष्ण के नजदीक हो गये और अर्जुन पर ही उनकी दृष्टि पहले पडी।

दुर्योधन पश्चात्ताप करने लगा कि सिर की तरफ क्यो खडा हो गया ! हाय ! मैं पैरो की तरफ क्यो नही खडा हुआ ! अर्जुन कृष्ण से पहले मिल रहा है। कही ऐसा न

हो कि वे उनका साथ देना स्वीकार करलें । मैंने इतनी दौड—धूप की । कही ऐसा न हो कि मेरा आना वृथा हो जाय !

इस प्रकार सोचकर दुर्योधन ने किसी सकेत द्वारा कृष्ण पर अपना आना प्रकट कर दिया ।

अर्जुन के प्रणाम करने पर श्रीकृष्ण ने आने का कारण पूछा । अर्जुन ने कहा—कौरवो के साथ युद्ध होना निश्चित हो चुका है अतएव मै आपको युद्ध का निमत्रण देने आया हूं ।

श्रीकृष्ण—मुझे जो आमत्रित करे, मैं उसी के यहां जाने को तैयार हू । लेकिन दुर्योधन भी आया है । उसे भी निराश करना उचित नही होगा । इसलिए एक ओर मैं और दूसरी ओर मेरी सेना है । दोनो मे से जिसे चाहो, पसद कर लो ।

अर्जुन को श्रीकृष्ण पर विश्वास था । उसने कहा—मैं आपको ही चाहता हू ।

अर्जुन की माग सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ । वह मन मे सोचने लगा—मेरा भाग्य अच्छा है, इसी कारण तो अर्जुन ने सेना नही मागी । युद्ध मे तो आखिर सेना ही काम आएगी । अकेले कृष्ण क्या करेगे ?

अर्जुन के बाद दुर्योधन की बारी आई । उससे भी आने का प्रयोजन पूछा गया । दुर्योधन ने भी यही कहा कि मैं भी युद्ध का निमत्रण देने आया हू । श्रीकृष्ण ने कहा—ठीक है । एक ओर मैं और दूसरी ओर मेरी सेना । अर्जुन

ने मुझे माग लिया है । तुम क्या चाहते हो ?

दुर्योधन मन मे सोच रहा था कि मैं अकेले कृष्ण को लेकर क्या करूगा ? मुझे तो सेना चाहिए जो काम आएगी । मगर प्रकट रूप मे वह ऐसा नही कह सका । उसने कहा—जिसे अर्जुन ने माग लिया है, उसे मागने से क्या लाभ ? मागी हुई चीज को फिर मागना क्षत्रियो का काम नही है । अतएव आप अपनी सेना मुझ दे दीजिये ।

कृष्ण बडे चतुर थे दुर्योधन की समझ पर मन-ही-मन हसे और सोचने लगे - दुर्योधन को मुझ पर विश्वास नही है, मेरी सेना पर विश्वास है । आखिर उन्होने कहा—अर्जुन ! मैं तुम्हारा हू और दुर्योधन ! सेना तुम्हारी है ।

अर्जुन को कृष्ण पर और दुर्योधन को सेना पर विश्वास था । फल क्या हुआ ? गीता के अन्त मे कहा है—

यत्र योगेश्वरो कृष्ण यत्र पार्थो धनुर्धर ।

सजय धृतराष्ट्र से कहते हैं—आप युद्ध के विषय मे क्या पूछते हैं ? यह तो निश्चित समझिए कि जिस ओर योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन हैं, विजय उसी पक्ष की होगी । विरोधी पक्ष को विजय मिलना असम्भव है ।

## ५२ : सत्यवादी--युधिष्ठिर

जो मनुष्य सत्य—मार्ग का पथिक है, उस पर शत्रु भी विश्वास करते है और यह बात ध्रुव सत्य है कि वह शत्रु से भी विश्वासघात नही करता । इसके लिए महाभारत में वर्णित एक कथा का उदाहरण दिया जाता है ।

जिस समय महाभारत युद्ध मे दुर्योधन की प्राय सब सेना और भाई नि शेष हो गये, सौ भाइयो मे से एक दुर्योधन ही जीवित बचा, उस समय दुर्योधन ने सोचा कि मैं अकेला क्या कर सकता हु ? पाण्डवो के पास इस समय भी पर्याप्त शक्ति है और मै अपने भाइयो मे से अकेला हू । यह सोचकर प्राण बचाने के लिए वह एक तालाब की जल-राशि मे जा छिपा । कई दिन तक इसी प्रकार छिपे रहने के पश्चात् उसने सोचा कि मै क्षत्रिय हू, उद्योग करना मेरा कर्तव्य है, अत कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए कि जिससे मेरी मृत्यु भी न हो और मैं पूरी शक्ति के साथ अकेला ही पाण्डवो से युद्ध कर सकू । सोचते-सोचते, उसके विचार मे यह बात आई कि युधिष्ठिर सरल हृदय है और सदैव सत्य-भाषण करते हैं, अत उन्ही से कोई ऐसी युक्ति पूछनी चाहिए, जिससे मैं अजेय हो जाऊ । यह सोचकर, दुर्योधन जल से बाहर निकला और युधिष्ठिर के पास जाकर पूछने लगा कि

महाराज ! मुझे कोई ऐसी युक्ति बताइये, जिससे मैं अजेय हो जाऊं और भीम या अर्जुन, जिनका मुझे विशेष भय है—मेरा कुछ न बिगाड सके। युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—राजन् ! यह सिद्धि तो तुम्हारे घर मे ही है, कही बाहर जाने की आवश्यकता नही है। माता गान्धारी बडी सती है। यदि वे एक दृष्टि से तुम्हारे खुले शरीर की ओर देख ले तो सारा शरीर वज्र के समान कठोर हो जाय। किन्तु एक बात और है, वह यह कि शरीर के जिस भाग पर उनकी दृष्टि न पडेगी, वह कच्चा ही रह जायगा।

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हुआ और सोचने लगा कि अब क्या है, अभी जाकर माता गान्धारी के सामने से नग्न होकर निकल जाऊंगा, बस फिर तो अर्जुन और भीम मेरा कुछ भी न बिगाड सकेंगे।

दुर्योधन यह सोचता हुआ अपने घर की ओर जा रहा था कि मार्ग मे उसे श्रीकृष्ण मिले। उन्होने दुर्योधन के हृदय की बात जानकर कहा कि दुर्योधन ! यह युक्ति तो धर्मराज-युधिष्ठिर ने अच्छी बतलाई है और इससे तुम्हारा सारा शरीर वज्र बन भी जायगा, किन्तु बिल्कुल नग्न होकर तुम्हे अपनी माता के पास जाना उचित नही है। लज्जा की रक्षा के लिए कम-से-कम एक कमल-कोपीन अवश्य लगा लेना।

पहले तो इसके लिए दुर्योधन कुछ आनाकानी करता रहा, किन्तु श्रीकृष्ण के नीति बतलाने पर उसने यह बात स्वीकार कर ली। वह अपनी माता के पास गया और

उसमे यह सारी कथा कही। गान्धारी यह सुनकर चौंकी, उसे यह नही मालूम था कि मेरे मे ऐसी शक्ति मौजूद है। किन्तु युधिष्ठिर सदैव सत्य बोलते है, कभी असत्य भाषण नही करते, अतः अविश्वास करने का कोई कारण भी न था। गान्धारी ने एक दृढ-दृष्टि से दुर्योधन को देख लेना स्वीकार किया, तब दुर्योधन एक कमल-कोपीन लगाकर उसके सामने आ खडा हुआ। गान्धारी ने एक दृढ-दृष्टि से दुर्योधन के शरीर की ओर देख लिया, इससे उसका सारा शरीर तो वज्र के समान कठोर हो गया, किन्तु जो स्थान ढका हुआ था, वह कच्चा रह गया। दुर्योधन ने सोचा कि इस स्थान के कच्चे रह जाने से मेरी क्या क्षति हो सकती है? यह स्थान तो धोती के भीतर रहता है, इस पर चोट करने कौन जाता है? यह विचार कर वह बाहर निकल आया और पाण्डवो के पास जाकर दूसरे दिन भीम से गदा-युद्ध करने की बात तय की।

गान्धारी के नेत्रो मे ऐसी शक्ति होने का कारण उसका पति-व्रत-धर्म था। उसने नेत्रो से कभी भी किसी पर-पुरुष को बुरी दृष्टि से नही देखा था। पतिव्रता स्त्री के नेत्रो में यह शक्ति होती है कि वह किसी को पुत्र की तरह प्रेम की दृढ-दृष्टि से देख ले तो उसका शरीर वज्र-मय हो जाय और यदि क्रोध की दृष्टि से देख ले तो भस्म हो जाय।

मनुष्य यदि चाहे तो अपने नेत्रो और वाणी मे सत्य से ऐसी ही शक्ति पैदा कर सकता है। असत्य-स्थान पर दृष्टि न डालने और असत्य भाषण न करने से वाणी और नेत्रो मे ऐसी शक्ति उत्पन्न हो सकती है कि नेत्र से जिसे

देख ले उसका शरीर वज्र-सा दृढ हो जाय या भस्म हो जाय और वाणी से जो कुछ कह दे वह पूरा ही हो ।

प्राय: पहले के लोगो की वाणी में वह शक्ति होती थी कि जिसके लिए जो कुछ कह देते थे, वही हो जाता था । उनका आशीर्वाद या श्राप मिथ्या नही होता था । लेकिन लोग सत्य का पालन करते थे और बात-बात मे न तो किसी को आशीर्वाद ही देते थे, न श्राप । ही आज के लोग दिन-रात दूसरे का बुरा-भला चाहा करते है, अर्थात् आशीर्वाद या श्राप दिया करने है, फिर भी कुछ नही होता । इसका कारण यही है कि सत्य को न पहिचानने से उनकी वाणी निस्तेज है । यदि सत्य को पहिचान ले तो न वे इस प्रकार किसी का भला बुरा ही चाहे और न चाहा हुआ भला बुरा निष्फल ही हो ।

दूसरे दिन दुर्योधन ओर भीम का गदा-युद्ध हुआ । भीम ने अपनी पूरी शक्ति से दुर्योधन के सिर, पीठ, छाती, भुजा आदि स्थानो पर गदा-प्रहार किये, किन्तु सब निष्फल । गदा लगती और टकराकर लौट आती, दुर्योधन का बाल भी बांका न होता । इसी समय भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आई कि मैंने द्रोपदी के चीरहरण के समय दुर्योधन की जघा चूर्ण करने की प्रतिज्ञा की थी । बस, तत्क्षण उसने अपनी गदा का प्रहार दुर्योधन की जघा पर किया । जघा तो कच्ची रह गई थी, गदा लगते ही चूर्ण हो गई और दुर्योधन गिर पड़ा ।

जो मनुष्य सत्य-व्रत के पालने वाले है, वे अपनी शरण

मे आये हुए शत्रु के साथ भी दुष्टता का व्यवहार नहीं करते। शरण मे आया व्यक्ति जो सलाह पूछता है, वह विना किसी प्रकार का भेद-भाव रखे और बिना किसी प्रकार के ईर्ष्या-द्वेष के ठीक-ठीक बतला देते हैं। यह नही देखते कि शरणागत शत्रु है या मित्र।

युधिष्ठिर यह जानते है कि दुर्योधन से मेरा युद्ध चल रहा है, मेरे भाई भीम और अर्जुन को हराने के लिए ही यह मुझ से सलाह पूछने आया है। इस समय यदि वे चाहते तो कोई ऐसी राय बतला सकते थे, जिससे स्वय दुर्योधन अपना नाश अपने हाथ से कर लेता। किन्तु युधिष्ठिर ने ऐसा न करके स्वच्छ हृदय से सच्ची और लाभदायक सम्मति दी। ऐसा करने वाले सत्यमूर्ति—युधिष्ठिर के सत्यव्रत की जितनी प्रशसा की जाय, थोडी है।

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि जो मनुष्य सत्य-मार्ग का पथिक है, वह कभी अपने शत्रु की क्षति के लिए भी झूठ का आश्रय नहीं लेता बल्कि आवश्यकता पडने पर शत्रु यदि राय पूछे तो शत्रुता को दूर रखकर एक मित्र की तरह राय देता है।

युधिष्ठिर को दुर्योधन ने कितने कष्ट दिये थे! वह युधिष्ठिर को अपना कैसा भयंकर शत्रु समझता था फिर भी युधिष्ठिर ने दुर्योधन से असत्य भाषण नही किया। दुर्योधन के अजेय होने पर युधिष्ठिर की हानि थी, क्योकि उसे पराजित करने के लिए ही यह युद्ध हुआ था। लेकिन युधिष्ठिर ने ऐसे समय मे भी सत्य को ही प्रधानता दी और

अपनी हानि की कुछ चिन्ता नही की । आज के लोगो पर युधिष्ठिर का-सा कोई असमय न होते हुए भी, वे असत्य को प्रधानता देते है और शत्रु से झूठ न बोलना तो दूर रहा, मित्र से भी झूठ बोलने मे सकोच नही करते । ऐसे लोग इस वात को बिलकुल भूल जाते है कि असत्य की विजय नही होती, विजय सत्य की ही होती है । यद्यपि युधिष्ठिर ने स्वय दुर्योधन को अजेय होने की युक्ति वता दी थी और वह युक्ति असत्य नही थी, फिर भी सत्य की विजय होने के लिये दुर्योधन को मार्ग मे कृष्ण मिल गये और उसे पराजित होना पडा । इसी प्रकार सत्य की विजय और असत्य की पराजय होने के लिये कुछ-न-कुछ कारण हो ही जाया करता है ।

# ५३ : पाप का लेश

एक वार द्रौपदी नदी मे स्थान करने गई थी। द्रौपदी की गणना पतिव्रता स्त्रियो मे है। जैन साहित्य और महाभारत दोनो मे ही उसे पतिव्रता माना है। दुर्योधन उसे नग्न करना चाहता था लेकिन द्रौपदी के सत्य के प्रभाव से वस्त्र का ढेर लग गया था। वह नग्न नही हुई। उसका पतिव्रत धर्म ससार मे प्रसिद्ध था।

द्रौपदी स्नान करने गई थी कि इतने मे ही कर्ण उस ओर से निकले। कर्ण भी तेजस्वी और वीर थे। वे छठे पाण्डव के समान थे और दूसरे अर्जुन ही जान पड़ते थे। कर्ण वीर का वाना धारण किये कुलीन और शीलवान पुरुष की तरह उधर निकले। उन्होने उस ओर ध्यान ही नही दिया कि कौन यहा स्नान कर रहा है ? वह यों सहज ही उस ओर से निकल रहे थे। कुलीन पुरुष के सामने अगर कोई स्त्री आ जाती है, तो चाहे वह किसी अवस्था मे हो, वह अपनी दृष्टि नीची कर लेते हैं।

द्रौपदी की दृष्टि कर्ण पर पडी। कर्ण को देखकर उसकी भावना बदल गई। वह सोचने लगी—यह कैसे धीर-वीर पुरुष है ! केवल अर्जुन ही इनके समान है। यदि

यह भी कुन्ती के पेट से जन्मे होते तो छठा पति करने मे भी मैं सकोच न करती। द्रौपदी के मन मे ऐसा विचार आया।

द्रौपदी का यह विचार योगविद्या द्वारा कृष्ण ने जान लिया। कृष्ण ने सोचा—द्रौपदी सती कहलाती है। उसके मन मे यह पाप आया, यह तो गजब हुआ! उसका यह पाप दूर करना चाहिए। ऐसा न किया तो ससार डूब जायगा। इस प्रकार विचार करके कृष्ण विना वुलाये ही पाण्डवो के यहा पहुंचे। कृष्ण का खूब स्वागत किया गया, सत्कार किया गया। पाण्डव उन्हे महल मे ले जाने लगे। कृष्ण ने कहा—आज मैं महल मे जाने के लिए नही आया हू। मेरी इच्छा यह है कि तुम पाचों पाण्डवो और द्रौपदी के साथ वन-क्रीड़ा के लिये चला जाय। वही भोजन आदि करें। भला कृष्ण की वात कौन टालता! पाण्डव और द्रौपदी, कृष्ण के साथ वन को रवाना हुए।

कृष्ण सव को साथ लिए हुए किसी ऋषि के आश्रम के वन में गये। वह वन खूब फला-फूला था। जब सव लोग वन मे घुसने लगे तो कृष्ण ने कहा—देखो, यह तपोवन है। इस मे से कोई फल मत तोडना। सव ने कृष्ण की वात स्वीकार की।

सव लोग वन के भीतर चले। भीम शरीर से कुछ भारी थे। सव लोग आगे चले गये और वह कुछ पीछे रह गये। जाते-जाते जामुन का एक पेड़ आया। उसमे पूरे पके हुए वडे-वड़े जामुन लगे थे। वह फल देखकर भीम अपनी लालसा न रोक सके। भीम ने सोचा—हम राजा है।

पृथ्वी पर हमारा अधिकार है। एक फल तोडकर खा लें तो क्या हर्ज है ? अभी कोई देखता भी नही है। इस प्रकार विचार करके भीम ने एक जामुन तोड लिया। भीम ने फल तोडा ही था, अभी मुंह मे रख भी नही पाये थे कि कृष्ण भीम की ओर लौटकर इस तरह देखने लगे, मानो साक्षात् ही भगवान खडे हैं। कृष्ण ने भीम से कहा— भीम, तुमने यह क्या किया ?

भीम बहुत लज्जित हुए। लज्जा के मारे वह कापने लगे। कृष्ण ने कहा—माना कि तुम राजा हो, तब भी तुम्हे मेरी आज्ञा का ध्यान रखना चाहिए था।

भीम वडे शर्मिन्दा हुए। अन्त मे उनसे यही कहते वना—मुझ से अपराध बन गया। क्षमा कीजिए।

कृष्ण वोले—क्षमा करने से काम नही चलेगा। तप की शक्ति लगाकर इस फल को जहां-का-तहा लगाओ।

कृष्ण की यह अद्भुत आज्ञा सुनकर भीम संकट मे पड गये। तब कृष्ण ने कहा—क्या धर्म मे शक्ति नही है ? या धर्म की शक्ति पर तुम्हे विश्वास नही है ?

भीम से यह कहकर कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा— धर्मराज, तुम भीम द्वारा उपार्जित द्रव्य का उपभोग करते हो तो इनके पाप मे भी भाग लो और प्रायश्चित्त करो।

युधिष्ठिर अजातशत्रु थे। अन्होने कहा—वास्तव मे भीम ने जो गलती की है, उसे मैं भी गलती मानता हू। इसे मिटाने के लिए आप जो कहे, करने के लिए मै तैयार हू। बस, आज्ञा दीजिए।

कृष्ण ने कहा—तुम यह कहो कि अगर मैं कभी

झूठ न बोला होऊ तो हे फल, तू जहा-का-तहा लग जा ।

कृष्ण की बात मानकर युधिष्ठिर ने कहा—हे फल, अगर मैं कभी झूठ न बोला होऊ तो जहा-का-तहा लग जा ।

युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर फल वृक्ष की ओर चढ़ने लगा । उसे बीच में ही रोककर कृष्ण ने कहा—बस, धर्म-राज । तुम्हारी परीक्षा हो गई । अब भीम आओ, परीक्षा दो ।

भीम रोने जैसा होकर कहने लगे—मैंने तो इसे तोड़ा ही है । मैं क्या परीक्षा दू ! मेरे कहने पर यह कब चढने लगा ! तब कृष्ण ने कहा—यह तो प्रत्यक्ष ही है । इस पाप के सिवाय और कोई पाप न किया हो तो फल को आज्ञा दो । तब भीम ने कहा—हे फल, इस पाप के सिवाय मैंने अन्य पाप न किया हो तो तू ऊपर चढ । फल ऊपर चढने लगा । तब कृष्ण ने उसे रोक दिया ।

कृष्ण ने इसी प्रकार अर्जुन, नकुल और सहदेव की भी परीक्षा ली । जब पाचो भाइयो की परीक्षा हो चुकी, तब कृष्ण ने द्रौपदी से कहा- भाभी, अब तुम आओ ।

द्रौपदी सिटपिटाई । उसने सोचा—मुझमे कर्ण को पति रूप मे चाहने का पाप है । न जाने इस परीक्षा का परिणाम क्या होगा ? फिर उसने विचार किया—उस पाप को कौन जानता है ? उसने भी सबके समान उस फल से कहा—अगर मैंने पाण्डवो के अतिरिक्त, मन से भी किसी को पति रूप मे न चाहाता हो तो तू गति करके डाली मे लग जा ।

द्रौपदी के इतना कहते ही फल पृथ्वी पर आ गिरा!

कृष्ण भाभी से कहने लगे—वाह ! भाभी वाह ! तुमने यह क्या किया ? तुम्हारे जैसी पतिव्रता मे यह पाप कैसे ? तुमने तो और पति की कमाई भी खो दी !

द्रौपदी लज्जा के मारे काप उठी । वह सोचने लगी— पृथ्वी फट जा और मैं तुझ में समा जाऊ । वह रोने लगी । कृष्ण ने कहा—रोने से कुछ न होगा । जो पाप हो उसे प्रकट करो । द्रौपदी रोती हुई कहने लगी—मैंने और कभी कोई पाप नही किया लेकिन एक दिन मैं नहाने गई थी । सयोगवश कर्ण उधर आ गये । उन्हे देखकर मुझे विचार आया—अगर यह छठे पाण्डव होते तो इन्हे भी मैं अपना पति बना लेती ।

इस प्रकार द्रौपदी ने बालक के समान सरल भाव से अपना पाप प्रकट कर दिया । तब कृष्ण ने कहा—अब घबराने की आवश्यकता नही है । सच्चे हृदय से आलोचना कर लेने पर फिर पाप नही रह जाता । जिस मन से पाप होता है, उस मन से वह पाप कट भी जाता है । इसलिए अब चिन्ता न करके फल की आज्ञा दो ।

द्रौपदी ने अप्रतिम स्वर मे कहा—अब क्या आज्ञा दू ? मेरा धर्म तो चला गया । कृष्ण बोले—धर्म सदा के लिए रूठ नही जाता है, वरन् गया धर्म वापस भी आ जाता है । इसलिए तुम फल को आज्ञा दो । द्रौपदी ने फल को आज्ञा देते हुए कहा—इस पाप के सिवा मैंने अन्य कोई पाप न किया हो तो, हे फल ! तू चढ और डाल में लग जा ।

द्रौपदी के यह कहने पर फल डाली मे लग गया ।

कृष्ण ने कहा—बस, मेरा प्रयोजन पूरा हुआ । मैं इसी पाप को निकालने आया था । अगर यह पाप रहता तो गजब हो जाता । द्रौपदी पतिव्रता कहलाती है । पतिव्रता में इतना भी पाप रहना ठीक नही है ।

## ५४ : अभिमानी योद्धा

भली-भाति विचार-विमर्श करने के पश्चात् श्रीकृष्ण पाण्डवो की ओर से सधि कराने के लिए दुर्योधन के पास गये थे। मगर सधि नही हुई। दुर्योधन दुराग्रही था। उसने साफ-साफ कह दिया कि युद्ध के बिना मैं सुई की नोक बराबर भूमि भी नही दूंगा।

यह सुनकर कृष्ण सोचने लगे—अब युद्ध अनिवार्य हो गया है! यद्यपि इस युद्ध से अनेक हानिया होगी और युद्ध न होने देने के लिए ही मैंने प्रयत्न भी किया है, पर दुष्ट कौरव अन्याय करने पर तुले हुए हैं, अतएव युद्ध अब करना ही पडेगा।

जब पाडवों को यह बात मालूम हुई तो वे रण की तैयारी करने लगे। कृष्णवती नदी के किनारे पर पांडवो ने अपनी सेना एकत्र करना आरम्भ कर दिया। उन्होने सैनिक ढंग से अपना शिविर बनाया। बीचो-बीच कृष्ण का तम्बू लगा हुआ था। उसके आस-पास पाचो पाडवो के डेरे लगे थे और वही द्रौपदी का भी डेरा लगा हुआ था। द्रौपदी कार्य करने मे तो पुरुषों से आगे नही बढती थी मगर अपने विचार प्रस्तुत करने मे सब से आगे रहती थी।

वह बहुत उग्र विचार की थी और उसकी वाणी में बहुत ओज भरा रहता था । इसी कारण उसका तम्बू वहां लगाया गया था । शिविर मे सेनापति धृष्टद्युम्न, राजा द्रुपद-विराट आदि के डेरे भी ढग से लगे हुए थे । पाडव सब की यथोचित व्यवस्था करते थे । उन्होने सब राजाओ के पास युद्ध का निमन्त्रण भेजा था और उसमे स्पष्ट लिख दिया था कि जिसकी इच्छा हो—जो अन्याय के प्रतिकार मे सहायक बनना चाहता हो, वह हमारी ओर से युद्ध मे सम्मिलित हो जाय । कौरवो ने भी राजाओं को आमन्त्रण भेजा था । अतएव कई राजा पाडवो की ओर सम्मिलित हुए और कई कौरवो की ओर ।

कुन्दनपुर के राजा भीम पुत्र रुक्म ने आमन्त्रण पाकर सोचा—युद्ध का आमन्त्रण आया है, अतएव सम्मिलित होना तो आवश्यक ही है । इस अवसर पर घर में बैठा तो रह नही सकता । परन्तु प्रश्न यह है कि किस ओर जाना चाहिये ?

रुक्म ने सोचा—युधिष्ठिर का पक्ष बलवान है और न्याय भी उसी ओर है । अत युधिष्ठिर के पक्ष मे ही युद्ध करना चाहिए । लेकिन बहिन के विवाह के समय कृष्ण ने मेरा जो अपमान किया था, वह अब तक मेरे हृदय में काटे की तरह चुभ रहा है । इस युद्ध मे उस अपमान का बदला लेना चाहिए । कठिनाई यह है कि कृष्ण स्वयं युद्ध नही करेगे । ऐसी स्थिति मे उन से बदला कैसे ले सकता हूँ ? मगर उनके मित्र का अपमान करके मै अपने अपमान की भरपाई कर लू गा । इस प्रकार विचार कर और

अपनी विशाल सेना को साथ लेकर रुक्म रवाना हुआ। युधिष्ठिर ने उसका स्वागत किया।

रुक्म ने पूछा—आप सब आनन्द मे है न ?

युधिष्ठिर—वैसे तो आनन्द-ही-आनन्द है परन्तु आपके आगमन से विशेष आनन्द हुआ।

रुक्म—अगर ऐसे समय पर भी मैं न आता तो मेरी वीरता को कलक लगता। दुर्योधन का अत्याचार और आपका सौजन्य जगत मे प्रसिद्ध हो चुका है। ऐसा होते हुए भी अगर मैं अपने घर मे बैठा रहता और आपका आमन्त्रण पाकर भी न आता तो मेरा क्षत्रियत्व कलकित हो जाता।

युधिष्ठिर—आपके विचार उच्च और आपका हमारे प्रति प्रेम है। इसी कारण आप आये है।

रुक्म—मैं क्षात्र-धर्म का पालन करने आया हू। न्याय की रक्षा करना ही क्षत्रियो का धर्म है। क्षतात्-नाशात् त्रायते-इति क्षत्रिय। जो धर्म की रक्षा करता है वही वास्तव मे क्षत्रिय। ऐसे प्रसग पर मैं न आता तो मेरी माता को भी कलंक लगता।

युधिष्ठिर—आपका कहना यथार्थ है। आपको ऐसा ही विचार रखना चाहिए।

युधिष्ठिर ने सहदेव को बुलाकर कहा—देखो, यह रुक्म आये है। तुम इनका सत्कार करो और इनके साथ जो सेना है उसका भी उचित सत्कार करो।

यह सुनकर रुक्म ने कहा—मैं आया तो हू पर स्वा-गत-सत्कार करने से पहले एक बात का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए ।

युधिष्ठिर—अगर कोई बात स्पष्टीकरण करने योग्य हो तो अवश्य ही उसका स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए ।

रुक्म—मेरे हाथ मे यह जो धनुष है, इसका नाम विजय है । ससार मे तीन ही धनुप है—सारंग, गाडीव और विजय । सारग कृष्ण के पास है और यह विजय मेरे पास हैं । इन तीन मे से सारग तो आपके काम नही आ सकता, क्योकि कृष्ण ने निरस्त्र रहने का निर्णय किया है । इस प्रकार अकेला गाडीव आपके पक्ष मे रह गया है । मगर गाडीव, इस विजय की समानता नही कर सकता । यह विजय धनुष अकेला ही सम्पूर्ण कौरव-सेना पर विजय प्राप्त कर सकता है । कौरवो पर विजय पाने के लिए आपमे से किसी को भी कष्ट नही उठाना पडेगा । इस विजय की सहायता से मैं अकेला ही आपको विजयी बना सकता हू । परन्तु एक वात का खुलासा हो जाना चाहिए । इसके लिए आप अर्जुन को वुलवाइये ।

रुक्म के कहने से युधिष्ठिर ने अर्जुन को बुलवाया । रुक्म ने अर्जुन से कहा—यदि आप मेरे कथनानुसार एक कार्य करे तो मै अपना समस्त बल आपको दे सकता हू ।

अर्जुन—पहिले कार्य बतलाइये तो समझकर उत्तर दूगा । बिना कार्य को समझे करने की हा नही भर सकता । कार्य सुनने के वाद ही किसी प्रकार की प्रतिज्ञा की जा सकती है ।

रुक्म—कार्य यही है कि तुम मेरे पैर पर हाथ रख कर यह कह दो कि मैं भयभीत हू और तुम्हारी शरण मे आया हू । मेरी रक्षा करो । बस, इतना करने से मेरा समस्त बल तुम्हारे पक्ष मे हो जायगा ।

भीम उस समय वही मौजूद थे । रुक्म की बात सुन कर भीम के नेत्र लाल हो गये । मगर युधिष्ठिर ने उसे रोककर रुक्म से कहा—आप अभी आये हैं, थोडी देर विश्राम कीजिये । इस सम्बन्ध मे फिर विचार करेंगे ।

रुक्म—ऐसा नही होगा । इसका निर्णय तो अभी हो जाना चाहिए । बोलो अर्जुन, तुम क्या कहते हो ?

अर्जुन – मुझे आश्चर्य है कि इस प्रकार का विचार आपके हृदय मे कैसे उत्पन्न हुआ ! मैंने कृष्ण के चरणो को हाथ लगाया है और मेरी यह प्रतिज्ञा है कि कृष्ण के सिवाय किसी दूसरे के चरण को हाथ नही लगाऊंगा । इसके अतिरिक्त आप मुझसे कहलाना चाहते हैं कि मैं भयभीत हूं । मगर मैं भयभीत कब हुआ हू ? जिस अर्जुन ने समस्त कौरव सेना को परास्त करके भी विजय का श्रेय उत्तर को दिया, वह अर्जुन भयभीत होकर आपकी शरण मे आवे, यह सभव नही है । इसके अतिरिक्त आपके लिए भी यह शोभनीय नही है कि आप स्वय किसी को शरण मे बुलावे । मैंने सिर्फ कृष्ण की शरण ली है । दूसरे किसी की शरण न ली है और ले ही सकता हू । आप आये हैं तो मित्र की भाति आनन्दपूर्वक रहिये, किन्तु यह आशा न रखिये कि अर्जुन आपकी शरण मे आएगा । फिर भी

अगर आप यह आशा नही त्याग सकते तो जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये ।

अर्जुन का स्पष्ट उत्तर सुनकर रुक्म क्रुद्ध हो गया। वह कहने लगा—मै इतनी विशाल सेना लेकर तुम्हारी सहायता के लिए आया हूं, तुम इतने से शब्द भी नही कह सकते ! अगर तुम इतना कह दो तो एक घडी के छठे भाग मे ही मैं तुम्हे विजयी वना सकता हू और युधिष्ठिर के मस्तक पर राजमुकुट रखवा सकता हूं ।

ऐसे प्रसग पर आपसे सलाह ली जाती तो आप अर्जुन को क्या सलाह देते ? शायद आप यही सलाह देते कि ऐसे नाजुक मौके पर रुक्म के आगे नम्र हो जाना और रुक्म के अभीष्ट शब्द कह देना उचित है। रुक्म को किसी भी प्रकार से अपने पक्ष मे रखना चाहिए। मगर अर्जुन वीर था। रुक्म ने उससे भी कह दिया था कि मेरा कहना न मानोगे तो अपनी मृत्यु समीप ही समझ लेना। मैं अभी तुम्हारे शत्रु के पक्ष में मिल जाऊगा। रुक्म की इस प्रकार की धमकी सुनकर भी अर्जुन ने परवाह नही की। अर्जुन ने यही कहा—अगर आपकी इच्छा विरुद्ध-पक्ष में जाने की है तो प्रसन्नता के साथ जा सकते हैं। मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध आपको रोकता नही चाहता। लेकिन आपके सामने इस प्रकार की दीनता नही दिखा सकता। आप कौरव-पक्ष मे सम्मिलित होने की सोचते हैं मगर दुर्योधन आपसे अधिक बुद्धिमान् है। वह आप के चाहे हुए शब्द कदापि नही कह सकता।

रुक्म—दुर्योधन को भी मेरे कहे हुए शब्द कहने पड़ेंगे।

वह नही कहेगा तो मैं उसके पक्ष मे भी सम्मिलित नहीं होऊंगा ।

अर्जुन—यह तो आप की इच्छा पर निर्भर है। मगर इस प्रकार के शब्द कहने वाला कोई नही है ।

रुक्म पाण्डवो की छावनी से अपनी विशाल सेना के साथ चला गया और देखते-देखते कौरवो के शिविर मे जा पहुचा। अर्जुन सोच रहा था—ऐसा अभिमानी व्यक्ति कदापि विजय नही दिला सकता । विजय धनुष ने उसे जीत लिया है । फिर भी उसका अहकार ससार मे ही नही समाता ! हमारे पक्ष मे भले ही थोडे योद्धा हो, अगर वे उच्च श्रेणी के होगे तो हमारी ही विजय होगी। इस प्रकार के लोगो की भर्ती करना वृथा है । धर्म के साथ व्यवहार करने वाले थोडे व्यक्ति भी पर्याप्त हैं । धर्म को हार जाने वाले बहुत व्यक्ति भी व्यर्थ है, यही नही बल्कि हानिकारक भी है ।

भीष्म कहने लगे—बेटा युधिष्ठिर ! तुम किसी प्रकार का खेद मत करो। अलबत्ता यह सोचो कि विजय के लिए तुम्हे जो सहायता मिली, वह किस प्रकार मिली है ? दुर्योधन के पाप से ही तुम्हे वह सहायता मिली थी। दुर्योधन का पाप फूट निकला था और इस कारण लोग समझने लगे थे कि दुर्योधन बडा पापी है, जो धर्मनिष्ठ पाण्डवों को इस प्रकार कष्ट दे रहा है। यह सोचकर लोग स्वयं ही अपना सिर कटाने के लिये तैयार होकर तुम्हारी सहायता के लिये आये थे। इस प्रकार दुर्योधन के पाप से ही तुम्हे सहायता मिली थी। इसी से तुम विजयी हुए हो। दुर्योधन का पाप तुम्हारी विजय और उसके विनाश का कारण बना है। ऐसी दशा मे तुम्हे किसी प्रकार का खेद नही करना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, यह तो ठीक है। लेकिन युद्ध के कारण जो वैर बंध गया है, वह तो मेरे सिर पर ही रहा न।

भीष्म पितामह—ठीक है, पर इस वैर को तुम अपनी विशिष्ट वृत्ति के द्वारा शान्त कर डालो। ऐसा करोगे तभी तो तुम राजा हो।

युधिष्ठिर—पितामह, इसीलिए मैं आपके पास आया हू। इस सम्बन्ध मे आप मुझे उचित उपदेश दीजिए।

भीष्म—ससार मे ऐसी कोई आग नही है जो सुलगे और बुझे नही। इसी प्रकार जब वैर बधता है तो मिट भी सकता है। लेकिन दूसरे के वैर को शान्त करने के लिए पहले अपने हृदय को शान्त करना चाहिए। उदाहरणार्थ—

किसी राजा ने तुम्हारी सेना को या तुम्हारे किसी सम्बन्धी को मारा होगा परन्तु उसकी स्त्री या उसके बालको ने तो तुम्हारा कुछ नही बिगाडा है ! अतएव जहां तक संभव हो, उनकी ऐसी सहायता करना जिससे वे समझने लगें कि युधिष्ठिर हमे सुखी बनाने के लिए युद्ध मे प्रवृत्त हुआ था । जब तुम उनके हृदय मे ऐसी भावना उत्पन्न कर दोगे तो वैर का शमन आप ही हो जायगा । बधा हुआ वैर रोने से नही मिट सकता । अगर रोना था तो युद्ध करने से पहले ही रोना था । जब युद्ध आरम्भ होकर समाप्त भी हो गया और अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार हो चुका, तब रोने से क्या लाभ ? अब रोना त्यागो और सब को शान्ति पहुंचाओ ।

तुम कहते हो जिस भूमि पर वीर-ही-वीर दिखाई देते थे, आज वह सुनसान दिखाई देती है । लेकिन इस विचार से दु.खी होने की क्या आवश्यकता है ? बीज शून्य भूमि मे बोया जाता है । उस भूमि मे नही बोया जाता जहा काटे और झाड़-झखाड खड़े हों । जब काटे साफ हो गये और बीज बोने का समय आया है, तब तुम रोने बैठे हो ! रोना छोड कर इस शून्य भूमि मे ऐसा बीज बोओ कि लोग दुर्योधन को भूल जाए । विचार करो, लोग दुर्योधन को बुरा क्यो कहते थे ? इसी कारण कि वह स्वार्थी था और उसकी सज्जनता एवं नम्रता को सत्ता खा गई थी । अगर तुमने भी अपनी सज्जनता को सत्ता का ग्रास बन जाने दिया तो तुम मे और दुर्योधन में क्या अन्तर रहा ? बल्कि तुम जिस धर्म का प्रदर्शन करते हो, वह ढोंग-मात्र रह जायगा और इस प्रकार तुम दुर्योधन से भी ज्यादा बुरे

# ५५ : प्रायश्चित्त

महाभारत युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर भीष्म के पास गये । भीष्म ने उनसे कहा— महाराज युधिष्ठिर ! आइए ।

युधिष्ठिर शर्मिन्दा होकर बोले—आप मुझे महाराज न कहिए, पौत्र ही कहिए ।

भीष्म—जिस पद को प्राप्त करने के लिए अठारह अक्षौहिनी सेना का सहार हुआ है, जिस पद के लिए अनगिनती स्त्रिया विधवा हुई है और अनेक वालक अनाथ हो गये है तथा जिस पद के लिए कुल का सहार हुआ है, वह पद प्राप्त करने के पश्चात् आपको महाराज क्यो न कहा जाय?

युधिष्ठिर—पितामह, मैं इस पाप के दवाव से ही आपके पास आया हू । मुझे जो राजमुकुट प्राप्त हुआ है, उसमे शूल–ही–शूल जान पडते है । वह मुझे ऐसा चुभता है जैसे शूलो का वना हुआ हो । मैंने महल की अटारी पर चढकर देखा तो राजमुकुट और भी अधिक सुइयो से भरा हुआ जान पडा । जो मेदिनी वीरो से भरी पड़ी थी, आज वह सुन–सान दीख पडती है । यह देखकर सिर का मुकुट हृदय मे शूल–सा चुभने लगा । मैं यही सोच रहा हू कि

इस मुकुट के पाने के लिए कितना पाप हुआ है और कितना पाप करना पडा है ?

युधिष्ठिर के कथन पर से आप अपने सम्बन्ध मे विचार कीजिए। आपके सिर पर जो पगडी है उसके लिए किस-किस तरह के पाप होते हैं ? अपने शरीर का रक्त-मांस बढाने के लिए दूसरो को किस प्रकार के दु ख दिये जाते हैं ?

युधिष्ठिर का कथन सुनकर भीष्म पितामह ने सोचा —युधिष्ठिर घबरा गया है। इस समय इसे धैर्य देने की आवश्यकता है। इसका चित्त इतना कोमल हैं और धर्म भावना का विचार होने पर यह राजमहल त्याग देगा। इस प्रकार विचार कर पितामह ने कहा—अगर तुम महाराज युधिष्ठिर कहे जाने मे सकोच करते हो तो अब से मैं बेटा युधिष्ठिर कहूगा ।

भीष्म पितामह के मु ह से अपने लिए बेटा शब्द सुनकर युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वह बालक की तरह नम्र होकर पितामह के समीप जा बैठे। इसके अनन्तर उनका हाथ अपने सिर पर रखकर कहने लगे—पितामह, राज-मुकुट मुझे तो शूल की तरह चुभ रहा है। कृपा कर मुझे ऐसा उपदेश दीजिए, जिससे मै शान्ति-लाभ कर सकू ।

भीष्म धर्मशास्त्र के ज्ञाता थे। जैनशास्त्र भी यही कहते है और महाभारत भी। वे पूर्ण ब्रह्मचारी के रूप मे प्रसिद्ध हैं। जैनशास्त्र के अनुसार भी उन्होने अविवाहित जीवन ही बिताया था। अतएव वे सारे जगत् के पितामह बनने के योग्य ही थे।

भीष्म कहने लगे—बेटा युधिष्ठिर ! तुम किसी प्रकार का खेद मत करो। अलबत्ता यह सोचो कि विजय के लिए तुम्हे जो सहायता मिली, वह किस प्रकार मिली है ? दुर्योधन के पाप से ही तुम्हे वह सहायता मिली थी। दुर्योधन का पाप फूट निकला था और इस कारण लोग समझने लगे थे कि दुर्योधन बडा पापी है, जो धर्मनिष्ठ पाण्डवो को इस प्रकार कष्ट दे रहा है। यह सोचकर लोग स्वयं ही अपना सिर कटाने के लिये तैयार होकर तुम्हारी सहायता के लिये आये थे। इस प्रकार दुर्योधन के पाप से ही तुम्हे सहायता मिली थी। इसी से तुम विजयी हुए हो। दुर्योधन का पाप तुम्हारी विजय और उसके विनाश का कारण बना है। ऐसी दशा मे तुम्हे किसी प्रकार का खेद नही करना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, यह तो ठीक है। लेकिन युद्ध के कारण जो वैर बध गया है, वह तो मेरे सिर पर ही रहा न।

भीष्म पितामह—ठीक है, पर इस वैर को तुम अपनी विशिष्ट वृत्ति के द्वारा शान्त कर डालो। ऐसा करोगे तभी तो तुम राजा हो।

युधिष्ठिर—पितामह, इसीलिए मैं आपके पास आया हू। इस सम्बन्ध मे आप मुझे उचित उपदेश दीजिए।

भीष्म—ससार मे ऐसी कोई आग नही है जो सुलगे और बुझे नही। इसी प्रकार जब वैर बंधता है तो मिट भी सकता है। लेकिन दूसरे के वैर को शान्त करने के लिए पहले अपने हृदय को शान्त करना चाहिए। उदाहरणार्थ—

किसी राजा ने तुम्हारी सेना को या तुम्हारे किसी सम्बन्धी को मारा होगा परन्तु उसकी स्त्री या उसके बालको ने तो तुम्हारा कुछ नही बिगाडा है ! अतएव जहां तक संभव हो, उनकी ऐसी सहायता करना जिससे वे समझने लगें कि युधिष्ठिर हमे सुखी बनाने के लिए युद्ध मे प्रवृत्त हुआ था । जब तुम उनके हृदय मे ऐसी भावना उत्पन्न कर दोगे तो वैर का शमन आप ही हो जायगा । बधा हुआ वैर रोने से नही मिट सकता । अगर रोना था तो युद्ध करने से पहले ही रोना था । जब युद्ध आरम्भ होकर समाप्त भी हो गया और अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार हो चुका, तब रोने से क्या लाभ ? अब रोना त्यागो और सब को शान्ति पहुचाओ ।

तुम कहते हो जिस भूमि पर वीर–ही–वीर दिखाई देते थे, आज वह सुनसान दिखाई देती है । लेकिन इस विचार से दु.खी होने की क्या आवश्यकता है ? बीज शून्य भूमि मे बोया जाता है । उस भूमि मे नही बोया जाता जहा कांटे और झाड-झखाड खड़े हो । जब काटे साफ हो गये और बीज बोने का समय आया है, तब तुम रोने बैठे हो ! रोना छोड कर इस शून्य भूमि मे ऐसा बीज बोओ कि लोग दुर्योधन को भूल जाए । विचार करो, लोग दुर्योधन को बुरा क्यो कहते थे ? इसी कारण कि वह स्वार्थी था और उसकी सज्जनता एव नम्रता को सत्ता खा गई थी । अगर तुमने भी अपनी सज्जनता को सत्ता का ग्रास बन जाने दिया तो तुम मे और दुर्योधन में क्या अन्तर रहा ? बल्कि तुम जिस धर्म का प्रदर्शन करते हो, वह ढोग–मात्र रह जायगा और इस प्रकार तुम दुर्योधन से भी ज्यादा बुरे

जाओगे । अतएव सत्ता मिलने पर सज्जनता को मत भूलना ।

राम को राज्य मिलने की तैयारी थी लेकिन पिता का सत्य जाने लगा । तब राम ने सोचा—जिस राज्य से पिता का सत्य जाता है, उस राज्य को लात मारना ही उचित है ।

# ५६ : धीरज

महाभारत के अनुसार जब पाण्डवो को वनवास दिया गया था और द्रौपदी को नग्न करने का प्रयास किया गया था, उस समय कृष्ण द्वारिका मे नही थे। वे कही बाहर गये हुए थे। कृष्ण जब लौट कर द्वारिका पहुचे तो वहां के वृद्ध जन रोकर कहने लगे—पाण्डवो पर बड़ी कडी मुसीबत आ पड़ी है और वे वनवास भोग रहे है। सरल-हृदय पाण्डव ऐसी विपदा मे हैं कि कुछ नही कहा जा सकता। वे वीर हैं और सज्जन हैं। लेकिन दुष्ट कौरवो ने उन पर भीषण अत्याचार किया है। यहां तक कि द्रौपदी को भरी सभा मे नग्न करने का भी उन्होने प्रयत्न किया! भले ही उनका प्रयत्न सफल नही हुआ, फिर भी इससे उनकी दुर्भावना कम नही हो सकती। पाण्डवो को वनवास स्वीकार करना पडा है।

कृष्ण ने पांडवो के वन जाने का समाचार सुनकर पूछा—पाण्डवो का ऐसा क्या अपराध था, जिसके कारण उन्हे वन जाना पडा और द्रौपदी की दुर्गति हुई? वृद्ध जनो ने उत्तर दिया—अन्याय के सामने अपराध होने या न होने का प्रश्न ही कहा उठता है? जिसे अन्याय करना है, अपना स्वार्थ साधना है, वह यह कब देखता है कि इसने

अन्याय किया है या नही किया है ?

कृष्ण ने पूछा—इस समय वे कहा है ?

वृद्ध जन—वन मे वनवासी लोगो की तरह भटकते फिरते है ।

यह कथन सुनकर कृष्णजी मुस्कराये । वृद्ध जनो की समझ मे नही आया कि कृष्णजी दुःखी होने के वदले मुस्कराते क्यो है ? उन्होने कहा—क्या कारण है कि आप पाण्डवो की दुर्दशा की कथा सुनकर मुस्करा रहे है ?

कृष्ण—मेरी मुस्कराहट का कारण आप लोग नही जानते । मगर समय आने पर आप जान जाएगे । इस समय मैं पाण्डवो से मिलना चाहता हू । सुख के समय चाहे न भी मिलता लेकिन दुःख के समय मिलना ही चाहिए ।

कृष्ण रथ पर सवार हो कर पाण्डव-वन गये । वहा द्रौपदी सहित पाण्डव पर्णकुटी वना कर रहते थे । कृष्ण पहुचे । पाण्डवो के पास उस समय स्वागत के योग्य कोई विशिष्ट सामग्री नही थी, तथापि स्नेह और श्रद्धा से परि-पूर्ण हृदय उनके पास था और उदार आशय वाले पुरुपो के लिए यही पर्याप्त होता है । विवेकशील पुरुष द्रव्य की अपेक्षा भाव को ही प्रधानता देते है । कृष्णजी प्रेम के साथ विछाई गई चटाई पर आसीन हुए । कृष्णजी के वैठ जाने पर आसपास पाण्डव भी बैठ गये और तनिक दूर द्रौपदी भी बैठी ।

कृष्णजी बड़े कुशल थे । उन्होने पांडवो और द्रौपदी के चेहरो पर एक उडती निगाह डाली और समझ गये कि द्रौपदी की दृष्टि मे उग्रता है । यह देखकर उन्होने सर्व प्रथम द्रौपदी से ही प्रश्न किया—कृष्णा ! आनन्द मे तो हो ?

द्रौपदी राजकुमारी थी। बाल्यकाल से ही वह सुखों मे रही और उसने कभी नही जाना था कि दु ख किस चिड़िया का नाम है! वह राजसी भोग भोगती थी और राजसी भोजन मे भी रुचि रखती थी। मगर दुर्योधन के प्रपच मे पड कर इन दिनो वह वहुत परेशान हो उठी थी। आज वह नगर छोड़ कर जगल मे और महल छोडकर झोपडी मे रहती है। षट्रस व्यञ्जन के बदले उसे जंगल के फल-फूलों पर निर्वाह करना पडता है। आज उसे किसी भी प्रकार की सुख–सुविधा नही है। उसे लगता है मानो उसके जीते जी ही जीवन बदल गया है। यह सब जानते हुए भी कृष्णजी उससे पूछ रहे है—आनन्द मे तो हो? आखिर इस प्रश्न का रहस्य क्या हैं? इन रहस्य का पता उन्ही से लग सकता है।

प्रश्न के उत्तर मे द्रौपदी कहने लगी — कृष्णजी! आपने मुझे अपनी वहिन बनाया है लेकिन आपकी इस वहिन की आजकल क्या दशा हो रही है, यह तो आप प्रत्यक्ष देख रहे है। आपकी बहिन की जैसी दुर्दशा हुई है, वैसी शायद किसी की न हुई होगी। दुष्ट कौरवो ने मेरी यह दशा की है कि कहा नही जा सकता। भरी सभा मे लाज छीन लेनी चाही। वे मुझे नग्न करना चाहते थे, मगर न जाने किस अदृश्य शक्ति ने मेरी रक्षा की। मैं सर्वथा निर्दोष थी और हू। फिर भी पापी दु शासन मुझे महल में से सभा मे खीच लाया। उसने मेरे सिर के केश पकडकर खीचे हैं और इस प्रकार मेरे केशो को मलिन कर दिया है। राजसभा मे साधारण कुल की स्त्री भी नही वुलाई जाती और केश तो किसी के खीचे ही नही जाते। मगर आपकी

वहिन के साथ यह सब दुर्व्यवहार किया गया। मैने सभा मे प्रश्न किया था—आप सभा मे उपस्थित गुरुजन मेरे लिए पूज्य है। इसलिए मै आपसे पूछती हू कि धर्मराज पहले अपने आप को हारे हैं या पहले मुझे हारे ? अगर वे पहले मुझे हार गये हो तब तो कुछ कहने की गुजाइश ही नही रहती। अगर ऐसा नही है तो मेरे साथ यह अन्याय क्यो किया जाता है ? सभा मे उपस्थित लोगो को भली-भांति मालूम था कि धर्मराज पहले अपने को हार चुके थे, फिर भी किसी ने मेरे प्रश्न का उत्तर नही दिया। सब के सब सोठ होकर वैठे रहे, मानो सब की जीभ पर ताला लगा हो। किसी ने मुंह खोलने का साहस नही किया। अलबत्ता एक वीर युवक उस समय अवश्य बोला था, मगर उसे कौरवो ने सभा से बाहर निकाल दिया था।

मेरे प्रश्न को सुनकर दुर्योधन कुछ देर के लिए हत-प्रभ हो गया था। वह न्याययुक्त तरीके से उसका प्रतिकार करने मे असमर्थ था। अतएव वह और भी क्रुद्ध हो गया और दु.शासन से कहने लगा—इस कानून बघारने वाली का मुख बन्द करदे ! अब आप बतलाइए, किसी का इस प्रकार बलात् मुख बन्द कर देना क्या उचित कहा जा सकता है ? दु.शासन मेरा वस्त्र खीचने लगा। मैंने वहां उपस्थित सब लोगो से उस भयंकर अन्याय को रोकने की प्रार्थना की मगर किसी के कान पर जूं न रंगी। सभी कानो में तेल डाले, प्रतिमा की तरह चुपचाप बैठे रहे।

अन्याय, अत्याचार और उपेक्षा का यह दृश्य देखकर मुझे बडी निराशा हुई। तब मैंने विचार किया—दूसरे लोग

चुप है तो रहे, ये पाचो भाई क्या कम है ? इन्हे तो आवेश आयेगा ही। यह सोच कर मैंने अत्यन्त करुण शब्दो मे इन सब से कहा—यह मेरी नही, तुम्हारी लाज जा रही है। इस कारण मेरी रक्षा करो। मेरी करुण पुकार सुन कर भीम और अर्जुन उठे भी, मगर धर्मराज ने बाह पकड कर दोनो को फिर बैठा दिया। तब मैंने सोचा—वास्तव मे कोई किसी का नही है।

हे कृष्ण ! मैं सोचती हू आप वहा होते तो मेरी रक्षा अवश्य करते। परन्तु दुर्दैव से आप वहा मौजूद नही थे। अतएव परमात्मा का स्मरण करके कहा—प्रभो, मै तेरी शरण हूं। इस प्रकार मन-ही-मन प्रार्थना करके मैंने अपना मन परमात्मा मे लगा दिया। उस समय शरीर पर से भी मेने ममता हटा ली। मैं अपनी शक्तिभर प्रयत्न कर चुकी थी। पितामह जैसे आदर्श पुरुष भी वहा मौजूद थे और पतिदेव भी चुपचाप बैठे थे। तब अकेली मैं क्या कर सकती थी ? इस प्रकार सोचकर मैने शरीर का ममत्व त्याग दिया। शरीर पर से ममत्व त्याग देने के पश्चात् क्या हुआ, यह मुझे मालूम नही लेकिन मैंने सुना है कि उस समय मेरे शरीर के वस्त्र इतने बढ गये थे कि दु शासन खीचते-खीचते थक गया था, वह मुझे नग्न कर नही कर सका। साथ ही सभा मे वहुत क्राति हुई। उस समय मैंने अन्धराज को यह कहते सुना—हे कुलवधू ! क्षमा करो। यह आवाज सुनकर मैं अपने आपे मे आई। उस समय मैने देखा कि सभा मे केवल धृतराष्ट्र ही हैं, और कोई नही है। वे कह रहे हैं—हे कुल वधू ! मेरे पापी पुत्रो को क्षमा करो। मैं तुम से क्षमा

मागता हूं । मैंने उनसे कहा—आप मेरे पूज्य हैं । मैं ही आपसे क्षमा मागती हू ।

इतना कह कर द्रौपदी ने एक लम्वी सांस ली । फिर उसने कहा–हे भाई ! मेरे लिए वह समय कितने कष्ट का था ! मुझे कितना कष्ट सहन करना पडा, किस प्रकार घोर अपमान सहना पड़ा है ! क्या यह आपके लिए भी लज्जा की वात नही है ?

द्रौपदी की यह वात सुन कर कृष्ण हंस पडे । द्रौपदी के विषाद का पार न रहा । वह समझती थी कि मेरी कष्ट कथा सुनकर कृष्णजी सहानुभूति प्रकट करेगे और दु.ख के आंसू वहाएंगे । मगर कृष्णजी की हंसी ने उसकी धारणा को नष्ट कर दिया । वह तिलमिला उठी । वोली—मेरे दारुण दु ख की कहानी क्या आपने मनोरंजन के लिए ही सुनी है ?

कृष्ण ने कहा—बहिन ! तुझे नही मालूम कि मै क्यो हसा हूं । तुझे यह भी पता नही कि इतने कष्ट आने का कारण क्या है ।

द्रौपदी–क्या इसमे भी कोई रहस्य है ?

कृष्ण—हा ।

इसके वाद कृष्ण वोले—किसी साधारण स्त्री को कष्ट हो और वह रोवे तो उसका रोना अनुचित नही कहा जा सकता । मगर तुम्हारा रोना उचित नही है । तुम्हे विचार करना चाहिए कि तुम्हारे कष्टो का कारण क्या है ? तुम जैसी महिला को भी कष्ट न हो और तुम्हारे सरीखी

महिला अगर उन कष्टो को सहन कर न कर ले तो जगत् का उद्धार कैसे हो सकता ? लोग अक्सर दु.ख आ पडने पर घबरा जाते है मगर यह नही सोचते कि इनके पीछे क्या रहस्य छिपा हुआ है ? दुःखो के पीछे रहे हुए रहस्य का विचार करके मनुष्य को धैर्य रखना चाहिए। तुम दु खो से घबरा रही हो, मगर दु ख ही तो सुख का बीज है। तुम्हारे इन दु खो मे ही जगत् का कल्याण छिपा है। तुम अपना दु ख देखती हो किन्तु उसके भीतर छिपा कल्याण नही देखती। दुर्योधन पर मुझे किसी प्रकार कोप नही है। मैं सिर्फ यह कहता हू कि वह मदोन्मत्त है। उसके पापों का घडा तुम्हारे साथ घोर अन्याय करने से भर गया है ! वह तलवार के बल पर सबके ऊपर शासन करना चाहता है। अगर दुर्योधन सब के हृदय मे बैठना चाहता तो कोई झंझट न होता। इस स्थिति मे उसका व्यवहार इससे उलटा ही होता। मगर वह हृदय मे नही बैठना चाहता—सिर पर सवार होना चाहता है। उसके द्वारा तुम्हें कष्ट क्यों सहन करने पड़े और धर्मराज ने तुम्हे इन कष्टो से क्यो नही बचाया, यह तुम नही जानती। इसी कारण तुम दु ख मना रही हो। उस समय मैं वहां नही था। कदाचित् होता भी तो चुप-चाप धर्मराज के पास बैठा रहता और तुम्हे कष्ट से बचाने का प्रयत्न न करता।

द्रौपदी—आह ! क्या आप भी मेरा घोर अपमान बैठे-बैठे देखते रहते ?

कृष्ण बहिन ! जिसे तुम अपमान कहती हो, उसे अगर मैं भी अपमान समझता तो हर्गिज चुपचाप सहन न

करता । तुम जानती नही हो इसी कारण उन घटनाओं को अपना अपमान समझती हो और दुःख मानती हो । जव रहस्य को जान जाओगी तो वे घटनाएं न अपमान जान पड़ेंगी और न उन के कारण दुःख ही मनाओगी ।

जव श्रीकृष्ण, द्रौपदी से इस प्रकार कह रहे थे, तव भीम ने वीच मे टोककर उनसे कहा—आपका कथन यथार्थ है पर अन्धे के उन कपूतो को उस समय जरा भी औचित्य का ध्यान नही रहा । क्या यह विचारणीय वात नही है ? उस घटना के लिए हम लोगो को लज्जित नही होना चाहिए ?

भीम की क्रोध से भरी वात को सुन कर श्रीकृष्ण उन की ओर मुड़े और कहने लगे—भीम, द्रौपदी की अपेक्षा तुम्हे समझाना कठिन है । तुम्हे अपने वल का अभिमान है और जिसे वल का अभिमान होता है उसे समझाना कठिन होता है । तुम जो कह रहे हो सो अपने स्वभाव के अनुसार कह रहे हो । पर यह तो सोचो कि दुर्योधन ने सव के सामने द्रौपदी को क्यो नग्न करना चाहा था ? इसका कारण यही था कि उसके पापों का घड़ा भर चुका था और अव उसका भंडा फोड़ होना लाजिम था । उसका पाप इतना वढ गया था कि वह प्रकट हुए विना रह ही नही सकता था । उसने पहले जो कुछ किया था, वह छिपकर और प्रकट मे हितैषी वनकर किया था । लेकिन इस कृत्य ने उसके पापो को प्रकट कर दिया है । अव सभी जान गये हैं कि दुर्योधन कितना अन्यायी और पापी है । द्रौपदी को नग्न करने की घटना को सुनकर कौरवो के शत्रुओ को तो घृणा हुई ही है, साथ मे

उनके मित्रो को भी कम घृणा नही हुई है। दुर्योधन के हितैषी भी उसके इस अपराध के कारण उस पर रुष्ट हो गये हैं। इस प्रकार उसका पाप चरम सीमा पर पहुंच गया है और उसकी स्थिति बहुत कमजोर हो गई है। इस घटना ने तुम्हारा महत्त्व बढाया है और कौरवो का पाप बढ़ाया है। लाखो उपाय करने पर भी जगत् से जो सत्कार तुम्हे नही मिल सकता था, वह सत्कार इस घटना से मिल गया है। भले दुर्योधन तुम लोगो की निन्दा और अपनी प्रशसा करता फिरे मगर अब उसका प्रयत्न निष्फल ही होगा। इस घटना के कारण वह तुम्हारी निन्दा फैलाने मे असमर्थ हो गया है। इस प्रकार जो कुछ हुआ है उसके लिए शोक और परिताप मत करो। तुम्हारे हक मे अच्छा ही हुआ है। तुम्हें प्रसन्न रहना चाहिए।

तुम यह सोचकर लज्जित होते हो कि हम लोग द्रौपदी का अपमान चुप-चाप देखते रहे और कुछ बोले नही। पर तुम्हारा यह सोचना उचित नही है। तुम्हारी क्षमा ने ही इस घटना का मूल्य बढाया है। मैं मानता हू कि तुम वीर हो और तुम्हारी भुजाओ मे असीम बल है, फिर भी उस समय होने वाले अपमान को तुम रोक नहीं सकते थे। कदाचित् रोक देते तो भी आज तुम्हारी स्थिति जितनी मजबूत है उतनी न होती। द्रौपदी की लाज रह ही गई, मगर तुम्हारी शान्ति ने घटना के स्वरूप को एकदम बदल दिया है। जिस घटनाओ के कारण तुम दुःख मना रहे हो, उनके पीछे क्या रहस्य है, यह तुम्हे नहीं मालूम। अदृष्ट पर्दे की ओट मे क्या खेल खेल रहा है, दैव

करता । तुम जानती नही हो इसी कारण उन घटनाओं को अपना अपमान समझती हो और दुःख मानती हो । जब रहस्य को जान जाओगी तो वे घटनाए न अपमान जान पड़ेगी और न उन के कारण दुःख ही मनाओगी ।

जब श्रीकृष्ण, द्रौपदी से इस प्रकार कह रहे थे, तब भीम ने बीच में टोककर उनसे कहा—आपका कथन यथार्थ है पर अन्धे के उन कपूतो को उस समय जरा भी औचित्य का ध्यान नही रहा । क्या यह विचारणीय बात नही है ? उस घटना के लिए हम लोगो को लज्जित नही होना चाहिए ?

भीम की क्रोध से भरी बात को सुन कर श्रीकृष्ण उन की ओर मुड़े और कहने लगे—भीम, द्रौपदी की अपेक्षा तुम्हे समझाना कठिन है । तुम्हे अपने बल का अभिमान है और जिसे बल का अभिमान होता है उसे समझाना कठिन होता है । तुम जो कह रहे हो सो अपने स्वभाव के अनुसार कह रहे हो । पर यह तो सोचो कि दुर्योधन ने सब के सामने द्रौपदी को क्यो नग्न करना चाहा था ? इसका कारण यही था कि उसके पापों का घडा भर चुका था और अब उसका भंडा फोड़ होना लाजिम था । उसका पाप इतना बढ गया था कि वह प्रकट हुए बिना रह ही नही सकता था । उसने पहले जो कुछ किया था, वह छिपकर और प्रकट मे हितैपी बनकर किया था । लेकिन इस कृत्य ने उसके पापो को प्रकट कर दिया है । अब सभी जान गये हैं कि दुर्योधन कितना अन्यायी और पापी है । द्रौपदी को नग्न करने की घटना को सुनकर कौरवो के शत्रुओ को तो घृणा हुई ही है, साथ मे

उनके मित्रो को भी कम घृणा नही हुई है। दुर्योधन के हितैषी भी उसके इस अपराध के कारण उस पर रुष्ट हो गये हैं। इस प्रकार उसका पाप चरम सीमा पर पहुंच गया है और उसकी स्थिति बहुत कमजोर हो गई है। इस घटना ने तुम्हारा महत्त्व बढाया है और कौरवो का पाप बढाया है। लाखो उपाय करने पर भी जगत् से जो सत्कार तुम्हे नही मिल सकता था, वह सत्कार इस घटना से मिल गया है। भले दुर्योधन तुम लोगो की निन्दा और अपनी प्रशसा करता फिरे मगर अब उसका प्रयत्न निष्फल ही होगा। इस घटना के कारण वह तुम्हारी निन्दा फैलाने मे असमर्थ हो गया है। इस प्रकार जो कुछ हुआ है उसके लिए शोक और परिताप मत करो। तुम्हारे हक मे अच्छा ही हुआ है। तुम्हें प्रसन्न रहना चाहिए।

तुम यह सोचकर लज्जित होते हो कि हम लोग द्रौपदी का अपमान चुप-चाप देखते रहे और कुछ बोले नही। पर तुम्हारा यह सोचना उचित नही है। तुम्हारी क्षमा ने ही इस घटना का मूल्य बढाया है। मैं मानता हू कि तुम वीर हो और तुम्हारी भुजाओ मे असीम बल है, फिर भी उस समय होने वाले अपमान को तुम रोक नहीं सकते थे। कदाचित् रोक देते तो भी आज तुम्हारी स्थिति जितनी मजबूत है उतनी न होती। द्रौपदी की लाज रह ही गई, मगर तुम्हारी शान्ति ने घटना के स्वरूप को एकदम बदल दिया है। जिस घटनाओ के कारण तुम दुःख मना रहे हो, उनके पीछे क्या रहस्य है, यह तुम्हे नहीं मालूम। अदृष्ट पर्दे की ओट मे क्या खेल खेल रहा है